DUE DATE SLIP

GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No.	DUE DTATE	SIGNATURE

लोक-प्रशासनः सिद्धान्त एवं व्यवहार



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम संस्करण : १९७२

मूल्य : १२.००

© सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
ए २६/२ विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर-४

मुद्रक :
मनोज प्रिन्टर्स,
गोदीकों का रास्ता किशनपोल बाजार,
जयपुर-३०२००३

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी मे इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नही होने से यह माध्यम-परिवर्तन नही किया जा सकता था। परिणामत भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए 'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग' की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ मे पाच हिन्दी भाषी प्रदेशो मे ग्रन्थ अकादमियो की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी मे विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण मे राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानो तथा अध्यापको का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्राय सभी क्षेत्रो मे उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थो का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते है प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम मे तैयार करवायी गयी है। हमे आशा है कि यह अपने विषय मे उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चन्दनमल वैद

अध्यक्ष

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक स्नातक स्तर पर हिन्दी मे लोक-प्रशासन के विद्यार्थियो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए लिखी गई है। मूलत राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखा गया है। पर इसमे कुछ ऐसे अध्याय भी दिये गये हैं जिससे यह पुस्तक दूसरे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सके।

विद्यार्थियो के उपयोग के लिए लिखी गई पाठ्य-पुस्तक मे विचारो की मौलिकता का दावा तो धृष्टता ही होगी। लेखक ने लोक-प्रशासन के विषय पर भारतीय एव विदेशी अनेक लेखको की पुस्तको एव लेखो से सहायता प्राप्त की है। लेखक उन सबो के प्रति आभार प्रदर्शित करता है।

लेखक राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी का बडा ही अनुगृहीत है जिन्होने उसे इस पुस्तक के लिखने का अवसर प्रदान किया है।

लेखक को अनेक मित्रो तथा सहयोगियो से इस पुस्तक की तैयारी मे बडी सहायता मिली है। लेखक उनका बडा आभारी है। इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर ठाकुर लायरसिंह, सेठ जी० बी० पोद्दार कालेज, नवलगढ, श्री कृष्णलाल चावला, व्याख्याता, लोक-प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर तथा श्री नवल सिंह, इण्डियन इ स्टीच्यूट ऑफ मास कम्यूनिकेशन, नई दिल्ली के नाम उल्लेखनीय हैं। लेखक उनके प्रति विशेष रूप से आभार प्रकट करता है।

हिन्दी मे पुस्तक लिखने का लेखक का यह प्रथम प्रयास है। यह तो स्पष्ट ही है कि इसमे अनेक भूल तथा कमियाँ रह गयी होगी लेखक उनके लिए अपनी जिम्मेवारी स्वीकार करता है।

यदि प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियो की हिन्दी मे पुस्तक न मिलने की समस्या का कुछ हद तक निदान कर सकी तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। इस उद्देश्य मे लेखक को कितनी सफलता मिली है इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे।

बी० एम० सिन्हा

लोक-प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज०)

विषय-सूची

लोक-प्रशासन का स्वरूप एवं विषय-क्षेत्र

मानव-सभ्यता अपने विकास क्रम मे जिस स्तर पर पहुँच चुकी है, वहाँ आज हम जीवन के सभी क्षेत्रो मे लोक-प्रशासन को विद्यमान पाते हैं। रेल, तार, बीमा, सुरक्षा, योजनाबद्ध विकास सभी के लिए हम लोक-प्रशासन पर ही निर्भर करते हैं। आज लोक-प्रशासन इतना अधिक विकसित हो गया है कि वह हमारे जन्म से पहले ही हमारी सेवा करने लगता है और मृत्यु के उपरान्त भी सेवा करता रहता है। गर्भवती माता शिशु-जन्म के पूर्व सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त अस्पताल मे डाक्टरी परामर्श एव सहायता के लिए जाती है। बालक सरकारी स्कूल मे पढता है। बडा होकर वह सरकार के किसी विभाग मे नौकरी करता है या काम दिलाऊ दफ्तर की सहायता से किसी निजी सस्थान मे काम पर लग जाता है। बीमार पडने पर वह सरकारी अस्पताल मे अपनी चिकित्सा करवाता है। मृत्यु के बाद उसकी अत्येष्टि सरकार द्वारा सचालित श्मशान भूमि मे की जाती है।

लोक-प्रशासन का स्वरूप

हमारे सभी सामाजिक सगठनो मे प्रशासन की अनिवार्यत. आवश्यकता रहती है। स्कूल, कालेज, बैंक, विश्वविद्यालय का विभाग, दूकान, क्लब, सभी मे प्रशासन सन्निहित है। ऐसा कहा जा सकता है कि जहा कही भी एक से अधिक व्यक्ति एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम कर रहे हो, वहाँ प्रशासन जरूर होगा।

इसी प्रशासन का एक भाग लोक-प्रशासन है। प्रशासन साधारणतया दो भागो मे विभक्त किया जाता है, लोक-प्रशासन एव निजी प्रशासन। लोक-प्रशासन के अन्तर्गत सरकारी विभागो एव कार्यालयो तथा सचिवालय, राज्य सरकार, कलक्टरी, तहसील, पचायत समिति आदि के सगठन एव प्रशासनिक पद्धति का अध्ययन किया जाता है। निजी प्रशासन मे व्यक्तिगत वाणिज्य संस्थानो जैसे, नेशनल इजीनियरिंग इन्डस्ट्रीज, कमानी इलेक्ट्रीकल्स आदि के सगठन एव प्रशासन का अध्ययन किया जाता है।

यद्यपि पहले लोक एव निजी प्रशासन को अलग-अलग समझा जाता था और इन दोनो मे सूक्ष्म अन्तर दर्शाना विद्वत्ता का लक्षण गिना जाता था, किन्तु इन दिनो अब यह विचारधारा बनती जा रही है कि वास्तव मे प्रशासनिक समस्याएं दोनो जगह एक-सी ही हैं। कर्मचारी वर्ग का प्रशासन योजनाबद्ध विकास, नेतृत्व, निर्णय लेना, बजट तैयार करना आदि समस्याएं ऐसी हैं जोकि हर प्रशासनिक इकाई

चाहे वह सरकारी हो अथवा निजी, मे मिलेगी । अत: अब यह कहा जाने लगा है कि सरकार का कारोबार और कारोबार का प्रबंध एक-दूसरे के पास आने लगे हैं ।

प्रशासन और प्रशासक ऐश्वर्य और आडम्बर के सूचक शब्द गिने जाते हैं । प्रशासन अंग्रेजी के Administration शब्द का हिन्दी अनुवाद है । यह शब्द Ad और Minister दो शब्दों मे मिल कर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है सभालना, या देखभाल करना । अतः जो सभाले या देखभाल करे उसे प्रशासक कहेगे । व्यापक अर्थ मे उन सभी व्यक्तियो को जो किसी भी सस्थान, चाहे वह सरकारी हो या गैर सरकारी, मे काम कर रहे हो प्रशासक कहा जा सकता है । पर जन साधारण प्रशासक मे उनकी गणना करते हैं जो ऐसे पदो पर हो जहा दूसरो के ऊपर नियन्त्रण रखने का कार्य हो । जैसे पहले अर्थ मे दफ्तर मे जितने भी बाबू और चपरासी हो सभी को प्रशासक या अधिकारी कह सकते हैं । पर दूसरे अर्थ में सुपरिन्टेन्डेन्ट, अवर सचिव और उनसे ऊपर के पदाधिकारियों को ही प्रशासक या अधिकारी कहेगे । इस अर्थ मे क्लर्क एव चपरासियो आदि को प्रशासक या अधिकारी नही कहा जा सकता ।

लोक-प्रशासन की परिभाषा :—

कुछ प्रमुख विद्वानो द्वारा लोक-प्रशासन की दी गई परिभाषा इस प्रकार है ।

"लोक-प्रशासन केन्द्रीय और स्थानीय सरकार के कार्यों से सबन्धित प्रशासन है । " पर्सी मैक क्वीन

'लोक-प्रशासन से साधारणतः केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारो की कार्यपालिकाओ के कार्यों का बोध होता है"[1] साइमन

"लोक-प्रशासन सूक्ष्म सत्ता द्वारा निर्मित जननीतियो को पूरा करने या लागू करने के काम को कहते हैं",[2] वाईट

"प्रशासन सरकार के 'क्या' (कौन से कार्य) और 'कैसे' से सम्बन्धित है"[3]— डाइमॉक

ऊपर की परिभाषाओ पर यदि गौर से विचार किया जाय तो दो प्रकार की विचारधाराएं दिखाई पड़ेंगी । एक विचारधारा प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के सारे कामो की परिगणना करती है । पर्सी मैक क्वीन का विचार है कि स्थानीय और केन्द्रीय सरकार के सारे कार्य तथा कानून बनाना, उनको लागू करना और उन्हे *तोड़नेवालो को दंड देना सभी लोक-प्रशासन के अन्तर्गत आते हैं ।* डाइमॉक भी दूसरे शब्दो में इन्ही विचारो का पुनर्कथन करता है । वह कहता है कि प्रशासन इस बात से सम्बन्धित है कि सरकार क्या करेगी और कैसे करेगी । दोनो परिभाषाओ से यह

---

1. 'Simon and others, Public Administration pp. 7.

2. —White, L. D. Introduction to the study of Publ.c Administration pp 1 (In Ed.)

3. Dimock "American Pol Sc. Review Vol. 31, pp 31–32.

बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि सरकार के सभी अंगो के कार्यों को लोक-प्रशासन मे सम्मिलित किया जा रहा है न कि किसी विशेष अग के प्रकार्यों को।

दूसरी विचारधारा साइमन और उनके साथियो की परिभाषा मे मिलती है। यह विचारधारा अपेक्षतया सकीर्ण है क्योंकि इसमे लोक-प्रशासन सरकार के सभी अंगो से सम्बन्धित न होकर केवल कार्यपालिका के कार्यों से सम्बन्धित माना गया है। साइमन राष्ट्रीय एव स्थानीय सरकारो की कार्यपालिकाओं के कार्यों को लोक-प्रशासन मानता है। वाइट जननीतियो को लागू करने के काम को ही लोक-प्रशासन मानता है। ये जननीतियाँ किस प्रकार बनती हैं और जननीतियो के विरुद्ध काम करने वालो को किस प्रकार सजाएँ दिलवाई जाती हैं यह लोक-प्रशासन का कार्य नही है।

यद्यपि व्यापक अर्थ मे लोकप्र-शासन का राज्यो के सभी कार्यों से सम्बन्ध है, पर अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से केवल कार्यपालिका के संगठन एव कार्यों तथा कार्यविधी तक ही इसका विषय-क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत विधान मण्डल तथा न्याय पालिका के संगठन, सैनिक प्रशासन के कार्यों तथा कार्यविधि का विस्तृत अध्ययन नही किया जाता। पर चूँकि विधान मण्डल तथा न्यायपालिका कार्यपालिका के कार्यों पर प्रभाव डालते हैं, उन पर नियन्त्रण रखते हैं, अत इनके पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

लोक-प्रशासन के अध्ययन की विषय सामग्री का ज्ञान (POSDCORB) पोस्डकॉर्ब शब्द से होता है।

P—Planning—योजना बनाना

O—Organisation—सगठन

S—Staffing—कार्मिक वर्ग का प्रशासन

D—Directing—निर्देशन

Co—Co-ordination—समन्वय

R—Reporting—रिपोर्ट

B—Budgeting—बजट

कार्यपालिका अनेक विभागो एव उपविभागो मे बटी होती है। सभी विभाग एवं उप-विभाग उपरोक्त काम करते हैं। चाहे उस विभाग का काम युद्ध सचालन हो या समाज-कल्याण उसके लिए उक्त उल्लिखित कार्य सम्पादन करना आवश्यक है। कोई भी काम करना हो उसके लिए पहले योजना बनाई जायगी। सगठन तैयार किया जाएगा। कार्मिक वर्गों की नियुक्ति होगी। उन्हे निर्देश दिये जाएँगे ताकि लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। समन्वय बनाये रखना जरूरी है नहीं तो लक्ष्य की प्राप्ति मे बाधा हो सकती है। उच्च अधिकारियो को अपने कार्यों की रिपोर्ट भेजी जानी चाहिए तथा बजट बनाया जाना चाहिए ताकि पार्लियामेन्ट से उसकी मंजूरी ली जा सके। इस सम्बन्ध मे एक बात ध्यान रखनी चाहिए। प्रशासन किसी विभाग की तकनीकी

समस्याओं का अध्ययन नही करता । यह केवल संगठन एवं कार्य विधि का अध्ययन करता है जो सारे विभागो मे एक-सी ही होती है । यही कारण है कि सचिवालय मे आई० सी० एस० और आई० ए० एस० अधिकारी किसी भी विभाग मे काम करने के लिए स्थानान्तरित किये जा सकते हैं। तकनीकी समस्याएँ हर विभाग की अलग अलग होती हैं । जैसे, रक्षा विभाग मे युद्ध एवं सैन्य संचालन की समस्या होती है तो स्वास्थ्य विभाग मे अस्पताल एवं रोगियो के देखभाल की समस्या है । शिक्षा विभाग के विद्यार्थियो को पढ़ाने लिखाने की समस्याएँ हैं । प्रशासन इन तकनीकी समस्याओ को नही छूता है ।

विशेष अध्ययन के लिए:—

१. एम० पी० शर्मा :—लोक-प्रशासन, सिद्धान्त एवं व्यवहार
२. साइमन, थामसन, स्मिथवर्ग-पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
३. मार्स्टिन मार्क्स:—एलिमेंट्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
४. अवस्थी एवं माहेश्वरी . लोक-प्रशासन
५. पी०सरन–पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन



लोक-प्रशासन : विषय प्रकृति, अन्य विषयों से सम्बन्ध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण

क्या लोक-प्रशासन विज्ञान है ? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम विज्ञान से क्या समझते हैं ? साधारणतः विज्ञान शब्द के दो अर्थ लिये जाते हैं :

१. क्रमबद्ध ज्ञान, किसी भी वस्तु का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करना, तत्सम्बन्धी कार्य-कारण सम्बन्धो का विवेचन करना, विज्ञान कहा जाता है। इस माने मे लोक-प्रशासन विज्ञान कहा जा सकता है। लोक-प्रशासन मे हम सगठन की समस्या लेते है। संगठन किस प्रकार कार्य करता है ? इसमे किस प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है ? क्यो ऐसी आवश्यकता है ? कर्मचारी वर्ग से प्रबधक-वर्ग का किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिए ? यह सब क्रमबद्ध ज्ञान कहा जा सकता है।

२. विज्ञान का दूसरा अर्थ यथार्थता से लिया जाता है। भौतिक विज्ञान, गणित, रसायन-शास्त्र आदि समाज-शास्त्रो से अधिक यथार्थ विज्ञान है। गणित मे २ और २ का योग सदैव ही चार होगा। यदि किसी ऊँचाई से पत्थर गिराया जाये तो वह नीचे को ही आएगा फल पेड से टूटकर नीचे ही गिरेगा।

यदि यथार्थता और परिशुद्धि को ही विज्ञान की आधारभूत आवश्यकता मान लें तो लोक-प्रशासन शायद विज्ञान की परिभाषा मे न आ सके। पर यह बात फिर दूसरे सामाजिक शास्त्रों पर भी लागू होगी। यदि यथार्थता और परिशुद्धि की कमी के कारण लोक-प्रशासन को विज्ञान नही मान सकते तो समाज-शास्त्र, दर्शन शास्त्र, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र किसी को भी विज्ञान नही कहा जा सकता क्योकि इन सभी मे यथार्थता और परिशुद्धि की कमी मिलेगी। प्राय सभी सामाजिक-शास्त्र अपने को विज्ञान कहते हैं। आलोचको ने यथार्थता और परिशुद्धि की कमी के कारण इन्हे विज्ञान मानना अस्वीकार किया है। इस बात मे तो सभी एकमत होगे कि सामाजिक शास्त्रो मे उस प्रकार की यथार्थता एवं परिशुद्धि नही आ सकती जैसी कि भौतिक विज्ञान, गणित आदि मे है। पर सभी विज्ञान भी एकसे यथार्थ और परिशुद्ध नही होते जैसे ऋतु विज्ञान की सूचनाएँ भौतिक विज्ञान अथवा रसायन शास्त्र जितनी यथार्थ और परिशुद्ध नही होती हैं।

लोक-प्रशासन में यथार्थता और परिशुद्धि की कमी के निम्नलिखित कारण हैं :

१. लोक-प्रशासन मनुष्यों से सम्बन्धित है। यह कह सकना सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य किसी विशिष्ट उद्दीपक के उत्तर में क्या करेगा। यदि आप राह चलते किसी व्यक्ति को दो चांटे लगादें तो आप उससे कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं की आशा कर सकते हैं। वह व्यक्ति डर कर भाग जा सकता है। क्रोध में आकर आपको मार सकता है। गालियाँ दे सकता है। अपने साथियों को बुलाकर आप से झगड़ा कर सकता है। इतने सारे विकल्पों में से वह कौनसा चुने और किस प्रकार का व्यवहार करे इस सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

२. जिस प्रकार भौतिक एवं रसायन शास्त्रों में प्रयोगशाला में प्रयोग सम्भव हैं उस प्रकार के प्रयोग लोक-प्रशासन में सम्भव नहीं हैं। भीड़ भगाने के लिए शक्ति प्रयोग करने का क्या परिणाम होगा इसकी किसी प्रयोगशाला में जाँच नहीं की जा सकती। इसका पता तो तभी चलेगा जबकि भीड़ को भगाने के लिए वास्तव में शक्ति का प्रयोग किया जाय। यदि लोक-प्रशासन में भी प्रयोगशाला के प्रयोग सम्भव होते तो इसकी यथार्थता और परिशुद्धि में वृद्धि हो सकती थी।

३. प्रशासन संस्कृति की पृष्ठभूमि में काम करता है। चूँकि सभी लोगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एकसी नहीं होती इसलिए भी लोगों की प्रतिक्रियाओं में विभिन्नता आ जाती है। एक ऐसे समाज में जोकि सदैव ही आजादी से स्वशासित संस्थाओं द्वारा नियमित हुआ है वहां यदि स्वशासित संस्थाएं केन्द्र द्वारा नियंत्रित कर दी जावें तो इससे समाज में विद्रोह की भावना बढ़ सकती है। पर जिस समाज में स्वशासित संस्थाओं का अभाव रहा है, और केन्द्रीय सरकार ने नये नियंत्रण लागू किए हों तो कोई अधिक परेशानी की बात नहीं होगी। जो आधारभूत प्रेरक अमेरिका में मजदूरों के लिए काफी हो वे शायद भारत में न हो सकें। इसका कारण सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अन्तर है।

लोक-प्रशासन एवं सामाजिक शास्त्रों का पारस्परिक सम्बन्ध

लोक-प्रशासन एवं राजनीतिशास्त्र सामाजिक शास्त्रों में लोक-प्रशासन का सबसे निकटतम सम्बन्ध राजनीतिशास्त्र से है। अभी हाल तक—भारतीय विश्वविद्यालयों में यह राजनीतिशास्त्र से ही सम्बन्धित विषय गिना जाता रहा था। अब कुछ विश्वविद्यालयों में स्वतन्त्र विषय के रूप में इसका अध्ययन किया जाने लगा है।

हम यह कह सकते हैं कि राजनीतिशास्त्र तो नीति निर्धारित करता है। राज्य की अधिकार सीमा क्या होनी चाहिए? व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर राज्य का नियंत्रण कहां तक उचित है? यह निर्धारित करना राजनीति-शास्त्र का कार्य है। पर सीमा निर्धारित हो जाने के बाद राज्य अपने अधिकार सीमा में किस प्रकार प्रबन्ध व्यवस्था करे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर नियंत्रण रखने के लिए कौन से कदम उठाये यह काम लोकप्रशासन का है। वुडरो विल्सन ने कहा है कि राजनीति प्रशासन के लिए कार्य निर्धारित करती है। राजनीतिज्ञ अपनी सत्ता बनाये रखने की

चेष्टा करते हैं। वे चुनाव लड़ते हैं। प्रतिद्वन्द्वी को हराते हैं। प्रशासन उन्हें नीति निर्धारित करने के लिए आवश्यक सामग्री एवं परामर्श देता है। नीति को कार्यान्वित करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं। राजनीतिज्ञ जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होने के कारण दावे से यह कह सकता है कि किसी सम्बन्ध में जन नीति क्या होगी ? जनता क्या चाहती है ? प्रशासक प्रबन्ध विशेषज्ञ होने के नाते यह कह सकता है कि ये जन-नीतियाँ किस प्रकार कम से कम व्यय एवं असुविधा उत्पन्न किये बिना ही कार्यान्वित की जा सकती है। अच्छे प्रशासन के लिए दोनों ही आवश्यक है। आज का प्रशासन जन-प्रिय होना चाहिए। राजनीतिज्ञ जनता के विचारों को मूर्त रूप देकर प्रशासन को जन-प्रिय बनाता है। प्रशासक अपने विशेष ज्ञान से प्रशासन की कुशलता बढ़ाता है और जनता की आकांक्षाओं को पूरा कराने में सहायक होता है।

राजनीतिज्ञ और प्रशासक में इतना निकट सम्बन्ध है कि प्रशासन के उच्च स्तरों पर इन्हें अलग-अलग रखना सम्भव भी नहीं। प्रशासन के उच्च स्तरों पर राजनीतिज्ञ और प्रशासक एक-दूसरे से घुल-मिल जाते हैं। प्रशासक नीति निर्धारित करने में और राजनीतिज्ञ दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक मामलों को सुलझाने में भाग लेते हैं। किन्तु इस प्रकार की प्रवृत्ति ठीक नहीं कही जा सकती। प्रशासकों को किसी नीति के विरोध या समर्थन में खुलकर जनता के सामने नहीं आना चाहिए क्योंकि चाहे नीति कितनी भी अच्छी क्यों न हो, उसके सम्बन्ध में वर्तमान विचारधारा में परिवर्तन होना आवश्यक है। यदि राजनीतिज्ञ प्रशासन के दिन-प्रतिदिन के मामलों में हस्तक्षेप करने लगें तो उन पर पक्षपात का दोषारोपण किया जा सकता है। यद्यपि कोई लक्ष्मण रेखा खींच कर यह कहना सम्भव नहीं कि यह राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के बीच विभाजन की रेखा है और किसी को भी इस रेखा को पार नहीं करना चाहिए। प्रशासक को किसी भी विचाराधीन प्रस्ताव के तकनीकी विचार राजनीतिज्ञ के सामने प्रस्तुत करने चाहिएँ। यह बिना किसी भय या दलगत भावना के किया जाना चाहिए, प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था में अन्तिम निर्णय राजनीतिज्ञों के हाथ में होना है। प्रशासक को इसे सदैव ही ध्यान में रखना चाहिए और एक निश्चित सीमा के बाहर अपने विचारों की स्वीकृति के लिए हठधर्मी करनी नहीं चाहिए। इस प्रकार राजनीतिज्ञों को भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रशासन की दिन-प्रतिदिन की समस्याएँ उनकी अधिकार सीमा से बाहर हैं और इसमें उन्हें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

फिफनर (Pfiffner) ने राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के बीच अन्तर इस प्रकार बताया है :—

राजनीतिज्ञ	प्रशासक
१ अविशेषज्ञ-चुनाव का आधार जन-	१ विशेषज्ञ—नियुक्ति का आधार

प्रियता	विशिष्ट ज्ञान
२. अतकनीकी	२. तकनीकी
३. दलगत भावना से काम करते हैं	३. दलगत भावना से परे रहते हैं
४. अस्थायी	४. स्थायी
५. जनता से अधिक सम्पर्क	५. जनता से सम्पर्क कम
६. कानून बनवाने मे अधिक साझेदार	६. कानून को कार्यान्वित करने मे अधिक योगदान
७. अधिकतर नीति निर्धारण का काम	७. नीतियो को कार्यान्वित करने का काम
८. अधिकतर निर्णय करते हैं	८. अधिकतर परामर्श देते हैं।
९. समन्वय बनाये रखने का काम करते हैं	९. वास्तविक कार्य करते हैं।
१०. लोकमत से प्रभावित होते हैं	१०. अध्ययन एवं अनुसंधान द्वारा प्राप्त तकनीकी आंकडो से प्रभावित होते हैं।

अत यह कहा जा सकता है कि लोक-प्रशासन और राजनीति एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ है। राजनैतिक विचार एव सस्थाओ की पृष्ठभूमि मे ही लोक-प्रशासन कार्य करता है। राजनीतिज्ञो को सदैव यह ध्यान रखना होगा कि उनकी नीतियाँ प्रशासनीय दृष्टि से कार्यान्वित होने योग्य हैं या नही, प्रशासको को भी यह ध्यान रखना होगा कि चाहे उनकी सगठन प्रक्रियाएँ कितनी ही कार्य साधक क्यो न हो जनता यदि उन्हे स्वीकार नही करती तो उसमे परिवर्तन करना ही होगा।

लोक-प्रशासन एव अर्थशास्त्र

आधुनिक काल मे लोक-प्रशासन पर आर्थिक समस्याओ का दबाव बहुत ही बढ गया है। औद्योगिक क्रांति के पहले प्रशासन के कार्य रक्षा, आन्तरिक सुरक्षा, न्याय व्यवस्था तक ही सीमित थे। औद्योगिक क्रांति के बाद प्रशासन ने आर्थिक मामलो मे भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है। सरकार ने अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किए हैं। निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठानो पर नये नियन्त्रण लगाये हैं। कल-कारखानो मे काम करने के घण्टे निश्चित किये हैं। गृह उद्योगो को आर्थिक सहायता दी है। पहले जहाँ आर्थिक मामले सरकार की सीमा के बाहर चले जाते थे, वहाँ अब प्रशासनिक कार्यवाहियो द्वारा देश की आर्थिक उन्नति एव विकास की चेष्टा की जा रही है।

आज आर्थिक सम्पन्नता प्रशासन की जिम्मेवारी है। यदि राज्य मे मुद्रास्फीति होती है या मूल्य गिरने लगते हैं तो दोनो ही दशाओ मे राज्य को कुछ न कुछ करना ही होगा। आज के प्रशासन की आर्थिक जिम्मेवारियाँ इतिहास के पिछले किसी भी काल की जिम्मेवारियो से अधिक हैं। वर्तमान सरकारो की प्रायः सभी सरकारी नीतियो का आर्थिक रूप होता है। अत आज के प्रशासन के लिए आर्थिक समस्याओ

का समझना और उनका हल निकालना अत्यन्त ही आवश्यक हो गया है।

आज की सरकारें एक दुविधाजनक स्थिति मे हैं जबकि विभिन्न शक्ति गुट अपने आर्थिक लाभ के लिए राज्य से अनेक प्रकार की मांगें कर रहे हैं। बहुधा ये मांगें परस्पर विरोधी होती हैं। जैसे, किसान अपनी पैदावार के लिए अधिक मूल्य चाहते हैं तथा उपभोक्ता सस्ता अनाज चाहते हैं। मजदूर अधिक मजदूरी चाहते हैं तथा मिल के मालिक अपनी पूंजी से अधिक लाभ की आशा रखते हैं। राज्य के कर्मचारी एक ओर तो महगाई भत्ता बढाने के लिए आन्दोलन करते हैं और दूसरी ओर नये कर लगाने का विरोध करते हैं। इन परस्पर विरोधी मांगो के बीच समन्वय स्थापित करके देश को आर्थिक प्रगति की ओर ले जाना सरकार की जिम्मेवारी है।

वर्तमान युग मे सरकारो ने अपने हाथ मे इतनी आर्थिक सत्ता केन्द्रित करली है कि वे अपने मित्रो को मालामाल कर दे सकें और शत्रुओ का सर्वथा नामोनिशान मिटा दे। लाइसेंस, कन्ट्रोल, परमिट, और राज्यकोष की अथाह धनराशि सरकारो के हाथ मे अपरिमित आर्थिक शक्ति केन्द्रित कर देती है। इसके दो प्रमुख परिणाम सामने आते हैं। विभिन्न दबाव गुट राज्य के इन साधनो तक पहुँचने की चेष्टा करने लगते हैं ताकि इनका उपयोग अपने गुट के लाभ के लिए कर सके। दूसरा नतीजा यह होता है कि यदि प्रशासन मे थोडा भी ढीलापन हो तो भ्रष्टाचार प्रारम्भ होने लगता है, क्योंकि प्रशासन अपने मित्रो को सन्तुष्ट करना चाहता है।

आज की सरकारो की आर्थिक जिम्मेवारियां इतनी अधिक बढ गई हैं कि प्रशासन के अध्ययन के अन्तर्गत एक नए उप-विषय 'आर्थिक प्रशासन' का विकास हो गया है। प्रशासन की बढती हुई आर्थिक जिम्मेवारियो को देखकर कुछ विद्वानो ने अपने देश मे आर्थिक एव औद्योगिक सिविल सेवा (Economic & Industrial Civil Service) के निर्माण का सुझाव दिया है।

लोक-प्रशासन एव कानून

लोक-प्रशासन एव कानून का बडा गहरा सम्बन्ध है। कानून लोक-प्रशासन की सीमा निर्धारित करता है। प्रशासन के लिए कानून द्वारा निर्धारित यह सीमा लक्ष्मण रेखा का काम करती है। यदि प्रशासन इस रेखा के बाहर जाता है तो न्यायालय अवैध घोषित कर देगा। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रशासन जो कुछ भी करेगा वह कानून के अधिकार एव शक्ति से ही करेगा। प्रशासन को अधिकार है कि वह जनरक्षा के लिए शक्ति का उपयोग करे। शक्ति के उपयोग का अधिकार एवं इसकी प्रक्रिया कानून द्वारा निर्धारित कर दी गई है। इसका यदि उल्लघन होता है तो न्यायालय की शरण ली जा सकती है।

वास्तव मे लोक-प्रशासन कानून को सही ढग से कार्यान्वित करने का सही नाम है। यही कारण है कि यूरोप मे लोक-प्रशासन का कानून के अग के रूप मे

अध्ययन किया जाता था । आज भी फ्रांस मे सिविल सेवा के सदस्यो के लिए कानून का ज्ञान अनिवार्य है । यदि नियुक्ति के पहले उन्होने कानून का अध्ययन नही किया है तो नियुक्ति के बाद उन्हे ६ महीने तक विश्वविद्यालय मे कानून के अध्ययन के लिए भेजा जाता है।

प्रशासन केवल कानून की मर्यादा मे रह कर ही काम नही करता, वरन् स्वय अपने लिए कानून निर्धारित भी करता है । इस निर्धारण के दो प्रमुख रूप होते है । संसदीय शासन प्रणाली वाले देशो मे पार्लियामेट वे ही कानून पास करती है जो मन्त्रियो द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं । मन्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गए कानूनो के वास्तविक निर्माता प्रशासक ही होते हैं । दूसरे पार्लियामेट को न तो इतना समय मिलता है न सदस्यो मे इतनी तकनीकी योग्यता ही होती है कि वर्तमान औद्योगिक समाजो के उपयुक्त कानून बना सके । अतः पार्लियामेट कुछ उद्देश्य निश्चित कर देती है। उन निश्चित उद्देश्यो की परिसीमा मे प्रशासन को कानून बनाने की स्वतन्त्रता होती है। प्रशासन द्वारा इस प्रकार बनाये गए कानूनो को अधीनस्थ विधान (Subordinate legislation) या अर्प्यापित विधान (Delegated Legislation) कहते हैं। अधीनस्थ विधान के कारण प्रशासन के हाथों मे कार्य-पालिका एव विधान मण्डल की शक्तिया केन्द्रित हो जाती हैं । यह शक्तियो के पृथक्कीकरण के सिद्धान्त के बिल्कुल विपरीत होता है।

कानून के माध्यम से ही प्रशासन को जिम्मेवार बनाया जाता है । कानून मापदण्ड है। इसी के आधार पर अदालत यह निर्णय करती है कि प्रशासन उचित ढग से काम कर रहा है या नही । यदि कानून के अनुसार प्रशासन नही चलाया जाता तो अदालत आपत्ति करती है । चाहे कितना ही आवश्यक क्यो न हो, आवश्यकता के आधार पर प्रबंध को वैध घोषित नही किया जा सकता ।

कानून द्वारा ही जनता के अधिकारो की प्रशासन की असंयमताओ से रक्षा की जाती है। कानून यह बताता है कि प्रशासन के अधिकार कहाँ समाप्त होते हैं और जनता का अधिकार कहाँ प्रारम्भ होता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि कानून प्रशासन के विरुद्ध हमारे अधिकारो के रक्षक के रूप मे सामने आता है । यदि कानून न हो तो हमारे अधिकारो का अस्तित्व प्रशासन की दया पर निर्भर होगा । इस प्रकार के अधिकार प्रशासन अपनी इच्छानुसार हमसे छीन सकेगा ।

लोक-प्रशासन एवं मनोविज्ञान

जब से लोक-प्रशासन मे मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ है इस क्षेत्र मे मनोविज्ञान के अध्ययन का महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है । मनोविज्ञान मनुष्य की मानस स्थिति का अध्ययन करता है। मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययन एव परीक्षण के आधार पर यह बता सकता है कि कौनसा प्रोत्साहन किस व्यक्ति विशेष या व्यक्ति समूह के लिए किस समय सबसे अधिक प्रभावकारी होगा । जबतक मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि का आविष्कार नही हुआ था, यो ही अनुमान और

अनुभव के आधार पर प्रोत्साहन देने की प्रथा थी ।

प्रजातन्त्र मे जनमत का आदर होने के कारण हर व्यक्ति का महत्त्व है । यदि यह पता चल सके वह व्यक्ति किस दिशा मे सोच रहा है, तो यह प्रशासक के लिए लाभ की वस्तु होगी । यह अलग बात है कि वह उस विचारधारा मे परिवर्तन न ला सके । पर विचारधारा का ज्ञान होना ही, चाहे उसमे परिवर्तन न लाया जा सके, लाभदायक है क्योकि प्रशासक उस दशा मे अपनी नीतियो मे उस विचारधारा की आवश्यकताओ के अनुसार परिवर्तन कर सकेगा । यदि किसी प्रशासक को यह पहले पता चल जाय कि उसकी किसी आज्ञा के विरुद्ध लोग उठ खड़े हो सकते हैं, तो वह इसके लिए पहले से तैयार हो सकेगा । मनोवैज्ञानिक उसे यह भी बता सकेगा कि किस प्रकार उसे अपनी योजना अपने अधीनस्थ कर्मचारियो के सामने प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे कि वे उसे स्वीकार करने मे प्रतिरोध न करें तथा उसे सफल बनाने मे प्रसन्नतापूर्वक सहयोग दें ।

प्राचीन काल मे जबकि प्रशासक भय दिखला कर अपना काम करवा सकता था तब मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की इतनी आवश्यकता नही थी । पर प्रजातन्त्र के प्रादुर्भाव के कारण भय की उपयोगिता काफी कम हो गयी है । अत भय के स्थान पर अन्य कोई प्रोत्साहन आवश्यक हो गया है । अब भय के स्थान पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा है । पहले कार्यालयो का प्रशासन अधिकारी एवं अधीनस्थ कर्मचारियो के सम्बन्ध के आधार पर ही चलाया जाता था । अब मनोवैज्ञानिक तथ्य, सास्कृतिक पृष्ठभूमि, समूह व्यवहार, समूह स्वीकृति आदि पर भी ध्यान दिया जाने लगा है । अधिकारी एव अधीनस्थ कर्मचारियो का सम्बन्ध हमे किसी भी कार्यालय के वास्तविक रूप से परिचित नही करा सकता । यह तो औपचारिक सगठन मात्र है । इसके साथ ही एक अनौपचारिक सगठन भी है जो आफिस के प्रशासन का वास्तविक रूप है । बिना मनोवैज्ञानिक आधार के अनौपचारिक सगठन समझ सकना सम्भव नही है ।

मनोवैज्ञानिको की खोजो का प्रशासन ने सीधे रूप से प्रयोग किया है । आज हर कही कर्मचारियो के क्लब, कैन्टीन और मनोरजन के साधन प्रस्तुत किए जा रहे हैं । इसका कारण यह है कि मनोवैज्ञानिको ने यह बताया कि सन्तुष्ट कर्मचारी, असन्तुष्ट कर्मचारी से अधिक उत्पादक होते हैं । अच्छे प्रतिष्ठानो मे चुनाव बोर्डों मे मनोवैज्ञानिको को आमन्त्रित किया जाता है । अमेरिका मे अनेक अभिवृत्ति परीक्षण तैयार किये गए है जो कर्मचारियो के चुनावो मे काफी सफल प्रमाणित हुए है ।

लोक-प्रशासन तथा विज्ञान एव टेकनोलॉजी

लोक-प्रशासन विज्ञान एव टेकनोलॉजी की खोजों से सीधा लाभान्वित होता है । इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर के फलस्वरूप अब प्रशासको को वे आंकडे तत्काल ही प्राप्त हो जाते हैं जो पहले उन्हें ६ महीने या एक वर्ष बाद मिलते थे । अत: प्रशासकीय निर्णयों के लिए पहले से अधिक सामग्री प्राप्त होने लगी है । नियन्त्रण के

क्षेत्र में भी विज्ञान ने बड़ी सहायता की है। रेडियो, टेलीफोन, तार, आदि ने समय और दूरी को प्रायः समाप्त-सा कर दिया है। आज प्रशासक दिल्ली मे अपने कमरे से नगरान्तर दूरभाष (Subscriber Trunk Dialling) द्वारा पटना मे बैठे अपने अधीनस्थ कर्मचारी से मिनटो मे ही बात कर सकता है। यदि प्रशासक आवश्यक समझे तो ध्वनि से भी तेज चलने वाले वायुयान द्वारा यह दूरी एक घण्टे से कुछ कम ही समय मे तय कर वहा पहुँच सकता है।

विज्ञान ने प्रशासक के हाथ मे बड़ी शक्ति दे दी है। यदि अमेरिका का राष्ट्रपति चाहे तो वह रेडियो और टेलिविजन उपकरणों के माध्यम से जनता के नाम सन्देश प्रसारित कर सकता है। हर घर मे उसकी आवाज पहुँच सकती है और हर व्यक्ति टेलिविजन के पर्दे पर उसे देख सकता है जैसेकि राष्ट्रपति उसके घर ही आ गया हो। भारत मे जहाँकि अभी टेलिविजन चैनल का विकास नही हुआ है राष्ट्रपति का सन्देश हर कही रेडियो पर सुना जा सकता है। दूसरे दिन अखबारो द्वारा यह सन्देश सारे राष्ट्र मे पहुँच जाता है। इतिहास के पिछले किसी युग के प्रशासको को इतनी सुविधा शायद ही मिली हो।

जहाँ विज्ञान ने प्रशासक के लिए इतनी सुविधाएँ प्रस्तुत की हैं वहा उसके लिए कुछ नये उत्तरदायित्व भी पैदा कर दिए हैं। मोटर को ही लीजिये। मोटर चूँकि पक्की सड़को पर ही चल सकती है अत सरकार को पक्की सड़कें बनवाने की व्यवस्था करनी पड़ती है। मोटरो को लाइसेंस दिलवाने की व्यवस्था करनी पड़ती है। ड्राइवरो के लिए लाइसेन्स का प्रबन्ध करना होता है। चूँकि असामाजिक तत्वो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल्दी ही पहुँच जाने का मौका मिल जाता है, अत पुलिस को उड़न-दस्तो की स्थापना करनी पड़ती है। इसी प्रकार अन्य वैज्ञानिक अनुसधानो को भी लिया जाय तो पता चलेगा कि हर वैज्ञानिक अनुसधान ने सरकार के लिए नये उत्तरदायित्वो को जन्म दिया है।

वर्तमान युग मे जितने लम्बे चौड़े स्तर पर प्रशासन चलाया जा रहा है वह बिना विज्ञान और टेक्नोलॉजी की खोजो के सम्भव नहीं। यद्यपि विज्ञान ने प्रशासन के लिए जिम्मेवारियाँ भी पैदा की हैं, पर उन जिम्मेवारियो के बदले मे प्रशासन को उसने कही अधिक सुविधायें दी है।

लोक-प्रशासन के अध्ययन के प्रमुख दृष्टिकोण

किसी भी विषय के अध्ययन के लिए आवश्यकतानुसार अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाये जा सकते हैं। विभिन्न दृष्टिकोणो मे होड नही है, वरन् वे एक-दूसरे के पूरक होते हैं। लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिए मुख्यत निम्नलिखित दृष्टिकोणो का उपयोग किया जाता है

१. कानूनी दृष्टिकोण :—इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रशासकीय सस्थाओ का अध्ययन कानूनी दृष्टि से किया जाता है। इस सम्बन्ध मे कानून मे क्या व्यवस्था है, कानून द्वारा इसे क्या शक्तिया प्राप्त हैं, तथा इसकी सीमायें क्या हैं, आदि प्रश्नो का

समाधान ढूंढ़ा जाता है। यूरोप, विशेषत. फ्रास, जर्मनी आदि मे लोक-प्रशासन का अध्ययन विधि के माध्यम से किया जाता है। फ्रास मे सामान्य प्रशासको के लिए कानून का ज्ञान आवश्यक माना जाता है। यदि किसी प्रत्याशी ने पहले कानून की शिक्षा प्राप्त नही की है तो उसे नियुक्ति के बाद कानून की शिक्षा दिलवाई जाती है।

प्रशासन चूंकि अनेक प्रसगो मे नागरिको के अधिकारो पर प्रभाव डालता है अत: यह जरूरी हो जाता है कि यह कानूनी रूप [redacted] वैध तरीके से किया जाये, नही तो न्यायालय इसे अवैध घोषित कर सकता है। यही कारण है कि भारत मे भी भारतीय प्रशासकीय सेवा (Indian Administrative Service) मे प्रवेश के बाद सवैधानिक कानून, भारतीय दण्ड विधान आदि की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

२. ऐतिहासिक दृष्टिकोण :—ऐतिहासिक दृष्टिकोण समाज शास्त्रो के अध्ययन की एक बडी ही परम्परागत विधि है। इसमे अध्ययन के क्षेत्र विशेष की सस्थाओ के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया जाता है। इसका लाभ यह है कि मनुष्य पिछले अनुभव मे लाभ उठा सकता है। यदि हमे यह ज्ञात है कि भारत मे सचिवालय का विकास किस प्रकार हुआ। प्रशासन मे सचिवालय का विभिन्न कालो मे क्या योगदान रहा, तो हम वर्तमान काल मे सचिवालय के योगदान को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते है। आज हम यदि मुगल प्रशासन पर शोध करे तो इसका महत्व ऐतिहासिक ही होगा।

३. जीवन वृत्तान्तमक दृष्टिकोण —ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मिलता जुलता ही जीवन वृत्तान्तमक (Biographical Approach) दृष्टिकोण है। अपने देश मे जीवन वृत्तान्त या सस्मरण लिखने की परम्परा उतनी विकसित नही है जितनी कि इंगलैंड अथवा अमेरिका मे है, अभी हाल के वर्षो मे बनर्जी की 'अन्डर टू मास्टर्स (Under Two Masters), कौल की 'दी अंटोल्ड स्टोरी' (The Untold Story), गाडगिल की 'गवर्नमेंट फ्रोम इनसाइड' (Government from Inside) आदि इस श्रेणी की पुस्तके प्रकाशित हुई हैं, जिनसे अनेक प्रशासकीय समस्याओ के समझने मे मदद मिलती है।

४ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण —प्रशासन का मनुष्य के कार्य-कलापो से सम्बन्ध रहता है। मनोविज्ञान मनुष्यो की मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन करता है। मनुष्य या मनुष्य समुदाय की आशाएँ, पसदगी, नापसदगी का प्रशासन पर प्रभाव पडे बिना नही रह सकता है। अत मनोविज्ञान का प्रशासन पर प्रभाव स्पष्ट है। निजी प्रशासन के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का प्रभाव अपेक्षतया अधिक है। औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास इसका उदाहरण कहा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक विधियो के लोक प्रशासन मे लागू करने के क्षेत्र मे मिस मेरी पारकर फौलेट ने मार्ग-दर्शक का काम किया है। अमेरिका मे सरकारी तथा गैर सरकारी सेवाओ के लिए चयन पद्धति मे मनोवैज्ञानिको का बडा योगदान है।

५ राजनैतिक दृष्टिकोण —प्रशासन अन्तत एक प्रशासकीय प्रक्रिया है।

प्रशासन राजनैतिक सरचना मे ही काम करता है। प्रशासन स्वत ही एक साध्य नही, यह एक साधन मात्र है। अत. अच्छे प्रशासन की आवश्यकताएँ देश की स्थापित राजनैतिक व्यवस्था मे ही ढूँढी जानी चाहिए। समाज मे राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि स जो साध्य स्वीकार किया है, उसे प्रशासन द्वारा उपलब्ध कराना ही प्रशासन का काम है। प्रशासकीय समस्याएँ सदैव ही राजनैतिक समस्याओ का ही अग होती है। अतः राजनैतिक दृष्टि से प्रशासकीय समस्याओ के अध्ययन की आवश्यकता है। चाहे प्रशासकीय दृष्टि से कोई प्रशासकीय कार्य कितना ही उचित क्यो न हो, जब-तक कि राजनैतिक दृष्टि से वह स्वीकार न हो उसकी उपयोगिता नही के बराबर ही है।

६. व्यवहारवादी दृष्टिकोण :—इस दृष्टिकोण मे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के सामूहिक प्रभाव को ध्यान मे रखते हुए प्रशासन मे किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के व्यवहार को समझने का प्रयास किया जाता है। मनुष्य का कोई भी व्यवहार कई प्रकार के कारणो से प्रभावित होता है। अतः किसी भी व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह के प्रभाव को ठीक प्रकार से समझने के लिए सभी महत्वपूर्ण कारणो के प्रभाव को जानना जरूरी है। उदाहरण के लिए, किसी कारखाने मे मजदूरो द्वारा हड़ताल करने के कारणो को ठीक तरह से समझने के लिए मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी पहलुओ से विचार करना आवश्यक है। कई बार हड़ताल यद्यपि ऊपरी तौर से आर्थिक कारणो से दिखाई पड़ती है पर वास्तव मे इसके कारण राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक होते हैं।

७. पारिस्थितिक दृष्टिकोण —पारिस्थितिक दृष्टिकोण (Ecological Approach) यह चाहता है कि प्रशासन एव उससे सम्बन्धित समस्याओ का अध्ययन सम्बन्धित लोगो तथा उनके वातावरण के सन्दर्भ मे किया जाये। लोगो एव वातावरण की विभिन्नता के कारण समान प्रशासकीय स्थिति मे समान प्रशासकीय कार्यवाही एक-सा फल उत्पन्न नही कर पाती। उदाहरण के लिए, विभिन्न क्षेत्रो के दो गांवो को लीजिए। सरकार दोनो गांवो मे एक-एक सह-शैक्षणिक माध्यमिक स्कूल बनवाती है। पहले गांव मे लोगो को सह शिक्षा बिल्कुल ही नापसद है चाहे लड़कियाँ अशिक्षित ही क्यो न रह जायें। अत वे लड़कियो को सह-शैक्षणिक स्कूल मे नहीं भेजते हैं। दूसरे गाव मे सहशिक्षा को यद्यपि पसद तो नहीं करते पर लड़कियो को अशिक्षित रखना भी नही चाहते। अत न चाहते हुए भी लड़कियो को स्कूल भेजते हैं। सरकार द्वारा स्कूल स्थापित करने का लाभ दोनो गांवो मे अलग-अलग हुआ। पहले गांव मे लड़कियां अशिक्षित रह गई। दूसरे गाव मे उन्होने स्कूल का लाभ उठाया। ऐसा पारिस्थितिक कारणो से ही हुआ। इंगलैंड मे परम्पराओ के आधार पर बहुत सारा प्रशासन का काम सुनियोजित रूप से हो जाता है। जबकि विकासशील देशो मे इस प्रकार काम करने मे अनेक कठिनाइयां आती हैं। यह भी पारिस्थितिक कारणो से ही होता है।

८. तकनीकी दृष्टिकोण :—अमेरिका मे वैज्ञानिक व्यवस्थापन आन्दोलन के फलस्वरूप प्रशासन के अध्ययन मे भी वैज्ञानिक पद्धतियो का उपयोग किया जाने लगा है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का प्रेक्षण व प्रयोग द्वारा अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार प्रशासन का भी अध्ययन करने का प्रयास इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप किया जाता है। एफ० डब्लू० टेलर ने प्रशासकीय समस्याओ के अध्ययन के लिए भी समयपरक कार्य तथा माप-सारणी का उपयोग करके इसे एक नया मोड दिया। तकनीकी दृष्टिकोण के फलस्वरूप प्रशासन को एक स्वतन्त्र प्रक्रिया समझा जाने लगा *जिसका उद्देश्य कार्यकुशलता तथा मितव्ययता था। यह प्रक्रिया लोक तथा निजी* प्रशासन मे समान रूप से निहित थी। इसके अनुसार प्रशासन की प्रमुख प्रक्रियाएं पोस्डकोर्ब (POSDCORB) प्रत्येक प्रशासकीय स्थिति मे मिलती हैं। पोस्डकार्ब का अर्थ है योजना (P = Planning), सगठन (O = Organisation), कार्मिक-प्रशासन (S = Staffing), निदेशन (D = Direction), समन्वय (Co = Coordination), प्रतिवेदन (R = Reporting), बजट बनाना (B = Budgeting)। पोस्डकार्ब शब्द अंग्रेजी मे इन प्रक्रियाओ के प्रथम अक्षरो को मिला कर बना है।

९. केस पद्धति :—*इस पद्धति का विकास अमेरिका मे हुआ है। प्रशासकीय* दृष्टि से प्रत्येक समस्या तथा इससे सम्बन्धित निर्णय एक प्रकरण या केस (Case) है। किसी भी निर्णय की प्रक्रिया एव विभिन्न स्थितियो का अध्ययन केस पद्धति मे किया जाता है। उदाहरण के लिए, सरकार द्वारा किसी कर्मचारी के प्रति अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के निर्णय के सम्बन्ध मे केस तैयार किया जा सकता है। किन आधारो पर यह निर्णय लिया गया इसकी प्रक्रिया एव इसके कारणो का अध्ययन केस पद्धति मे किया जाता है। भारत मे केस पद्धति को लोकप्रिय बनाने मे इण्डियन इस्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ने बडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। इस्टिट्यूट के केस स्टडी समिति ने भारतीय सदर्भ मे अनेक केस तैयार किये हैं।

१० परिमाणात्मक माप की विधि —परिमाणात्मक माप साधारणत *भौतिक विज्ञानो मे काम मे लाई जाती है। सामाजिक विज्ञानो मे परिमाणात्मक माप* मे दिक्कतें आती हैं। पुलिस प्रशासन की सफलता का दण्डित अपराधियो की सख्या, चोरी के बरामद माल के मूल्य, या जनसख्या के प्रति व्यक्ति पुलिस प्रशासन के व्यय के आधार पर अनुमान लगाना अनुचित होगा। पुलिस प्रशासन ने निवारक कार्य भी किये है, जिसका माप सभव नहीं है। इन कठिनाइयो के बावजूद भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहा परिमाणात्मक माप सम्भव है। जैसे टाइपिस्ट का काम, टेलीफोन ऑपरेटर का काम या मशीन ऑपरेटरो के काम। कई बार लोकमत मतदान (Public opinion Poll) द्वारा प्रशासकीय कामो के बारे मे जनता की राय जानने का प्रयास किया जाता है। यह परिमाणात्मक माप विधि का ही उदाहरण है।

विशेष अध्ययन के लिए

१. एम० पी० शर्मा	:	लोक-प्रशासन: सिद्धान्त एवं व्यवहार
२. पी० सरन	.	पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
३. वाइट	:	इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन



३

लोक-प्रशासन का महत्त्व

आज लोक-प्रशासन का महत्त्व हमारे जीवन मे बहुत अधिक हो गया है। वैसे प्रशासन का विषय तो काफी पुराना है। जहाँ कही भी एक से अधिक व्यक्ति किसी काम पर हो और एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम कर रहे हो, प्रशासन का होना अत्यावश्यक है। पर प्रशासन का गम्भीरता से अध्ययन अभी हाल मे ही प्रारम्भ हुआ है। पहले प्रशासन अध्ययन की वस्तु न समझी जाकर व्यक्तिगत अनुभव की वस्तु समझी जाती थी। प्रशासन का व्यावहारिक ज्ञान तो अभी उसी प्रकार प्राप्त किया जाता है पर अब प्रशासन के विभिन्न अग विश्वविद्यालयो मे अध्ययन एव अनुसंधान के विषय बन गये हैं।

प्रशासन आज के समाज मे बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रोफेसर डोनहम ने कहा है कि यदि हमारी सभ्यता असफल रहती है तो यह मुख्यतया प्रशासन के भग होने के कारण होगी। एक अन्य विद्वान ने कहा है कि प्रशासन के विषय से अधिक महत्त्वपूर्ण और कोई विषय नही है। सभ्य सरकारो का भविष्य, और सम्भवत सभ्यता का ही भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि प्रशासन ऐसे विज्ञान, दर्शन एव कार्यविधि विकसित करे जो सभ्य समाज की जिम्मेवारियो को निभा सके।

यदि हम आज से पचास या सौ वर्ष पहले की स्थिति का अनुमान करें तो पता चलेगा कि आज का मनुष्य पहले की अपेक्षा सरकार एव प्रशासन पर अधिक आश्रित है। पहले किसान अपनी जरूरत के लिए अनाज उपजा लेता था। गाँव के जुलाहे से कपडा आवश्यकतानुसार प्राप्त कर लेता था। मोची से जूते बनवा लेता था। उसकी जीवन की आवश्यकताएँ बहुत कम थी। हर मनुष्य अपनी आवश्यकता की सारी चीजें प्रायः पैदा कर लेता था। यदि किसी पुलिया या रास्ते की मरम्मत का प्रश्न होता तो गाँव वाले मिलकर यह काम कर लेते थे। समाज का यह ढाँचा औद्योगिक क्रांति के बाद एकदम बदल गया। उत्पादन की नयी व्यवस्था चालू हो गई। अब आत्मनिर्भरता के युग का अन्त हो गया। नये शहर बस गये। नये कल-कारखानो का निर्माण हुआ। गाँव की समस्या गाँव के लोग स्वय ही हल कर सकते थे। नये शहरो की समस्या सरकार द्वारा ही सुलझाई जा सकती थी। बहुत सी ऐसी समस्याएँ सामने आई जिनमे कुछ व्यक्ति या व्यक्ति समूह प्राय निरीह दर्शक मात्र ही रह सकते थे। अब मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत अधिक बढ गई और यह संभव न रह गया कि वह आवश्यकता की हर वस्तु अपने-आप उत्पन्न कर ले। अतः

हम यह कह सकते हैं कि जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया मनुष्य सरकार एव प्रशासन पर अधिक निर्भर रहने लगा। यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भविष्य मे भी यही प्रवृत्ति रहेगी और लोग सरकार एव प्रशासन पर और भी अधिक निर्भर होते जाए गे।

आज की सरकारो ने पहले की अपेक्षा कही अधिक काम अपने हाथो मे ले रखा है। यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि ऐसा क्यो हुआ है ? इसके कुछ महत्वपूर्ण कारण नीचे दिये जाते है :—

१. विज्ञान के बढ़ते हुए चरणो ने सरकारो की जिम्मेवारी बढाने मे बहुत अधिक सहयोग दिया है। हर वैज्ञानिक अनुसधान ने राज्य के लिए नये काम पैदा किये हैं। उदाहरण के लिए मोटर को लीजिए। मोटरो के लिए अच्छी पक्की सडको की आवश्यकता होती है, अत लोक-निर्माण विभाग भवन एव मार्ग (P W.D., B&R) का निर्माण करना पडा। मोटरें दुर्घटना स्थल से आसानी से भाग न सकें इसलिए उन पर नम्बर प्लेटें लगवाने की व्यवस्था करनी पडी। मोटरें वही लोग चला सकें जिन्हे अच्छी तरह चलाना आता है इस कारण चालको के लिए लाइसेंस की व्यवस्था जरूरी हो गई। मोटर कारो से पुलिस विभाग की जिम्मेवारियाँ बढ गईं, क्योकि अब अपराधी पहले की अपेक्षा कही अधिक तेजी से भाग सकता था। मोटरें काफी मूल्य-वान होती हैं अत. विस्त-क्रय के तरीके की आवश्यकता महसूस हुई। भारत सरकार मे प्रसारण विभाग इसीलिए बनाया गया कि बेतार के तार से समाचार और मनोरजन के लिए गाने आदि का प्रसार विज्ञान ने सभव कर दिया। इस प्रकार, इस तथ्य की पुष्टि मे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

२ वर्तमान औद्योगिक तथा शहरी सभ्यता ने भी राज्य के लिए नये काम उत्पन्न किये है। औद्योगिक सभ्यता के फलस्वरूप बडे-बडे कल-कारखाने खुले और शहरो की जनसख्या बहुत अधिक बढ गई। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कलकत्ते की जनसंख्या प्रतिवर्ष २००,००० की दर से बढ रही है[1]। फैक्ट्री एक्ट के तत्वावधान मे फैक्ट्री इन्सपेक्टर, बॉयलर इन्सपेक्टर नियुक्त किये गए तथा राज्य को फैक्ट्री एक्ट को कार्यान्वित करने की जिम्मेवारी स्वीकार करनी पडी। जनसख्या बढने से आवास, स्वास्थ्य, आवागमन के साधन, सुरक्षा व्यवस्था, बिजली, पानी और गैस की उत्पत्ति एव वितरण पर सरकारी नियत्रण आवश्यक हो गया।

३. लोक-प्रशासन के माध्यम से अब सामाजिक एव पुनर्निर्माण के प्रयत्न किए जा रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने आर्थिक असमानता दूर करने तथा छूआछूत को अवैध घोषित करने के लिए नियम बनाये हैं। देश मे शिक्षा प्रचार के प्रयत्न किये जा रहे हैं और स्त्रियो एवं पुरुषो को कानून द्वारा समानता का स्तर प्रदान किया गया है।

१. वीक एन्ड रिव्यू (Week End Review) April 1, 1967

४. आज विकासशील देशों मे तीव्रगति से आर्थिक प्रगति करने के लिये आर्थिक नियोजन किया जा रहा है। आर्थिक नियोजन के कारण सरकार को अब बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है। अनेक क्षेत्र जहाँ पहले सरकार का कोई हस्तक्षेप न था अब सरकारी नियन्त्रण मे लाये गए हैं। सरकार ने भुखमरी और गरीबी के विरुद्ध युद्ध छेड रक्खा है। आज सरकार का यह दावा है कि वह प्रशासन के माध्यम से समाजवादी समाज की स्थापना करने जा रही है।

५. इस समय ससार मे विश्व व्यापी युद्ध के भय के कारण भी सरकार को नये-नये काम करने पड रहे हैं। युद्ध की हानि से नागरिको की रक्षा के लिए नागरिक सुरक्षा विभाग की स्थापना करनी पडनी है। देश की रक्षा के लिए सरकार को नये-नये काम करने पडते हैं। आग्ल शासन काल मे द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान प्रतिरोध प्रचार निदेशालय (Counter Propaganda Directorate) और ए० आर० पी० (Air Raid Precaution) के विभाग खोले गये।

६. सरकारो का काम इसलिए भी बढ गया है कि आज के युग मे सरकारो से लोगो की आशाएँ बढ गई हैं। जहाँ सरकार को पहले टैक्स वसूल करने वाले एजेन्ट के रूप मे देखा जाता था वहाँ अब यह आशा की जाती है कि सरकार नये स्कूल खोले, नये पथ और भवनो का निर्माण करे, जनता के लाभ के लिए नई सेवाओ का प्रबन्ध करे। सरकार इन सभी आशाओ की पूर्ति के लिए कुछ न कुछ करने का प्रयत्न करती है। फलतः राज्य का काम बहुत अधिक बढ जाता है।

चूँकि सरकार के काम बहुत बढ गए हैं और इसकी कार्य कुशलता पर ही हमारे समाज का भविष्य एव विकास निर्भर करता है अतः प्रशासन का महत्व स्पष्ट ही है।

प्राचीन काल मे प्रशासन इतने व्यापक पैमाने पर विस्तार पा सके इसकी सुविधा नही थी। आज के जमाने मे विज्ञान की प्रगति के कारण रेल, तार, हवाई जहाज, टेलीफोन तथा रेडियो के कारण समय और दूरी पर विजय प्राप्त करली गई है।

यदि देश के किसी भी भाग मे कोई गडबडी हो तो राजधानी मे उसकी सूचना तत्काल टेलीफोन और रेडियो द्वारा भेजी जा सकती है। कुछ ही घण्टो के भीतर देश के किसी भी भाग मे हवाई जहाज से सेना की टुकडियाँ पहुँचाई जा सकती हैं।

एक समय था जबकि सरकार एव प्रशासन के अधिकारो को अत्यन्त सीमित रखने की चेष्टा की जाती थी। सरकार को अत्याचार एव दमन का साधन समझा जाता था। अब सरकार और जनता के बीच सम्बन्धो को नये रूप मे देखा जा रहा है। सरकार अब जनता के सामने तानाशाह के रूप मे न आकर मित्र और सेवक के रूप मे आती है। आज सरकार जनता के सर्वांगीण विकास मे शक्ति भर अपना भाग अदा करना चाहती है।

लोक-प्रशासन एवं निजी प्रशासन

लोक-प्रशासन सरकारी विभागों एव कार्यालयो के प्रशासन से सम्बन्ध रखता है। लोक-प्रशासन का तात्पर्य अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राजकीय, एव स्थानीय स्तर पर सरकारी सस्थानो की कार्यपालिकाओ के सगठन, एव कार्यविधि का अध्ययन करना है। इसके दूसरी ओर निजी प्रशासन मे गैर सरकारी विभागो एव आफिसो के प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। लोक-प्रशासन की भांति ही यह भी अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राजकीय एवं स्थानीय स्तर पर कार्यपालिकाओ के सगठन एव कार्यविधि का अध्ययन करता है, पर यह अध्ययन गैर सरकारी सस्थानो तक ही सीमित रहता है। अत यह कहा जा सकता है कि प्रशासन एक प्रजातीय प्रक्रिया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसको दो विशिष्ट क्षेत्रो, लोक-प्रशासन एव निजी प्रशासन मे बांटा गया है।

कुछ लोगो का विचार है कि लोक-प्रशासन एव निजी प्रशासन मे मौलिक भेद हैं। पर यह बात वस्तुत. सत्य नही। प्रशासन के कुछ सामान्य सिद्धान्त और आवश्यकताएँ हैं। चाहे प्रशासन का क्षेत्र लोक-प्रशासन हो, अथवा निजी-प्रशासन, उस पर प्रशासन के सिद्धान्त लागू होगे। कर्मचारी वर्ग का प्रशासन बजट, निर्णय लेना, प्रशासकीय योजनाएँ बनाना, नियन्त्रण, पर्यवेक्षण की समस्याएँ तो ऐसी हैं जो हर प्रकार के प्रशासन मे लागू होती हैं। यह बात दूसरी है कि सरकारी एवं गैर सरकारी प्रशासन का वातावरण भिन्न होता है। इस कारण इन समस्याओ के व्यावहारिक हल एक एकदम से न हो सके, पर प्रशासन के मूलभूत सिद्धान्त दोनो मे ज्यो के त्यो मिलते हैं। यही कारण है कि प्रशासन का विद्यार्थी दोनो प्रकार के प्रशासनो का अध्ययन करता है। अमेरिका मे कर्मचारी वर्ग के प्रशासन मे निजी प्रशासन के क्षेत्र मे काफी अनुसंधान हुआ है। इन अनुसधानो के नतीजे सरकारी और गैर सरकारी दोनो प्रकार के प्रशासनिक क्षेत्रो मे लागू किये गए हैं।

लोक एवं निजी प्रशासन मे समानता

१. दोनो प्रशासनिक क्षेत्रो मे कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जो एक ही समान हैं जैसे क्लर्क, लेखा-क्लर्क, वकील, अर्थशास्त्री। इनकी सेवाओ की दोनो क्षेत्रो मे समान रूप से आवश्यकता है। सरकारी सेवाओ से अवकाश प्राप्त अधिकारी एव कर्मचारी निजी प्रशासन मे ले लिये जाते हैं। अमेरिका मे तो लोक एव निजी प्रशासन मे कर्मचारियो की अदला-बदली आम बात है।

२ प्रशासन के सिद्धान्त नेतृत्व, संचार, निर्णय लेना, पर्यवेक्षण, बजट आदि दोनों क्षेत्रो मे समान रूप से लागू होते हैं।

३. निजी क्षेत्रो के प्रशासन ने लोक-प्रशासन पर प्रभाव डाला है। लोक-प्रशासन ने भी निजी प्रशासन पर बदले मे प्रभाव डाला है। अमेरिका मे प्रशासनिक अनुसंधान अधिकतर निजी प्रशासन के क्षेत्र मे हुए हैं। वहा पर पहले निजी प्रशासन

ने पेंशन की व्यवस्था की। श्रमिकों को सतुष्ट रखने के लिए कैंटीन, क्लब और मनोरंजन की व्यवस्था की। यह सब इसलिए किया गया कि अनुसंधानों से यह प्रमाणित हो गया था कि संतुष्ट कार्यकर्त्ता अधिक उत्पादक कार्यकर्ता होता है। निजी-प्रशासन मे इनकी सफलता देखकर लोक-प्रशासन मे भी अमेरिका मे इन्हे अपना लिया गया। भारत और अविकसित देशो मे सरकार को आदर्श मालिक के रूप मे मानकर उनकी कार्यपद्धति को निजी क्षेत्रो मे अपना लिया गया है।

४ *निजी और लोक-प्रशासन मे कुछ अन्तर तो इसलिए भी आ जाते हैं कि निजी प्रशासन छोटे पैमाने पर चलाया जाता है जबकि लोक-प्रशासन बहुत बड़े पैमाने पर चलाया जाता है। क्षेत्र की व्यापकता से कार्यविधि मे अन्तर आना आवश्यक है। पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि यह अन्तर स्वामित्व—एक के लोक-प्रशासन और दूसरे के निजी प्रशासन मे होने—के कारण नही है बल्कि प्रशासनिक इकाइयो के छोटी बड़ी होने से है। अक्सर यह कहा जाता है कि निजी प्रशासन लाल फीताशाही से मुक्त है, जबकि लोक-प्रशासन म इसका बोल-बाला है। यदि निजी-प्रशासन भी उसी प्रकार के वातावरण मे काम करे जिसमे कि लोक-प्रशासन करता है—एकाधिकार एव वस्तु या सेवा की प्राप्ति का अन्य कोई साधन न होना—तो निजी प्रशासन मे उतनी ही लालफीताशाही हो जाएगी जितनी लोक-प्रशासन मे हैं। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि लालफीताशाही लोक-प्रशासन के स्वभाव मे ही निहित हो ऐसा नही कहा जा सकता। लोक-प्रशासन मे एकाधिकार के कारण सुस्ती आ जाती है। यदि आप एक तार भेजना चाहते हैं तो आपको चाहे जितनी देर पक्ति मे खडे क्यो न रहना पडे आपको खडे रहना ही पडेगा क्योकि दूसरा कोई साधन नही। निजी प्रशासन मे उपभोक्ता प्रतियोगिता के कारण अपने को इतना असहाय नही पाता। यदि एक दूकानदार से आप सन्तुष्ट न हो तो आप दूसरे दुकानदार के पास जा सकते हैं। जहा यह स्थिति नही है लोक-प्रशासन और निजी प्रशासन मे बहुत कम अन्तर हो जाता है। आपके शहर के वैस्पा, लैम्ब्रेटा और फियट मोटरो के विक्रेता की तुलना लाल फीताशाही और अभद्र व्यवहार के सदर्भ मे किसी भी सरकारी विभाग से की जा सकता है।*

लोक एवं निजी प्रशासन मे अन्तर

१. लोक-प्रशासन कानून द्वारा निजी प्रशासन से कही अधिक सीमा तक नियोजित किया जाता है। लोक-प्रशासन पर पर्यवेक्षण और नियत्रण के लिए सरकार ने अनेक नियम और कानून बना रखे हैं। सारा काम इन नियमो और कानून के अनुसार ही होना चाहिए। उसका उल्लघन दण्डनीय अपराध है। यदि इनका उल्लघन हो जाय तो विधान मण्डल और लोकसभा मे सदस्यगण प्रश्न पूछ-पूछ कर मंत्रियो को परेशान कर डालते हैं। यदि कोई वस्तु किसी विभाग मे खरीदी जानी है तो नियमानुसार निविदा आमन्त्रित किये जाने चाहिएँ। निविदा आमंत्रित करने की

प्रक्रिया भी नियमों द्वारा निर्धारित है।

वैसे तो निजी प्रशासन भी कानूनों द्वारा नियन्त्रित है। भारतीय कम्पनी अधिनियम देश के अधिकांश निजी प्रशासन के प्रतिष्ठानों पर लागू होता है। पर यहां पर नियंत्रण लोकप्रशासन की अपेक्षा काफी कम रहता है। निजी प्रशासन के क्षेत्र में काफी हद तक स्व-विवेकाधीन अधिकार हैं जोकि लोक-प्रशासन के क्षेत्र में नहीं हैं।

२. लोक-प्रशासन में एकरूपता का सिद्धान्त लागू होता है। सभी व्यक्तियों के साथ एक सा ही व्यवहार होना चाहिए। यदि आप बहुत ही छोटी-सी बात के लिए भी किसी सरकारी कार्यालय में आवेदन दें तो उनके लिए पूर्व दृष्टान्त ढूंढने की आवश्यकता होती है जिसमें कि पूर्व निर्णय के अनुसार ही निर्णय लिया जा सके। यदि ऐसा न हो तो लोक-प्रशासन पर अनियमितता एवं पक्षपात का दोषारोपण किया जा सकता है।

निजी प्रशासन में इस प्रकार के पूर्व निर्णय के अनुसार आगे निर्णय लेने का बन्धन नहीं होता। निजी प्रशासन में अपने विवेक के अनुसार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ आवश्यकतानुसार अलग-अलग व्यवहार किया जा सकता है।

३. लोक-प्रशासन जनता के प्रति जिम्मेवार होता है। पालियामेंट और राज्यों के विधान मण्डलों के सदस्य प्रशासन के बारे में प्रश्न पूछ सकते हैं। पालियामेंट का कोई भी सदस्य यदि चाहे तो यह प्रश्न पूछ सकता है कि पिछले वर्ष मई महीने की ३ तारीख को अमुक स्थान पर ट्रेन देरी से क्यों पहुँची ? बहुत हद तक लालफीताशाही का कारण प्रशासन का पालियामेंट के प्रति जिम्मेवार होना है। चूँकि प्रशासन पालियामेंट के प्रति जिम्मेवार है, इसलिए इसे अपने कार्यों की विस्तृत लिखित रिपोर्ट रखनी पड़ती है जिससे कि प्रश्नों का उत्तर दिया जा सके। यदि कोई जाँच हो तो जाँच आयोग के सामने तथ्य उपस्थित किए जा सकें। विस्तृत लिखित रिपोर्ट रखने में बहुत अधिक समय लग जाता है। अनेक प्रकार के फार्म आदि भरने पड़ते हैं। रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। निर्णय लेने में भी देरी होती है क्योंकि सभी अधिकारी भयभीत रहते हैं कि कहीं कोई ऐसी बात न हो जाए जिससे कि विधानमण्डल या पालियामेंट में कोई प्रश्न आदि उठ खड़ा हो। अतः वे पूर्व दृष्टान्त, एवं पूर्व निर्णय की पूरी-पूरी जाँच कर ही कोई कदम उठाना चाहते हैं।

निजी प्रशासन के आन्तरिक मामलों के बारे में न तो पालियामेंट एवं विधान-मण्डलों में इस प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं और न हिस्सेदारों की वार्षिक बैठक में ही इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि निजी प्रशासन नियंत्रण से मुक्त है। निजी प्रशासन पर भी नियंत्रण है। भारतीय कम्पनी अधिनियम तथा दूसरे अधिनियमों की धाराओं को मानना आवश्यक है। यदि सरकार यह समझती है कि निजी प्रशासन की किसी इकाई द्वारा भारतीय कम्पनी अधिनियम की धाराओं का उल्लंघन हुआ है तो वह जांच-आयोग द्वारा जांच

करवा सकती है। साहू जैन और मूंदड़ा की कम्पनियों की जांच भारत सरकार द्वारा करवाई गई थी। यदि कम्पनी अधिनियम और दूसरे औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर नियन्त्रण रखने वाले अधिनियमों का अतिक्रमण न होता हो तो निजी-प्रशासन आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र होता है। यह बात लोक-प्रशासन के क्षेत्र में लागू नहीं होती।

४. लोक-प्रशासन में लाभान्वित होने की भावना नहीं रहती। सरकार के अनेक विभाग जैसे सेना, पुलिस, जेल, शिक्षा, चिकित्सा, जनस्वास्थ्य आदि कोई मुनाफा कमा ही नहीं सकते। सरकार यदि सारा काम मुनाफे को ध्यान में रखकर करती तो इसे बहुत सारे विभाग बंद कर देने पड़ते। सरकार तो बहुत सारा काम जन-कल्याण की भावना से करती है। यदि पोस्ट आफिस से थोड़ा बहुत मुनाफा हो जाय तो यह दूसरी बात है, पर पोस्ट आफिस मुनाफा कमाने के लिए नहीं चलाया जाता। निजी *प्रशासन में मुनाफा कमाना सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।* पूंजी के मालिक पूंजी इसीलिए लगाते हैं जिससे कि मुनाफा कमाया जा सके। नहीं तो उन्हें पूंजी लगाने से लाभ ही क्या होगा?

पर सरकार के औद्योगिक प्रतिष्ठान उपरोक्त नियम के अपवाद हैं। औद्योगिक प्रतिष्ठान चाहे वह सरकारी हो अथवा गैर सरकारी उन्हें मुनाफा कमाना ही होता है। जैसे रेलवे, जीवनबीमा-निगम आदि। यदि औद्योगिक प्रतिष्ठानों में मुनाफा नहीं होता तो यह प्रबन्ध की अकुशलता दर्शाता है। इस प्रकार निजी प्रशासन *क्षेत्र में भी कुछ ऐसे अपवाद मिलेंगे जहां मुनाफा कमाना उद्देश्य नहीं है जैसे, गीता-प्रेस गोरखपुर, बिड़ला एज्युकेशन ट्रस्ट पिलानी, किसी मंदिर की प्रबन्धक बोर्ड, क्लब का प्रशासन आदि। इनमें से किसी का भी मुनाफा कमाना उद्देश्य नहीं है।*

५. लोक-प्रशासन साधारणतः एकाधिकारी होता है। यह औद्योगिक एवं सामान्य प्रशासन दोनों की इकाइयों पर लागू होता है। पुलिस, सी० आई० डी०, सेना, रेवेन्यू, पर सरकार का एकछत्र अधिकार होता है। रेलवे और जीवनबीमा दोनों ही पर सरकार का एकछत्र अधिकार है। पर कुछ क्षेत्रों में सरकार को प्रतिस्पर्धा का भी सामना करना पड़ता है। एक ही शहर में सरकारी और गैर सरकारी स्कूल तथा कालेज होते हैं। सरकारी और गैर सरकारी अस्पताल होते हैं। इनमें आपस में प्रतिस्पर्धा होती है। *जीवनबीमा-निगम का यद्यपि जीवन बीमा पर एकाधिकार है पर बीमा के* अन्य क्षेत्रों में इसे दूसरी व्यावसायिक बीमा कम्पनियों जोकि निजी प्रशासन में हैं उनसे होड़ करनी पड़ती है। रेलवे को बस और ट्रक की कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा करनी होती है।

निजी प्रशासन में प्रतिस्पर्द्धा साधारण नियम है। यही निजी प्रशासन और लोक-प्रशासन के अन्तर की जड़ है। यदि निजी प्रशासन में प्रतिस्पर्धा नहीं है तो इसका कारण है सरकार के कन्ट्रोल एवं लाइसेंस की नीति। यदि दो समान परिमाण वाली इकाइयां ली जाएं जिनमें से एक निजी प्रशासन और दूसरा लोक-प्रशासन में हो और दोनों में ही प्रतिस्पर्धा न हो तो दोनों का व्यवहार एवं आचरण एक सा ही

होगा।

६ लोक-प्रशासन साधारणत: वही काम करता है जिसकी आज्ञा स्पष्ट रूप से कानून द्वारा दी गई हो। यदि सरकार ऐसा कोई काम कर रही है जिसके लिए कानून की स्पष्ट आज्ञा न हो तो कोई भी व्यक्ति न्यायालय की शरण ले सकता है। न्यायालय सरकार को निर्धारित कार्य-क्षेत्र से बाहर जाने से रोकेगा। निजी प्रशासन के सम्बन्ध मे स्थिति इससे भिन्न होती है। निजी प्रशासन वे सब काम कर सकता है जिन पर कि कानून द्वारा रोक न लगा दी गई हो।

प्राय: कहा जाता है कि लोक-प्रशासन मे कायदे-कानून पूर्व दृष्टात व पूर्व निर्णय पर चलने वाला अधिकारी वृत से सचालित और राजनैतिक होना है। अधिकारी निजी प्रशासन व्यावहारिक और अराजनैतिक होता है। लोक-प्रशासन मे कानून, पूर्व दृष्टान्त, पूर्व निर्णय इसलिए सर्वमान्य होते है क्योंकि सारा काम कायदे कानूनो के अनुसार होना जरूरी होता है। सरकारी कार्यालय मे काम करने वालो के लिए यह अधिक महत्वपूर्ण है कि काम नियमानुसार हो, बनिस्पत इसके कि वह जल्दी हो। सरकार का एकाधिकार होता है इसलिए वहाँ जल्दी नही है। यदि आप किसी लाइसेंस या परमिट के लिए आवेदन कर्ता हैं तो चाहे जितनी बार आपको कार्यालय का चक्कर क्यो न लगाना पडे, आपके लिए दूसरा कोई चारा नही। सरकार का नियन्त्रण चूँकि राजनीतिज्ञो के हाथो मे होता है इसलिए राजनैतिक आधार पर कुछ निर्णय होना स्वाभाविक ही है।

निजी प्रशासन मे साधारणत एकाधिकार नही होता इसलिए किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान को आप पत्र भेजें, तो उन्हे जवाब भेजने की जल्दी रहती है क्योकि उन्हे भय रहता है कि यदि उन्होने जवाब भेजने मे देरी की तो कही यह काम उनके हाथ से निकल न जाय। साथ ही जैसा पहले भी स्पष्ट किया गया है, आन्तरिक मामलो मे निजी प्रतिष्ठानो मे नियम-कानून, पूर्व दृष्टान्त, पूर्व निर्णय आदि पर इतना बल नही दिया जाता क्योकि इस सम्बन्ध मे प्रबन्धको से स्पष्टीकरण मागने की प्रथा निजी प्रशासन मे नही है। अत: निजी प्रशासन मे पूर्व दृष्टान्त, पूर्व निर्णयो का इतना ध्यान नही रहता जितना लोक-प्रशासन मे। प्रतिस्पर्धा के कारण काम जल्दी निपटाया जाता है।

निजी एव लोक-प्रशासन का यह अन्तर दो बातो पर निर्भर करता है। पहली बात तो परिमाण या आकार की है। साधारणत: लोक-प्रशासन की इकाइयाँ निजी प्रशासन की इकाइयो से बडी होती हैं। यदि निजी प्रशासन की इकाइयाँ भी उतनी ही बडी हो जितनी लोक-प्रशासन की तो निजी प्रशासन मे भी पूर्व दृष्टान्त (Precedent) और पूर्व निर्णय का प्रयोग बढने की प्रवृत्ति का भी विकास होगा। जब प्रशासकीय इकाइयो का विकास होता है तो वे निर्वैयक्तिक होने लगती हैं। लोग एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से नही जानते हैं। अत: नियम कानून, पूर्वदृष्टान्त, और पूर्व निर्णय पर अधिक निर्भर रहना पडता है।

अन्तर का दूसरा कारण प्रतिस्पर्द्धा की अनुपस्थिति है । यदि प्रतिस्पर्द्धा न हो और निजी प्रशासन को यह भय न हो कि कोई दूसरा उनके कामों को ले लेगा तो निजी प्रशासन और सरकारी कार्यालयों में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा । अपने शहर के वेस्पा, लेम्ब्रेटा अथवा फिएट कार के विक्रेता को एक पत्र डाल कर आप इस कथन की सत्यता को जाँच कर सकते हैं ।

विशेष अध्ययन के लिए

१. विलोबी : प्रिंसिपिल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
२. साइमन, थामसन स्मिथ बर्ग : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
३. पी० सरन : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
४. वाइट : इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

४

अध्ययन के विषय के रूप में लोक-प्रशासन का विकास

यद्यपि प्रशासन का अनुभव प्राचीन काल से चला आ रहा है, पर इसका अध्ययन अभी हाल के वर्षों में ही होने लगा है। भारत तथा विदेशों में अनेक ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहां लोक-प्रशासन को स्वतन्त्र रूप से एक विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाता है। इन विश्वविद्यालयों में राजनीतिशास्त्र के साथ लोक-प्रशासन जुड़ा हुआ है।

प्रशासकीय व्यवस्था के अध्ययन की ओर अधिक ध्यान अभी हाल के वर्षों में निम्नलिखित कारणों से दिया जाने लगा है :—

(अ) वर्तमान राज्यों में सरकार का प्रशासकीय कार्य बहुत अधिक बढ़ गया है। जनता की सुख-सुविधा बहुत कुछ सरकार द्वारा इन कामों को पूरा करने में कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। अतः प्रशासकीय व्यवस्था एवं कार्यपद्धति का अध्ययन किया जाने लगा है।

(ब) लोक-प्रशासन पर राष्ट्रीय आय का काफी बड़ा अंश खर्च हो जाता है। यदि बजट को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक वर्ष सरकार का खर्च अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है। अतः यह आवश्यक हो गया कि इस धन को उचित रूप से खर्च किया जाए और हर प्रकार की फिजूल-खर्ची रोकी जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी लोक-प्रशासन का अध्ययन आवश्यक हो गया है।

(स) चूंकि प्रशासन विज्ञान है, अतः यह आवश्यक है कि अन्य विज्ञानों की भांति इसका भी अध्ययन किया जाए। जब सरकार का काम इतना बढ़ गया है, तो यह प्रश्न उठता है कि इन कामों को अच्छी तरह कैसे किया जाय। इसके लिए प्रशासकीय समस्याओं के अध्ययन एवं अनुसंधान की आवश्यकता प्रतीत हुई।

अमेरिका में लोक-प्रशासन के अध्ययन पर ज्यादा जोर दिया गया है। वहां अनेक विश्वविद्यालयों में लोक-प्रशासन, औद्योगिक प्रशासन, तथा व्यवस्था आदि विषयों को पढ़ाया जाता है तथा इनसे सम्बन्धित समस्याओं पर अनुसन्धान करवाया जाता है। वहां प्रशासन एक विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। जिस प्रकार लोग कानून, डाक्टरी, इंजीनियरिंग आदि की शिक्षा के लिए सम्बन्धित कालेजों में प्रवेश लेते हैं, उसी प्रकार प्रशासन के अध्ययन के लिए लोग व्यवस्था विद्यालयों

(Management School) मे प्रवेश लेते हैं ।

वुडरो विल्सन का कथन है कि प्रशासन का विज्ञान राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का नवीनतम फल है । प्रशासन का विज्ञान बीसवी शताब्दी की देन है । १८८७ मे विल्सन के लेख के प्रकाशन के साथ एक नये युग का जन्म हुआ, जिसमे धीरे-धीरे लोक-प्रशासन अध्ययन के एक नये क्षेत्र के रूप मे विकसित हुआ । अमेरिका मे कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सम्बद्ध इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, तथा मैक्सवेल स्कूल ऑफ सिटिजनशिप एण्ड पब्लिक एफेयर्स (सिराकूज विश्वविद्यालय) ने स्नातक स्तर पर लोक प्रशासन के शिक्षण मे महत्त्वपूर्ण भाग लिया है । सन् १६०६ मे न्यूयार्क मे ब्यूरो ऑफ म्युनिसिपल रिसर्च की स्थापना की गई । सन् १६२६ मे लियोनार्ड डी व्हाइट ने, जिन्हे अमेरिका मे लोक-प्रशासन के अध्ययन का पिता कहा जाता है, अपनी पुस्तक 'इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित की । अमेरिका तथा अन्य देशो मे यह पुस्तक अनेक वर्षों तक लोक-प्रशासन के विद्यार्थियो के बीच प्रिय बनी रही । लोक-प्रशासन के अध्ययन एव अनुसधान के क्षेत्र मे अन्य महत्वपूर्ण सस्थाओ मे शिकागो स्थित पब्लिक एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, तथा न्यूयार्क के इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन का भी नाम उल्लेखनीय है ।

अमेरिका मे लोक-प्रशासन के अध्ययन का विकास अपेक्षाकृत अन्य देशो से अधिक हुआ है । वहा अनेक विश्वविद्यालयो मे इसकी पढाई होती है तथा विद्यार्थियो को एम० ए० एव पीएच० डी० की उपाधि तक दी जाती है । इगलैंड मे लोक-प्रशासन के अध्ययन का विकास अमेरिका की अपेक्षा कम हुआ है । इग्लैंड के विश्वविद्यालयो मे साधारणतः यह राजनीति शास्त्र या सामाजिक शास्त्रो के साथ ही पढाया जाता है । मैनचेस्टर विश्वविद्यालय मे प्रशासन मे बी० ए० तथा एम० ए० की उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं । इग्लैंड मे लोक-प्रशासन के अध्ययन की सबसे अधिक सुविधा लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस मे है । अभी कुछ ही वर्ष पहले मन्त्री वर्ग के सदस्यो के आग्रह पर लोकल गवर्नमेंट एग्जामिनेशन बोर्ड ने सरकारी प्रशासन मे एक डिप्लोमा कोर्स का आयोजन किया है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत मे लोक-प्रशासन के अध्ययन की सुविधाएँ प्राय नगण्य ही थी । केवल दो या तीन विश्वविद्यालयो मे ही लोक-प्रशासन एव स्थानीय प्रशासन मे डिप्लोमा की पढाई होती थी । एम० ए० के स्तर पर लोक-प्रशासन से सम्बन्धित एक या दो प्रश्न-पत्र राजनीति विज्ञान के एम०ए० मे हुआ करते थे । लोक-प्रशासन में अनुसधान तथा प्रशिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध नही थी । अंग्रेजी शासन-काल में प्रशासन को जनता मे ज्यादा से ज्यादा दूर रखने की चेष्टा की जाती थी । अध्ययन एव अनुसधान के लिए सरकारी अधिकारी शोधकर्त्ताओ को सामग्री देने मे आनाकानी करते थे । सरकारी आफिसो के नियम भी इस प्रकार के थे, जिसमे साधारण से साधारण सूचना भी गुप्त समझी जाती थी । प्रशासन पर इस काल मे

जो भी पुस्तकें लिखी गईं वे अधिकतर सिविल सर्विस के अफसरों ने ही लिखीं। जैसे ब्लंट ने आई० सी० एस० पर पुस्तक लिखी। ओरमैले ने 'इंडियन सिविल सर्विस' नामक पुस्तक लिखी। भारतीय प्रोफेसरों ने जो पुस्तकें लिखीं वे अधिकतर प्रशासकीय इतिहास से सम्बन्धित थीं क्योंकि पुरानी घटनाओं के सम्बन्ध में सामग्री देने में सरकार को इतनी आपत्ति नहीं होती थी। डी० एन० बनर्जी ने 'अर्ली एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ दी ईस्ट इंडिया कम्पनी इन बंगाल' नामक पुस्तक लिखी।

भारत में लोक-प्रशासन के अध्ययन एवं अनुसंधान का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हुआ है। फोर्ड फाउंडेशन के विशेषज्ञ डीन एप्लबी की सम्तुति पर सन् १९५४ में इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना नई दिल्ली में तत्कालीन प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में की गई। यह एक स्वायत्तशासी अराजनैतिक संस्था है। प्रारम्भ में इन्स्टीट्यूट के लिए फोर्ड फाउंडेशन ने पर्याप्त धनराशि दी थी। इसके अलावा इसके आय के स्रोतों में निम्नलिखित प्रमुख कहे जा सकते हैं

(अ) भारत सरकार द्वारा दी गई आर्थिक सहायता।

(ब) सदस्यों से प्राप्त शुल्क आदि।

(स) दान से प्राप्त धनराशि।

इस इन्स्टीट्यूट ने लोक-प्रशासन के अध्ययन में रुचि उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित कार्य किए हैं :—

१. इंस्टीट्यूट ने अपने मुख्यालय पर एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाया है जहां प्रशासन से सम्बन्धित पुस्तकों का बड़ा ही सुन्दर संकलन है। इसके वाचनालय में देश एवं विदेशों से प्रकाशित लोक-प्रशासन से सम्बन्धित अनेक पत्र पत्रिकाएँ पढ़ने को मिलती हैं। अन्य किसी पुस्तकालय में शोधकर्ताओं को इतनी सुविधा शायद ही उपलब्ध हो सके।

२. इन्स्टीट्यूट के तत्वावधान में पहले इंडियन स्कूल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन चला करता था। यह संस्था एम० डी० पी० ए० का डिप्लोमा प्रदान करती थी। लोक-प्रशासन के अध्ययन के विकास में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया। कुछ वर्ष पहले इसे बन्द कर दिया गया।

३. इंस्टीट्यूट ने प्रशासकीय समस्याओं पर अनेक अध्ययन किये हैं जैसे कृषि-विकास व्यवस्थापन (Administering Agricultural Development) जिला स्तर पर राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों के बीच सम्बन्ध (Relations between Politicians and Administrators at the District level) आदि।

४. इंस्टीट्यूट समय समय पर प्रशासकीय महत्त्व के प्रकाशन करता रहा है। जैसे, दी ऑरगेनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एडमिनिस्ट्रेटिव रिफोर्मस् सिंस इंडिपेन्डेंस, टास्क्स एण्ड प्रायरिटीज इन एडमिनिस्ट्रेटिव रिफोर्मस्, रीसेंट ट्रेन्ड्स एण्ड डेव्लपमेन्ट्स इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया आदि।

५. इंस्टीट्यूट सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में स्थित औद्योगिक प्रतिष्ठानों के अधिकारियों के लिए अनेक प्रकार के पाठ्य-क्रम आदि की व्यवस्था करता है।

६. इंस्टीट्यूट 'इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करता है। इसमें लोक-प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर देश तथा विदेश के विद्वानों के लेख प्रकाशित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त 'न्यूज बुलेटिन' नामक मासिक भी प्रकाशित किया जाता है जिसमें देश तथा विदेशों में होने वाली प्रशासन सम्बन्धी नयी सूचनाएँ आदि प्रकाशित की जाती हैं।

७. समय-समय पर इंस्टीट्यूट ने प्रशासकीय समस्याओं पर विचार करने के लिए अधिवेशन बुलाये हैं तथा विचार गोष्ठियां आयोजित की हैं। इन अधिवेशनों एवं विचार-गोष्ठियों की रिपोर्टें प्रकाशित की जाती है जो लोक-प्रशासन के विद्यार्थियों तथा शोधकर्त्ताओं के लिए अत्यन्त ही लाभदायक सिद्ध होती हैं।

हैदराबाद मे एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज की स्थापना सन् १६४७ में की गई। यहां पर सरकारी तथा गैर-सरकारी उच्च पदाधिकारियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। भारत सरकार ने अपने उच्च पदाधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए मसूरी मे सन् १६५६ में नेशनल एकेडमी आफ एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना की। अनेक राज्य सरकारों ने भी अपने राज्य के अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए विद्यापीठों की व्यवस्था की है। राजस्थान सरकार ने हरिश्चन्द्र माथुर स्टेट इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना की है। यहां पर राज्य सरकार के अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारत में किसी भी विश्वविद्यालय में लोक-प्रशासन के लिए अलग संकाय नहीं है। इण्डियन स्कूल ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इस दिशा में प्रथम प्रयास कहा जा सकता था। पर अब यह स्कूल बन्द हो गया है। नागपुर, मद्रास, उस्मानिया, पटना, राजस्थान, दक्षिण गुजरात (सूरत), लखनऊ तथा पंजाब के विश्वविद्यालयों में लोक-प्रशासन स्वतन्त्र विषय के रूप में स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाया जाता है। अन्य विश्वविद्यालयों में राजनीतिशास्त्र के एम०ए० के पाठ्य-क्रम में दो या एक ऐच्छिक प्रश्न-पत्र लोक-प्रशासन से सम्बन्धित होते हैं। जो लोग ये प्रश्न-पत्र लेते हैं, वे यदि आगे चाहें तो लोक-प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर अनुसन्धान कर के पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त कर सकते हैं। स्नातक-स्तर पर भी लोक-प्रशासन राजस्थान, उस्मानिया तथा पंजाब विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है। नागपुर तथा लखनऊ विश्वविद्यालयों में एम०ए० के अलावा डिप्लोमा कोर्स की व्यवस्था भी है। नागपुर में स्वायत्त-शासन तथा लखनऊ में लोक-प्रशासन में डिप्लोमा दिया जाता है।

विश्वविद्यालयों में इस विषय की पढ़ाई व्यावसायिक रूप में न होकर एक उदार शैक्षणिक विषय के रूप में होती है। यदि भारतीय तथा अमेरिकी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का तुलनात्मक सर्वेक्षण किया जाए तो प्रतीत होता है कि

अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इसके व्यावसायिक रूप पर अधिक जोर दिया जाता है, जबकि भारतीय विद्यालयों में इसका रूप शैक्षणिक विषय का है।

लोक-प्रशासन के अध्ययन के तीन प्रमुख अंग कहे जा सकते हैं। (अ) प्रशासनिक सिद्धान्त, (ब) व्यावहारिक प्रशिक्षण (स) अनुसन्धान। प्रशासनिक सिद्धान्त के अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर इस विषय की पढ़ाई आरम्भ की जाए। कई विद्वानों का मत तो यह भी है कि इसकी पढ़ाई इन्टरमीजियेट तथा हायर सैकण्डरी के स्तर पर भी आरम्भ की जानी चाहिए। स्नातकोत्तर स्तर से आगे की पढ़ाई तथा अनुसन्धान आदि के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों में पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं। यदि राज्य तथा केन्द्रीय सरकार विश्वविद्यालयों को मुक्त-हस्त होकर आर्थिक सहायता दें तो स्थिति में पर्याप्त सुधार हो सकता है।

लोक-प्रशासन के लिए अध्ययन-सामग्री प्रस्तुत करने में संयुक्तराष्ट्र तकनीकी सहायता प्रशासन भी सहायता देता है। सन् १९४६ में इस प्रशासन में लोक-प्रशासन का डिवीजन स्थापित किया गया था। यह विकासशील देशों की सरकारों को अस्थायी तौर में विदेशी विशेषज्ञों की सेवाएँ उपलब्ध करवाता है। विदेशी विशेषज्ञ सिविल सर्विस के प्रशिक्षण तथा प्रशासकीय पद्धति के सुधार आदि के कार्यक्रम में सहायता देते हैं। तकनीकी सहायता प्रशासन कार्यक्रम के अन्तर्गत विकासशील देशों के लोगों को छात्रवृत्तियाँ देकर विदेशों में प्रशिक्षण दिलाने की भी व्यवस्था है। इसके अलावा इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अध्ययन सामग्री देने की व्यवस्था भी होती है।

कुछ वर्ष पहले भारतीय विश्वविद्यालयों के लोक-प्रशासन के शिक्षकों ने मिलकर इण्डियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एसोसिएशन की स्थापना की है। इस एसोसिएशन का पहला वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में १९७२ में हुआ है। इसका उद्देश्य लोक-प्रशासन के शिक्षकों को आपस में मिलने-जुलने तथा विचारों के आदान-प्रदान की सुविधा देना है। यह एक आशाप्रद चिह्न है। इससे लोक-प्रशासन के अध्ययन में सहायता मिलने की आशा है।

विशेष अध्ययन के लिए—

पी० सरन　:　पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
हलप्पा　:　स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया
इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस-अप्रेल-जून १९५५.

५

लोक-कल्याणकारी राज्य

आधुनिक युग मे जनसाधारण के जीवन मे सरकार की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अनेक बार हम सरकार की आलोचना करते हैं क्योंकि —

१ हम सरकार के किसी काम को पसन्द नही करते। शायद वह हमारे निहित स्वार्थ के विरुद्ध जाता हो।

२ हमे टैक्स देना पडता है।

३ और सरकार की अनेक आज्ञाएं माननी पडती हैं। पर महान सङ्कटो जैसे बाढ, सूखा, महामारी, विद्रोह के समय हम सरकार से सहायता की भी अपेक्षा करते हैं। सरकार हमारे बीच सामाजिक नियन्त्रण की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। हम सरकार से छुटकारा नही पा सकते हैं। यदि कोई अपने देश से भाग कर दूसरे देश मे भी चला जाय तो सरकार से उसका पीछा नही छूट सकता। उस दूसरे देश की सरकार को उसे स्वीकार करना होगा। यदि अपने देश मे विद्रोह करके सरकार का तख्ता पलट दें तो भी एक नई सरकार सत्ता की बागडोर संभाल लेगी।

सरकार वर्तमान समाज को व्यवस्थित रखने के लिए आवश्यक है। सरकार न हो तो राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। राज्य बिना विधानमण्डल के जिंदा रह सकता है, बिना स्वतन्त्र न्यायपालिका के भी राज्य का होना सम्भव है। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ मे, और बहुत-सी देशी रियासतों मे विधानमण्डल और स्वतन्त्र न्याय-पालिकाए नही होती थी। पर सरकार के बिना राज्य का अस्तित्व सभव नहीं है।

सरकार निरन्तर चलते रह सकने वाली संस्था है। सम्राट् मर सकते हैं, संविधान बदलता है पर सरकार निरंतर चलती रहती है। यह क्रांति से भी नही हटती। फ्रांस की क्रान्ति के बाद भी नई सरकार ने सत्ता संभाल ली।

जनता सरकार को इसलिए स्वीकार करती है कि जनता स्वभाव एवं प्रशिक्षण से सरकार की आज्ञाएं मानने की अभ्यस्त हो गई है। इसके अतिरिक्त आज्ञा न मानने मे दण्ड का भय सदैव ही बना रहता है।

जहा भी मनुष्य संगठित समाजो मे रहा है सरकारें भी रही हैं। संगठित समाज की सम्मिलित जिम्मेवारियो को पूरा करने का साधन सरकार ही है। संस्कृति और सभ्यता के विकास की अवस्था के अनुरूप ही सरकारें संगठित की जाती हैं। आदिवासी समाज के लिए कबीले के मुखिया का शासन या तो वर्तमान औद्योगिक

समाजों के लिए प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली विकसित की गई है। प्रजातन्त्रीय देशों में सरकार के अलावा और भी संगठन होते हैं। जैसे चर्च, क्लब, और कोई सामाजिक संस्था आदि पर सरकार इन संस्थाओं से भिन्न होती है। क्योंकि :—

१. सरकार के हाथ में सार्वभौम सत्ता होनी है।

२. कानूनी रूप से सरकार किसी को भी अपने आदेश मानने के लिए बाध्य कर सकती है। किसी भी व्यक्ति को इच्छानुसार कानून मानने या न मानने की स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। सरकार ने यदि धारा १४४ लागू कर रखी है या करफ्यू लगा रखा है तो सरकार शक्ति द्वारा जनता से इन आदेशों को मनवायेगी। टैक्स न देने वालों से जबरदस्ती टैक्स वसूल किया जाता है। पर सरकार की शक्ति द्वारा काम करा सकने की क्षमता की अपनी सीमा है। यदि सारा समाज किसी बात का विरोध करता है तो सरकार जबरदस्ती काम नहीं करवा सकती। सरकारी प्रशासन हमेशा इस आधार पर चलता है कि अधिकांश लोग सरकारी आदेशों को मानने को तैयार हैं। थोड़े-से लोगों की ओर से विरोध होना है तो उसे शक्ति से दबाया जा सकता है। सरकार गोली चलवा सकती है, गिरफ्तार कर सकती है। पर प्रजातन्त्रीय समाज में इस प्रकार के दमन की सीमाएँ हैं। राज्य में चाहे कानूनी शक्ति हो और सरकार चाहे कानून के अनुरूप ही काम कर रही हो, परन्तु यदि जनता का अधिकांश भाग किसी नीति का विरोध करता है तो प्रजातन्त्रीय सरकारें खुले रूप में नग्न शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकती। जनमत इसका विरोध करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रजातान्त्रिक सरकारें शक्ति के सहारे जो चाहे करवा सकती हैं। वहां भी शक्ति की सीमा है। उस सीमा से आगे शक्ति का प्रयोग वहां भी सम्भव नहीं।

वैसे तो दबाव और शक्ति का प्रयोग कुछ हद तक चर्च, क्लब, समाज आदि में भी होता है। मध्यकालीन इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ मिलती हैं जहां पोप ने किसी राजा को जाति से बाहर करने की घोषणा करदी। क्लब एवं राजनैतिक दलों में सदस्यों का बहिष्कार तो आम बात है। अभी चौथे आम चुनावों के बाद हरियाणा में कांग्रेस दल ने उन १३ कांग्रेसी विधायकों को जिन्होंने स्पीकर के चुनाव में मुख्य मन्त्री के प्रत्याशी के विरोध में वोट दिया उनका दल से बहिष्कार किया। बहिष्कार के अतिरिक्त अन्य प्रकार की दण्ड व्यवस्थाएँ जैसे कोई उत्तरदायित्व का पद न देना, कुछ वर्षों तक चुनाव के लिए टिकट आदि न देना भी होती हैं।

सरकार समय के अनुसार बदलती है। सरकार के कार्य क्षेत्र को ही लीजिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व सरकार ने अपने हाथ में इतने काम नहीं ले रखे थे। पुलिस-राज्य में सरकार के काम सीमित होते हैं। पुलिस-राज्य जब लोक-कल्याणकारी राज्य हो जाता है तो यह नये काम करने लगता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में सरकार ने छुआछूत उन्मूलन, आर्थिक नियोजन, बेरोजगारी दूर करने के प्रयत्न, जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण, आदि अनेक नये काम किये हैं। पुलिस-राज्य

मे लोग सरकार को दमन का साधन समझते हैं। लोक-कल्याणकारी राज्य में यह जनता के सेवक रूप मे सामने आता है।

प्राचीन काल मे सरकार के काम सीमित थे। जैसे-जैसे औद्योगीकरण होता गया, सभ्यता का विकास हुआ सरकार के काम बढते गये। आज हम सभ्यता के विकास के ऐसे स्तर पर पहुँच गये हैं जहाँ हम यह अनुमान भी नहीं कर सकते कि बिना सरकार के हम जिन्दा भी रह सकते हैं।

लोक-कल्याणकारी राज्य उस राज्य को कहते हैं जहा सरकार का उद्देश्य आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा तथा न्याय व्यवस्था के अतिरिक्त जन-कल्याण के लिए काम करना हो। वैसे तो राज्य सदैव ही कुछ न कुछ कल्याणकारी कार्य करता ही रहा है। राज्य के कार्यों द्वारा जनता का कल्याण करने की भावना कुछ मात्रा मे तो सदैव ही पाई जाती रही है। भारत मे ब्रिटिश प्रशासन को बहुधा पुलिस राज्य की सज्ञा दी जाती रही है पर उस समय भी कुछ कल्याणकारी कार्य होते थे। अस्पताल, स्कूल, कॉलिज खोले गये। रेल, डाक तथा तार की व्यवस्था की गई। पजाब मे सक्खर का बाँध बनाया गया।

अत यह प्रश्न किया जा सकता है कि लोक-कल्याणकारी राज्य और पुलिस राज्य मे अन्तर क्या है? इनमे प्रमुख रूप से दो अन्तर हैं। पहला तो यह कि पुलिस राज्य मे यद्यपि लोक-कल्याणकारी कार्य किये जाते हैं, पर उस पैमाने पर नही किये जाते, जितने कि लोक-कल्याणकारी राज्य मे किये जाते हैं। लोक कल्याणकारी राज्य मे ऐसे काम बहुत बडे पैमाने पर किये जाते हैं। पुलिस राज्य का मुख्य उद्देश्य लोक-कल्याणकारी कार्य करना नही होता, जबकि लोक-कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उद्देश्य यही होता है। दूसरा अन्तर यह है कि पुलिस राज्य मे सरकार लोक-कल्याणकारी कार्य अपनी इच्छा से करती है। जनता इस प्रकार के कार्यों की अपेक्षा सरकार से नही करती। यदि सरकार इस प्रकार के काम करती है तो सरकार की इच्छा है। लोक-कल्याणकारी राज्य मे इस प्रकार के कामो की जनता अपेक्षा करती है। जनमत सरकार पर इस प्रकार के काम करने के लिए दबाव डालता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य इस प्रकार की परिस्थितियो का निर्माण करना है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से सर्वांगीण विकास कर सके।

अभी हाल के वर्षों मे लोक-कल्याणकारी राज्य की विचारधारा का बहुत अधिक विकास हुआ है। इसने अधिक स्पष्ट और व्यापक रूप धारण कर लिया है। आज राज्य के कार्यक्षेत्र का प्रतिदिन विकास हो रहा है। लोक-कल्याणकारी राज्य के विकास के प्रमुख कारण ये कहे जा सकते हैं :

१. लोकतन्त्रीय आदर्शों का विकास

लोकतन्त्र के विकास से हर व्यक्ति की निज की महत्ता हो गयी है।

मानव मात्र के लिए आदर की भावना का विकास हुआ है। यह धारणा जोर पकड़ने लगी है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियां मिलनी चाहिए जिससे कि वह अपना विकास कर सके। इस प्रकार की परिस्थितियों को निर्मित करने की जिम्मेवारी लोक-कल्याणकारी राज्य की मानी जाती है।

२. औद्योगिक क्रान्ति

औद्योगिक क्रान्ति के कारण ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई जहा सरकार पहले की भांति तटस्थता की नीति से काम नही कर सकती थी। औद्योगिक क्रान्ति ने नई समस्याए खड़ी कर दी। पुराने गाव नष्ट हो गए। नये शहर बस गए। नये शहरो की नई समस्याएँ सामने आई। उत्पादन के नये साधनो का उपयोग होने लगा। समाज पूंजीपति और मजदूर दो वर्गों मे बट गया। आज के राज्य मे सरकार से तरह तरह की सेवाओ की आशा की जाती है। पुलिस राज्य में राज्य के कार्य सीमित थे। न्याय, तथा आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा तक ही राज्य के काम सीमित थे। अब समाज की बदली हुई परिस्थितियो के कारण नई सेवाएँ यथा बीमा, समाज-कल्याण विभाग, मेडिकल विभाग, वृद्धावस्था पेंशन योजना, आर्थिक नियोजन, समाज सुधार का भार भी पुलिस राज्य की जिम्मेवारियो के अतिरिक्त सरकार के कन्धो पर ही आ पड़ा। राज्य के कार्य क्षेत्र के बारे मे लोगो के विचार बदले। जहा पहले राज्य के बढ़ते हुए अधिकारो एव कार्यों की आलोचना की जाती थी, वहा अब इन्हें आवश्यक समझा जाने लगा।

लोक-कल्याणकारी राज्य की विशेषताएँ

१. लोक-कल्याणकारी राज्य मे स्वतन्त्र उद्योग का अस्तित्व समाप्त किये बिना ही सभी व्यक्तियो के लिए न्यूनतम जीवन स्तर की गारन्टी की जाती है। यह गारन्टी व्यक्तिगत उद्योग और पहल मे बाधा नही डालती। इस व्यवस्था मे व्यक्तिगत उद्योग एव पहल के लिए स्थान होता है। ऐसा कहा जा सकता है कि लोक-कल्याणकारी राज्य पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच एक मध्यम मार्ग है। साम्यवाद मे आर्थिक गारन्टी तो होती है पर व्यक्तिगत उद्योग आदि नही होते। पूंजीवाद मे व्यक्तिगत उद्योग होता है पर आर्थिक गारन्टी नहीं होती। लोक-कल्याणकारी राज्य आर्थिक गारन्टी देता है, और साथ ही व्यक्तिगत उद्योग एव स्वतन्त्रता की भी रक्षा करता है।

२. यह आर्थिक असमानता दूर करने का प्रयास करता है। आय के सीमित पुनर्वितरण के लिए प्रगतिशील टैक्स व्यवस्था का सहारा लिया जाता है। इससे आर्थिक असमानता कम हो जाती है। अन्तर तो फिर भी धनिक एवं निर्धन वर्गों मे रहता है, पर पहले जितनी खाई नहीं रहती।

३. इसमे समाज के सभी कमजोर वर्गों को सहायता का आश्वासन रहता है। बूढ़े, बीमार, अनाथ, साधन विहीन प्राकृतिक संकट से ग्रस्त, दुर्घटनाओ के शिकारों

को पर्याप्त आर्थिक सहायता का आश्वासन रहता है। जरूरतमंद वर्ग को सहायता तो पुलिस राज्य भी देती है। पर दोनो मे अन्तर है। पुलिस राज्य मे इस प्रकार की सहायता दान के रूप मे प्राप्त होगी, जबकि लोक-कल्याणकारी राज्य मे इस प्रकार की सहायता प्राप्त करने का अधिकार समझा जाता है।

४ सभी नागरिकों के लिए निश्चित स्तर की शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती है। लोक-कल्याणकारी राज्य मे शिक्षा व्यवस्था उदार होती है। विद्यार्थियो के मन पर किसी एक पूर्व निश्चित विचारधारा को लादने का प्रयत्न नही किया जाता। विद्यार्थी निज के अध्ययन के आधार पर ही अपनी मान्यताएँ स्थापित करता है।

५. समाज के सभी वर्गों के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य योजना का विकास किया जाता है। राज्य की ओर से सार्वजनिक अस्पताल, औषधालय, डाक्टर, चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाता है। राज्य की ओर से स्वास्थ्य बीमा योजना लागू की जाती है।

६. इसमे बेकारो को काम दिलाने की जिम्मेवारी राज्य पर है। राज्य यह देखता है कि कोई भी व्यक्ति बेरोजगार न रहे। वैसे तो कम्युनिस्ट तथा अन्य निरकुश शासन प्रणालियो मे भी काम सभी को दिलाया जाता है। पर उनमे काम चुनने की सुविधा नही रहती। राज्य जो काम बताता है उसे जबरदस्ती करवाया जाता है। लोक-कल्याणकारी राज्य हर व्यक्ति को काम चुनने का अवसर देता है। व्यक्ति अपनी पसंद का काम चुन लेता है।

७ इसमे राज्य सभी व्यक्तियो के लिए बीमा की व्यवस्था करवाता है। अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा इसका अच्छा उदाहरण है।

८. इसमे अपेक्षित बच्चो के जिनके माता-पिता ने उन्हे छोड दिया हो, अथवा जिनके माता-पिता का देहान्त हो गया हो, पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का भार राज्य अपने ऊपर लेता है।

९. लोक-कल्याणकारी राज्य मे प्रशासन का काम बहुत ही अधिक बढ जाता है। अत नये प्रशासकीय विभाग तथा ऐजेन्सिया खुलती हैं। नये कमीशन, बोर्ड, दफ्तर आदि की स्थापना होती है। व्यापक प्रशासकीय व्यवस्था लोक-कल्याणकारी राज्य की प्रमुख आवश्यकता होती है।

१० लोक-कल्याणकारी राज्य प्रजातन्त्रीय व्यवस्था मे आस्था रखता है। व्यक्ति की मौलिक स्वतन्त्रता की रक्षा करता है। तथा लोकमत के अनुसार प्रशासन का काम चलाता है। प्रजातन्त्रीय आधार पर सामाजिक एव आर्थिक समानता का निर्माण करना लोक-कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य है।

लोक-कल्याणकारी राज्य मे राज्य के कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया जाता है, जिससे अधिक से अधिक लोगो का विकास हो सके। पुलिस राज्य मे व्यक्ति के कार्य-क्षेत्र पर बन्धन लग जाता है। पर कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य होता है कि राज्य

के कार्य-क्षेत्र का विकास इस प्रकार हो, कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कोई विशेष बन्धन न लग सके।

लोक-कल्याणकारी राज्यों को हम साम्यवाद और पूंजीवाद के बीच मध्यम मार्गी कह सकते हैं। यह साम्यवाद के आर्थिक लाभों को प्रजातन्त्रीय ढंग से प्राप्त करना चाहता है। पूंजीवादी व्यवस्था की स्वतन्त्रता तथा साम्यवादी देशों के आर्थिक लाभों को एक साथ एक नई प्रशासकीय व्यवस्था में प्रजातन्त्रीय ढंग से निभाने का काम लोक-कल्याणकारी राज्य करते हैं।

विशेष अध्ययन के लिए—

१. आशीर्वादम : पोलिटिकल थ्योरी
२. होबमैन : दी वेलफेयर स्टेट

६

सरकारों के प्ररूप

विश्व के विभिन्न देशो मे प्रशासन चलाने वाली सरकारो का स्वरूप समान नही है। यदि हम विश्व की प्रमुख सरकारो का अवलोकन करें तो हमे चार प्रकार की सरकारें मिलेंगी :—

१ ससदात्मक सरकारें—इस प्रकार की सरकारें भारत, इंगलैण्ड, फ्रांस आदि देशो मे है। भारतवर्ष की राज्य सरकारें भी संसदात्मक ढग की ही हैं

२ अध्यक्षात्मक सरकारें—इस प्रकार की सरकार अमेरिका मे है।

३. एकात्मक सरकारें—इस प्रकार की सरकारें इंगलैण्ड और फ्रास मे हैं।

४ सघात्मक सरकारें—इस प्रकार की सरकारें भारत और अमेरिका मे हैं।

ससदात्मक सरकारें

ससदात्मक सरकारें वे सरकारे है जहाँकि वास्तविक कार्यपालिका ससद के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। उत्तरदायित्व का तात्पर्य यह है कि सरकार तभी तक अपने पद पर रह सकती है जबतक कि उसका सदन मे बहुमत हो। यदि किसी प्रकार सरकार के समथको की सख्या कम हो जाय तो सरकार तत्काल ही त्यागपत्र दे देती है। इस सन्दर्भ मे हरियाणा का उदाहरण लिया जा सकता है। चौथे आम चुनाव के बाद सदन मे काग्रेस का बहुमत था और काग्रेस दल के नेता को मुख्यमन्त्री बनने तथा मन्त्रि मण्डल बनाने के लिये निमन्त्रित किया गया। कुछ ही दिनो बाद सदन के अध्यक्ष के चुनाव के अवसर पर यह पता चला कि वास्तव मे विरोधी दलो की सदस्य सख्या अधिक है क्योकि मुख्य मन्त्री द्वारा प्रस्तावित प्रत्याशी अध्यक्ष पद के लिए नही चुना जा सका। यद्यपि चुना गया व्यक्ति काग्रेस का ही था पर मुख्य मन्त्री ने इसे अपने प्रति अविश्वास माना और दो दिन के भीतर ही अपने पद से त्याग पत्र दे दिया।

यदि कोई मन्त्री या मुख्य मन्त्री चुनाव या उप चुनाव मे पराजित हो जाता तो वह तत्काल ही अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। चौथे आम चुनाव मे जो भी मुख्य मन्त्री पराजित हो गये उन्होने तुरन्त ही अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, पर राज्यपाल के आग्रह पर नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण तक वे अपने पदो पर कार्य करते रहे। केन्द्रीय सरकार के पराजित मन्त्रियो ने तो चुनाव परिणामो के घोषित होने के पूर्व ही, जब उन्हे इसका आभास हो गया कि अब उनको विजय सम्भव नही, त्यागपत्र दे दिये।

संसदात्मक सरकारों के प्रमुख लक्षण

१. संसदात्मक सरकारों में दो कार्यपाल होते हैं—नामधारी कार्यपाल और वास्तविक कार्यपाल। भारत में राष्ट्रपति और इंगलैंड में सम्राट नामधारी कार्यपाल हैं। वास्तविक कार्यपाल की शक्तियाँ इन दोनों देशों में प्रधान मन्त्री एवं मन्त्रिमण्डल में निहित होती हैं। यद्यपि संविधान एवं कानून की दृष्टि से सारी प्रशासनिक सत्ता नामधारी कार्यपाल में ही निहित होती है, परन्तु वास्तव में नामधारी कार्यपाल केवल नाम मात्र का होता है। उसमें कोई वास्तविक शक्तियाँ नहीं होतीं। उसके नाम पर वास्तविक कार्यपाल समस्त प्रशासनिक शक्तियों का उपभोग करता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संसदात्मक शासन व्यवस्था में कानून और वास्तविकता में बड़ा ही अन्तर होता है। कानून की दृष्टि से सारी प्रशासनिक सत्ता नामधारी शासक में निहित होती है। वह राज्य का प्रधान होता है। बड़े ठाठ-बाट और शान शौकत से रहता है। भारत में राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपाल एवं इंगलैण्ड के सम्राट एवं फ्रांस के राष्ट्रपति इसके उदाहरण हैं। पर वस्तुतः नामधारी शासक की कोई सत्ता नहीं होती। उसे वही काम करने पड़ते हैं जो वास्तविक कार्यपाल चाहता है।

२. संसदात्मक सरकारों में वास्तविक कार्यपाल प्रधान मन्त्री और मन्त्रिमण्डल के सदस्य ही होते हैं। मन्त्रि-मण्डल को सदन के बहुमत दल की एक समिति कह सकते हैं। प्रधान मन्त्री और मन्त्रियों की कोई निश्चित पदावधि नहीं होती। वे उस समय तक अपने पद पर बने रह सकते हैं जबतक कि उसका बहुमत निम्न सदन में हो। वास्तव में मन्त्रि-मण्डल का कार्यकाल संसद की इच्छा पर निर्भर करता है। पहले जब दलीय अनुशासन इतना विकसित एवं कठोर न था तो वास्तव में संसद के हाथ में बहुत बड़ी शक्ति थी। पर अब दलीय अनुशासन के प्रभाव से संसद की शक्ति पर्याप्त घट गई है। अब दल के सदस्यों को अपने दलीय सचेतक के आदेशों के अनुसार ही सदन में मतदान करना होता है।

यद्यपि संविधान में सचेतक परिपत्र को न मानने के अपराध में कोई दण्ड-व्यवस्था नहीं है पर पार्टी सदैव ही दण्ड व्यवस्था करती है। सचेतक परिपत्र की अवहेलना करना पार्टी अनुशासन को भंग करना समझा जाता है। हाल ही में कांग्रेस पार्टी ने हरियाणा विधान मण्डल के सदस्यों के सम्बन्ध में यह घोषणा की थी कि उनका दल से त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया जाएगा। उन्हें दल से निष्कासित किया जाएगा।

३. सम्मिलित उत्तरदायित्व या सामूहिक उत्तरदायित्व

सम्मिलित या सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त यह बतलाता है कि मन्त्रि-परिषद (Cabinet) के प्रत्येक फैसले के लिए मन्त्रि-मण्डल के सारे सदस्य जिम्मेवार

हैं । यद्यपि मन्त्रि-मण्डल के सारे सदस्य कैबिनेट के परामर्श मे भाग नही लेते हैं और यह भी सभव है कि कैबिनेट का कोई सदस्य किसी कारणवश कैबिनेट की किसी मीटिंग से अनुपस्थित होने पर इससे उसकी जिम्मेवारी पर कोई असर नहीं पडता । कैबिनेट की मीटिंग मे उपस्थिति या अनुपस्थिति, प्रस्ताव से सहमति या असहमति अन्य सदस्यो के दबाव, ये सभी जहाँ तक उत्तरदायित्व का प्रश्न है गौण हैं । यदि कोई सदस्य कही विदेश गया हो और उसे किसी प्रस्ताव का ज्ञान भी न हो तो भी उसकी सवैधानिक जिम्मेवारी मानी जाती है । कोई सदस्य अपने बचाव मे यह नही कह सकता कि प्रस्ताव के एक भाग से तो उसकी सहमति थी पर दूसरे भाग से वह सहमत नही था, या उसने प्रस्ताव के विरोध मे वोट दिया था या सहयोगियो के प्रभाव के कारण उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध वोट दिया । यदि कोई सदस्य किसी कैबिनेट के निर्णय के सम्बन्ध में अपनी जिम्मेवारी स्वीकार नहीं कर सकता तो उसके लिए केवल एक ही मार्ग है । वह है, अपने पद से त्यागपत्र दे देने का । यदि वह त्यागपत्र देकर अलग हो जाता है तो इस प्रकार के निर्णय के लिए जनता की दृष्टि मे जिम्मेवार नही होता । परन्तु यदि कोई सदस्य, चाहे अपनी इच्छा के विरुद्ध ही क्यो न हो, अपने पद पर बना रहता है तो उसे सवैधानिक रूप से जिम्मेवारी स्वीकार करनी ही पडेगी ।

सामूहिक उत्तरदायित्व के फलस्वरूप सारा मन्त्रि-मण्डल जनता के सामने अपनी एकता बनाये रखता है । मन्त्रि-मण्डल के सदस्यो मे चाहे कितना भी मतभेद क्यो न हो, जनता के सामने इन्हें प्रकट करना ठीक नहीं समझा जाता है । जनता के सम्मुख वे एक ही राय प्रकट करते हैं । दूसरे, मन्त्रि-मण्डल के प्रत्येक कार्य के लिए प्रत्येक सदस्य अपने को सामूहिक एव व्यक्तिगत रूप से जिम्मेवार मानता है । तीसरे, यदि मन्त्रि-मण्डल के किसी सदस्य की पार्लियामेन्ट अथवा उसके बाहर कोई आलोचना होती है तो दूसरे सदस्य इसको अपनी आलोचना मानते हैं और उस मन्त्री की सहायता के लिए आगे आते हैं ।

४. प्रधान मन्त्री की स्थिति

ससदीय शासन व्यवस्था मे प्रधान मन्त्री का पद अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण होता है । उसे समान स्तर वालो मे प्रथम कहा जाता है । यह विवरण प्रधान मन्त्री की स्थिति को सही प्रकार से अभिव्यंजित नहीं करता । यदि सभी बराबर हैं तो उनमे या द्वितीय होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? रामजे म्यूर ने भी यही विचार प्रकट किया है कि ऐसे पदाधिकारी को, जिसे मन्त्रि-मण्डल मे जिसको लिया जाये और किसे नही यह फैसला करने का अधिकार है, जिसकी इच्छा पर मन्त्रि-मण्डल का जीवन निर्भर करता है, यदि वह त्यागपत्र दे दे तो यह सारे मन्त्रि-मण्डल का त्यागपत्र माना जाता है, उसे समान स्तर वालो मे प्रथम कहना ठीक नहीं ।

प्रधान मन्त्री ससदीय शासन व्यवस्था मे आधार शिला का काम करता है ।

उसकी नियुक्ति से ही मन्त्रि-मण्डल का काम प्रारम्भ होता है। यद्यपि मन्त्रि-मण्डल मे कौन सम्मिलित होंगे और कौन नही इसका निर्णय करने के लिए प्रधान मन्त्री सर्वथा स्वतन्त्र नहीं होता, पर प्रधान मन्त्री की इच्छा का काफी महत्त्व है। दल के ऐसे नेताओ को जिनके समर्थक ससद मे हैं, मन्त्रि-मण्डल मे लेना ही होगा अन्यथा मन्त्रि मण्डल का जीवन खतरे मे पड सकता है। नेहरू जैसा व्यक्ति भी सरदार पटेल को मन्त्रि-मण्डल से बाहर न रख सका। चौथे आम चुनाव के बाद हरियाणा मे काग्रेसी मन्त्रिमण्डल के विघटन का एक कारण तत्कालीन मुख्य मन्त्री द्वारा कुछ काग्रेसी नेताओ को मन्त्रि-मण्डल मे न लेना था। ये नेता अपने समर्थकों के साथ विरोधी दल के साथ मिल गये जिसके कारण मन्त्रिमण्डल का बहुमत समाप्त हो गया।

प्रोफेसर लॉस्की ने लिखा है कि ब्रिटिश प्रधान मन्त्री अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली भी है और कम भी। वह राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली इस प्रकार है कि वह अपने चुनाव के दौरान मे यह कह सकता है कि उसकी आर्थिक नीति क्या होगी? कौन से टैक्स लगाये जाएंगे? देश के प्रमुख वैदेशिक नीति के प्रश्नो पर उसका क्या रवैया होगा? अमेरिका का राष्ट्रपति यह नही कर सकता क्योंकि उसे अमेरिकी काग्रेस से इन विषयो मे सहमति लेनी होगी। यदि काग्रेस मे उसी दल का बहुमत हो तब भी यह पूर्व-धारणा नही बनायी जा सकती कि वह दल राष्ट्रपति के विचारो के अनुसार ही काम करेगा। प्रधान मन्त्री के साथ ऐसी समस्या नहीं है। यदि प्रधान मन्त्री के दल का हाउस ऑफ कामन्स मे बहुमत है तो उसके सभी प्रस्ताव अवश्य ही स्वीकार कर लिए जाएंगे।

प्रधान मन्त्री के पद की कमजोरी यह है कि उसे अपने सहयोगियो पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रधान मन्त्री एक ऐसी केबिनेट का प्रधान है जहा कि सारे सदस्य प्रायः उसके समकक्ष है और उन सदस्यो के निज के पार्लियामेन्ट मे समर्थक हैं। यदि कोई दुर्घटना हो जाय और प्रधान मन्त्री का पद रिक्त हो जाय तो उनमे से कोई भी प्रधान मन्त्री बन सकता है। यदि एक या दो सदस्य मन्त्रि-मण्डल मे त्यागपत्र देकर अपने समर्थको के साथ विरोधी दल से जा मिले तो मन्त्रि-मण्डल का ही विघटन हो जाय। अमेरिकी राष्ट्रपति को इस प्रकार की स्थिति का सामना नही करना पडता। संविधान द्वारा राष्ट्रपति को अकेले ही जिम्मेवारियां निभाने का भार दिया गया है। वह चाहे जिस अधिकारी वर्ग से सलाह ले सकता है पर उसकी सलाह मानने के लिए वह बाध्य नही है। अमेरिका मे भी राष्ट्रपति की सहायता के लिए केबिनेट है पर अमेरिकी और ब्रिटिश कविनेट के सदस्यो की सवैधानिक स्थिति मे बड़ा ही अन्तर है। अमेरिकी केबिनेट राष्ट्रपति के अधीनस्थो की संस्था है जबकि ब्रिटिश केबिनेट प्रधान मन्त्री के समकक्ष सदस्यो की।

प्रधान मन्त्री की इस स्थिति से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है। वह है, प्रधान मन्त्री या मुख्य मत्री और केबिनेट के अन्य सदस्यों के बीच सम्बन्ध का। क्या

प्रधान मन्त्री या मुख्य मंत्री अपने केबिनेट के किसी सदस्य को त्यागपत्र देने के लिए मजबूर कर सकता है ? केन्द्रीय सरकार मे तो प्रधान मंत्री नेहरू के व्यक्तित्व एवं प्रभाव के कारण यह स्थिति रही कि जिस किसी को भी नेहरू जी ने नही चाहा उसे अपने पद से हटना पडा। पर यही बात राज्यो के सम्बन्ध मे कदाचित् ठीक न हो। उत्तर प्रदेश मे जब श्री चन्द्रभानु गुप्ता मुख्य मत्री थे तो उन्होने अलगूराय शास्त्री से, जो उनकी केबिनेट मे सदस्य थे, त्यागपत्र देने को कहा। शास्त्रीजी ने पहले तो मना कर दिया पर जब उन पर अधिक दबाव डाला गया तो कई अन्य मत्रियो एव उप-मत्रियो ने कहा कि यदि शास्त्रीजी ने त्याग-पत्र दिया तो वे भी त्यागपत्र दे देंगे। ऐसी स्थिति मे मुख्य मत्री या प्रधान मन्त्री की सफलता अपने विरोधी का अलगाव करने मे है। जिस सदस्य को वह हटाना चाहता है यदि उसके समर्थन मे मन्त्रि-मण्डल के सदस्य त्याग-पत्र देने को तैयार न हो जाएँ तो मुख्य मत्री या प्रधान मन्त्री उस सदस्य को निकाल सकता है। यदि ऐसा नही होता है और मन्त्रि-मण्डल मे ही फूट पड जाती है तो स्वय मुख्य मत्री या प्रधान मन्त्री का भविष्य ही अनिश्चित हो जाता है।

प्रधान मन्त्री या मुख्य मत्री की शक्ति इस बात मे निहित है कि उसे अपने सारे सहयोगियो का समर्थन प्राप्त रहे। इसी से पार्लियामेन्ट या विधान मण्डल मे बहुमत बना रहता है। बिना इस बहुमत के ससदीय शासन मे सरकार चल ही नहीं सकती।

मत्री की विभागीय प्रशासन चलाने की जिम्मेवारी

विभागीय प्रशासन दो भागो में बाँटा जा सकता है—

(१) नीति निर्धारण एव (२) नीति का कार्यान्वित किया जाना। नीति निर्धारण केबिनेट का कार्य है। केबिनेट सामूहिक रूप से किसी भी विभाग की नीतिया निर्धारित करती है। नीतियों से सम्बद्ध प्रशासनिक समस्याओ पर भी केबिनेट की सभाओ मे विचार किया जाता है और उचित निर्णय लिए जाते हैं। इन नीतियो एव निर्णयो को विभाग मे कार्यान्वित करने का काम मंत्री का है। मत्री की देख-रेख मे विभाग के उच्च पदाधिकारी यह काम करते हैं। ऐसे मामले कम होते हैं जिन पर मत्री महोदय निर्णय लें। मत्री तो फाईलो पर हस्ताक्षर मात्र कर देते हैं। सवैधानिक दृष्टि से जिम्मेवारी मत्री की ही होती है। विभाग मे ऐसी कोई भी बात नही हो सकती जिसके बारे मे मत्री यह कह सके कि यह उसकी सवैधानिक जिम्मेदारी से परे है। चाहे यह उसकी आज्ञानुसार हुआ हो या आज्ञा के विपरीत, चाहे उसे इसका पता हो या न हो जिम्मेवारी मत्री की ही है। विभागीय प्रशासन सफल होता है, विभाग अच्छा काम करता है तो मत्री की प्रशसा होती है यदि ऐसा नही होता तो मत्री को दोष दिया जाता है।

संसदीय शासन व्यवस्था के गुण

१. ससदीय शासन व्यवस्था का सबसे बडा गुण यह है कि कार्यपालिका

श्रौर विधान-मण्डल मे बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमे कार्यपालिका श्रौर विधान-मण्डल मे मतभेद सभव ही नही है। कार्यपालिका तभीतक अपने पद पर रहती है जबतक कि उसे विधान-मण्डल का विश्वास प्राप्त है। यदि विधान-मण्डल का विश्वास उसे प्राप्त नही है तो उसे अपने पद से त्यागपत्र देना होगा। यदि कार्यपालिका चाहे तो विधान-मण्डल को भग भी करवा सकती है। यह इस कारण होता है कि मत्रीमण्डल ऐसा मानता है कि यद्यपि सदन मे उसका बहुमत नही है, परन्तु देश मे उसका बहुमत है। सदन बदली हुई परिस्थितियो मे देश की भावनाओ का प्रतिनिधित्व नही करता। विधान मण्डल के भग होने पर नये चुनाव की व्यवस्था की जाती है। यदि नये चुनाव के बाद भी मत्रिमण्डल को बहुमत प्राप्त न हो तो मत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना होता है। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था मे मतभेद अधिक दिन नही चल सकता। ऐसा प्रबन्ध करना ही होता है कि मतभेद की स्थिति का अन्त हो जाए।

२. कार्यपालिका श्रौर विधान-मण्डल मे दुराव नही रहता। कार्यपालिका के ही नेता विधान मण्डल के भी नेता होते हैं या ऐसा भी कह सकते हैं विधान-मण्डल के नेता ही कार्यपालिका के भी नेता होते हैं। इसके फलस्वरूप विधान-मण्डल मे शासन सम्बन्धी काम सत्परता से होते हैं। कानून निर्माण सम्बन्धी जो भी प्रस्ताव कार्यपालिका विधान मण्डल के समक्ष रखती है वे सब आसानी से पास हो जाते है। चूँकि कार्यपालिका और विधान मण्डल का नेतृत्व एक ही व्यक्ति समूह के हाथो मे रहता है इसलिए आपस मे समन्वय रहता है।

३ ससदीय शासन व्यवस्था अधिक उत्तरदायी होती है। कार्यपालिका स्वेच्छाचारी होकर निरकुश शासन नही कर सकती। इगलैण्ड मे यदि स्टुअर्ट काल का इतिहास देखें तो पता चलेगा कि स्वेच्छाचारी-शासन स्थापित करने की चेष्टा मे एक सम्राट को तो अपनी जान से हाथ धोना पड़ा श्रौर दूसरे को गद्दी छोड़ कर भागना पड़ा। जनमत यदि सरकार के विरुद्ध हो जाए तो इसे आसानी से पदच्युत किया जा सकता है। चौथे आम चुनाव के बाद हरियाणा, पजाब, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, केरल, मद्रास मे गैर काग्रेसी सरकारें बनी थी। केरल को छोड़कर जहा कि राष्ट्रपति शासन था, अन्य सभी राज्यो मे पहले काग्रेस की सरकारें थी।

४. मत्रि-मण्डल मे परिवर्तन सभव है। जनमत के अनुसार मत्रि-मण्डल मे परिवर्तन बिना किसी दिक्कत के हो सकता है। मत्रि-मण्डल का कोई निश्चित कार्यकाल है ही नही। यदि युद्ध आदि के कारण सर्वदलीय सरकार बनाने की आवश्यकता हो तो वह भी आसानी से हो सकता है। कार्यपालिका की सदस्यता मे जितनी आसानी से इस व्यवस्था मे परिवर्तन हो सकते हैं अन्य किसी व्यवस्था मे नही।

संसदीय शासन व्यवस्था के दोष

१ इस व्यवस्था मे सरकारो मे स्थायित्व की कमी रहती है। स्थायित्व की

कमी उस समय और भी अधिक हो जाती है जब सदन मे द्वि-दलीय प्रथा न होकर बहुदलीय प्रथा हो। डिगाल के पूर्व फ्रास मे सरकारें अत्यन्त ही अस्थाई हुआ करती थी। सबसे दीर्घकालीन सरकार ४४ सप्ताह चली। चौथे आम चुनाव के बाद हरियाणा मे काग्रेस मत्रि-मण्डल को १०–१२ दिनो के भीतर ही त्यागपत्र दे देना पडा। पाडिचेरी के काग्रेसी मत्रि-मण्डल को भी पद भार सभालने के कुछ ही दिनो के भीतर त्यागपत्र दे देना पडा।

२. इसका आधार राजनैतिक दलबन्दी की प्रथा है। अनेक बार शासन और राष्ट्र के हित की उपेक्षा कर सत्ताधारी राजनैतिक दल के हितो को प्रधानता दी जाती है। दलीय राजनीति के सारे दोष यहा पर भी आ जाते हैं। मत्रि-मण्डल एवं अन्य समितियो मे नियुक्ति का आधार योग्यता न होकर दलगत भावना होती है। दूसरे दल के योग्य व्यक्तियो को भी केवल इस कारण महत्त्वपूर्ण समितियो और पदो पर नियुक्त नही किया जा सकता क्योकि वे अन्य दल के हैं।

३ इस व्यवस्था मे सबसे बडा दोष यह है कि यह अधिकार विभाजन के सिद्धान्त के विरुद्ध है। मत्रि-मण्डल विधान सभा के नेताओ की समिति है। ये ही विधान सभा का नेतृत्व करते हैं और इन्ही के हाथो मे कार्यपालिका का नेतृत्व भी है। यह इसी का फल है कि हमारे सविधान मे जोकि २६ जनवरी, १९५० मे लागू हुआ था, अब तक २८ बार संशोधन हो चुके हैं। जब कभी उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा कोई निर्णय दिया जो सत्तारूढ दल को पसन्द न आया तो सविधान मे सशोधन कर दिया गया। बहुत सारे मौलिक अधिकार जोकि सविधान मे जनता को दिये गए वे सशोधन द्वारा छीन लिये गए। अधिकार विभाजन न होने के कारण जनता के अधिकारो की रक्षा का प्रश्न बडा ही गभीर हो उठता है।

अध्यक्षात्मक सरकारे

अध्यक्षात्मक सरकारें उन सरकारो को कहते हैं जहा वास्तविक एव नामधारी कार्यपालिका अलग-अलग न होकर एक ही होती है। अमेरिका का राष्ट्रपति नामधारी एव वास्तविक सत्ताधिकारी है। केवल राष्ट्रपति का पद होने से अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था हो ऐसा नही कहा जा सकता। भारत और फ्रास दोनो मे राष्ट्रपति का पद तो है पर अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली नही है। इन दोनो देशो मे ससदात्मक शासन प्रणाली है।

अध्यक्षात्मक शासन मे कार्यपाल एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है और पदावधि समाप्त होने तक अपने पद पर बना रहता है। विधान मण्डल मे उसके द्वारा भेजे गये प्रस्ताव पास हो या न हो इससे उसकी पदावधि पर कोई प्रभाव नही पडता। अमेरिका मे बहुधा राष्ट्रपति द्वारा भेजे गये प्रस्तावो मे काग्रेस परिवर्तन या कटौती कर देती है। इस पर वह राष्ट्रपति त्यागपत्र नही दे देता। ससदात्मक शासन प्रणाली मे जिस प्रकार कार्यपालिका जनता से निर्वाचित विधान सभा

सदन के प्रति उत्तरदायी होती है वैसा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में नहीं होता। सदन के बहुमत से अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की सरकारो पर बहुत अधिक असर नही पड़ता है। अमेरिका मे ऐसा कई बार हुआ है जबकि राष्ट्रपति एक दल का था और कांग्रेस मे विपक्षी दल का बहुमत था। वैसे तो अध्यक्षात्मक सरकारें भी विधान मण्डलो द्वारा महाभियोग के अपराध मे हटाई जा सकती हैं पर महाभियोग लगाने का तरीका इतना जटिल होता है कि इसका केवल सवैधानिक महत्त्व ही रह जाता है।

अध्यक्षात्मक सरकारो के प्रमुख लक्षण

१. अध्यक्षात्मक सरकारो मे केवल एक ही कार्यपाल होता है। जिस प्रकार का विभाजन नामधारी और वास्तविक कार्यपाल मे ससदात्मक सरकारो मे होता है वैसा सरकार के इस प्ररूप मे नही होता। अमेरिका मे राष्ट्रपति औपचारिक कर्तव्य, यथा भवन का उद्घाटन एव शिलान्यास भी करता है और साथ ही वास्तविक कार्यपाल के कर्तव्य, यथा देश के प्रशासनिक मामलो मे निर्णय देना, दोनो पूरा करता है। सवैधानिक स्थिति वैसी ही है जैसी वास्तविक। ससदात्मक सरकारों मे सवैधानिक एव वास्तविक स्थिति मे जो अन्तर दृष्टिगोचर होता है वह अन्तर अध्यक्षात्मक सरकारो मे नही होता।

२. अध्यक्षात्मक सरकारो मे कार्यपाल की पदावधि सविधान द्वारा निश्चित होती है। उस अवधि के भीतर कार्यपाल को महाभियोग के अपराध को छोड कर अन्य किसी प्रकार से पदच्युत नही किया जा सकता। ससदात्मक सरकारो से ये सरकारें अधिक स्थाई होती हैं। ससद मे हार जाने या किसी प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने पर इन्हे त्यागपत्र नही देना पड़ता। सैद्धान्तिक रूप से ससदात्मक सरकारें जिस सुविधा पूर्वक अपने पद से हटाई जा सकती है अध्यक्षात्मक सरकारे उतनी सुविधापूर्वक अपने पद से नही हटाई जा सकती।

३ चूंकि अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली मे सदन मे किसी सरकारी प्रस्ताव आदि के पराजय से सरकार की पदावधि पर कोई असर नही पडता इसलिए उन राज्यों के विधान मण्डलो मे दलीय अनुशासन उतना कठोर नहीं होता जितना कि ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे। ससदात्मक शासन प्रणाली मे मंत्रि-मण्डल का अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर करता है कि विधान मण्डल उसके सारे प्रस्तावो का समर्थन करता रहे। अत: दलीय अनुशासन कठोर होता है और पार्टी के सचेतक परिपत्र की अवहेलना पार्टी सहन नही कर सकती। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे इसकी आवश्यकता ही नही होती। उन देशो में साधारणत: विधान मण्डल सदस्यो को ससदात्मक विधान मण्डल के सदस्यो की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता रहती है। अमेरिका मे सदन मे किस सदस्य ने किस प्रकार वोट दिया यह अखबारो मे छपता है क्योंकि वहाँ पर यह आवश्यक नही कि रिपब्लिकन सदस्य रिपब्लिकन राष्ट्रपति द्वारा भेजे गये प्रस्ताव का समर्थन करे। भारत और इंगलैण्ड जैसे देशो

मे इसकी आवश्यकता इसलिए नही पडती क्योकि प्राय सभी सदस्य अपने दल के सचेतक परिपत्र के अनुसार ही वोट देते है। यदि कोई सदस्य सचेतक परिपत्र के विरुद्ध वोट देता है तो समाचार पत्रो मे यह विरोध रूप से प्रकाशित किया जाता है।

४. फाईनर ने लिखा है कि राष्ट्रपति एक अकेला कार्यपाल है। यद्यपि उसकी सहायता के लिए अनेक समितियाँ या संगठन होते हैं किन्तु वह उनकी राय लेने के लिए बाध्य नही है। उसकी कॅबिनेट मे चाहे उसके विचार के समर्थन मे एक भी हाथ न उठे तो भी वह अपनी इच्छानुसार निर्णय ले सकता है। अमेरिका की कार्यपालिका मे ऐसी कोई भी शक्ति नही जो राष्ट्रपति को रोक सके। हा कुछ मामलो मे राष्ट्रपति को सीनेट की सहमति से काम करना होता है। जितनी भी राजनैतिक नियुक्तियाँ होती है वे सभी सिनेट द्वारा अनुमोदन के लिए भेजी जाती हैं। युद्ध एव शान्ति की घोषणा कांग्रेस ही कर सकती है। विदेशो से सधि कॉंग्रेस की सहमति से ही सभव है। इन स्थितियो मे भी बहुत कुछ राष्ट्रपति पर निर्भर करता है। आपातिक स्थिति मे राष्ट्रपति सैनिक कार्यवाही कर कांग्रेस को सूचना देता है। राष्ट्रपति सेना को पहले ही भेज कर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है कि कॉंग्रेस के सामने युद्ध घोषित करने के सिवाय और कोई चारा ही न हो। विदेशो से सधि के स्थान पर कार्यकारी समझौते किये जा सकते हैं जिनके लिए सीनेट की सहमति आवश्यक नही है।

राष्ट्रपति का स्थान

राष्ट्रपति प्रशासन का केन्द्र बिन्दु होता है। उसकी स्थिति ससदात्मक शासन के प्रधान मन्त्री से भिन्न है। प्रधान मन्त्री की तरह उसे अपने केबिनेट के वरिष्ठ सदस्यो से विद्रोह का भय नही रहता। जहा तक शासन की नीतियो को कार्यान्वित करने का प्रश्न है राष्ट्रपति अधिक प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान कर सकता है क्योकि न तो प्रतिक्षण उसे अपने केबिनेट के सदस्यो का मुँह जोहना पडता है और न यही चिन्ता करनी पडती है कि विधान-मडल मे इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। कोई भी प्रधान-मन्त्री चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यो न हो, इन दोनो बन्धनो से मुक्ति नहीं पा सकता।

विधान-मण्डल पर राष्ट्रपति का उतना प्रभाव नही होता जितना कि प्रधान-मन्त्री का होता है। अमेरिका मे राष्ट्रपति यह दावे से कदापि नही कह सकता कि उसके द्वारा भेजे गये प्रस्ताव सदन को मान्य ही होंगे। राष्ट्रपति विलसन ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्र संघ (League of Nations) के निर्माण मे अत्यधिक भाग लिया था। पर जब यह प्रस्ताव सिनेट के सम्मुख आया तो सिनेट ने अमेरिका की राष्ट्रसघ की सदस्यता का विरोध किया। फलत अमेरिका राष्ट्रसघ का सदस्य न हो सका। राष्ट्रपति द्वारा भेजे गये प्रस्तावो मे कांग्रेस मनमाना परिवर्तन कर देती है।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के गुण

१. इस शासन व्यवस्था मे कार्यपालिका मे स्थायित्व की भावना संसदात्मक शासन प्रणाली की सरकारो की अपेक्षा अधिक होती है। राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। उसे महाभियोग के अपराध को छोडकर अन्य किसी प्रकार से हटाया नही जा सकता। संसदात्मक सरकारो का भविष्य सदैव ही कच्चे धागे मे टँगा रहता है। १९६६ मे आम चुनावो के बाद हरियाणा और पाण्डीचेरी की कांग्रेसी सरकारो का विघटन इसलिए हो गया कि दल के कुछ सदस्य विरोधी दल से जा मिले। उत्तर प्रदेश मे एक बडी ही आपातिक स्थिति उत्पन्न हो गई जब लगभग ४० कांग्रेसी सदस्यो ने मुख्य मन्त्री चन्द्रभानु गुप्ता की नीतियो के विरुद्ध एक सभा की और यह भय हुआ कि कही वे विरोधी दल से न जा मिलें। इस प्रकार की अनिश्चित स्थिति अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे नही आती है।

२. नीतियो के कार्यान्वित करने मे भी अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाली सरकारो को अधिक स्वतन्त्रता रहती है। राष्ट्रपति अपने विवेकानुसार कार्य सचालन करने को स्वतन्त्र रहता है। उसे प्रश्नोत्तर काल ध्यानाकर्षण प्रस्ताव तथा अविश्वास के प्रस्ताव का भय नही रहता। वह जनता के हित मे जो उचित समझता है वह करता है। प्रशासन के कार्यों मे विधान-मण्डलो का हस्तक्षेप कम होता है।

इसके विपरीत ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे विधान-मण्डल कार्य-पालिका के कामो मे सदैव ही हस्तक्षेप करता रहता है। मन्त्रि-मण्डल का प्रत्येक सदस्य आशकित रहता है कि कही उसके किसी कार्य के विषय मे विधान-मण्डल मे कोई प्रश्न न पूछ लिया जाए। उन्हे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव और अविश्वास के प्रस्ताव का भय सदैव ही बना रहता है। फल यह होता है कि वे अपने विवेक के अनुसार काम न करके इस प्रकार काम करते हैं जिसमे उन्हे ऐसी कोई दिक्कत सामने न आवे।

३ अध्यक्षात्मक शासन वाले देशो मे कैबिनेट के सदस्य दलबन्दी और अपनी सत्ता बनाये रखने मे इतना अधिक समय व्यय नही करते जितना कि ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे किया जाता है। वहां तो यह प्राय निश्चित-सा ही है कि जब तक उन्हे राष्ट्रपति का विश्वास प्राप्त है तबतक वे अपने पद पर रहेंगे। अत. वे अपना समय प्रशासन की समस्याओं मे देते है। ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे मन्त्री का सबसे पहला काम दलबन्दी द्वारा अपने को पद पर बनाये रखना है। शासन के सारे काम प्राथमिकता मे इसके बाद ही आते है। कई बार प्रशासन के कामो की उपेक्षा की जाती है।

४. अध्यक्षात्मक शासन सकटकालीन स्थिति मे अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। चूँकि सारी कार्यपालिका की शक्तियां एक ही व्यक्ति के हाथ मे केन्द्रित होती हैं। वह अपने जिम्मेदारी पर निर्णय ले सकता है। आपत्तिकाल मे कोई भी प्रधान मंत्री अपने सहयोगियो के परामर्श के बिना शायद ही कोई कदम उठाने को तैयार हो। अत ससदात्मक शासन प्रणाली मे महत्त्वपूर्ण निर्णयो मे देरी होती है।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के दोष

१. अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था मे कार्यपालिका निरकुश हो सकती है। कार्यपालिका पर न तो कैबिनेट के सदस्यो का नियन्त्रण रहता है और न विधान-मण्डल का। कैबिनेट तो राष्ट्रपति के अधीनस्थ कर्मचारियो की सस्था होती है। अत उसके द्वारा प्रभावकारी नियन्त्रण का प्रश्न ही नही उठता। विधान-मण्डल महाभियोग से ही उसे हटा सकता है। पर महाभियोग की प्रयोगविधि इतनी जटिल होती है कि आसानी से राष्ट्रपति को हटाया नही जा सकता।

२. कार्यपालिका और विधान-मण्डल मे सदैव ही मतभेद बना रहता है। कार्यपालिका और विधान-मण्डल का जैसा परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध ससदात्मक शासन प्रणालियो मे मिलता है वैसा यहाँ नही मिलता। यहाँ कार्यपालिका के सदस्य तो विधान-मण्डलो के सदस्य होते ही नही। विधान-मण्डल के अपने निज के नेता होते है। कार्यपालिका एव विधान-मण्डल के नेता अलग-अलग क्षेत्रो मे काम करते हैं। कार्यपालिका द्वारा भेजे गये प्रस्तावो को विधानमण्डल जैसा चाहे परिवर्तित कर देता है। विधान-मण्डल ऐसा अपनी सुविधानुसार करता है न कि प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से। प्रशासन का दृष्टिकोण बताने वाला तो विधान-मण्डल मे कोई होता ही नही है।

३ चूँकि कार्यपालिका और विधान मण्डल मे मतभेद रहता है अत प्रशासन के कामो मे कठिनाईयां आती है। कार्यपालिका अपना प्रस्ताव अनुमोदन के लिए भेजती है परन्तु विधान-मण्डल उसे अस्वीकार कर देता है। धनराशि के लिए माँग जाती है। प्रशासन के लिए इसकी बडी आवश्यकता है, पर विधान मण्डल स्वीकृति नही देता। विधान-मण्डल प्रशासन की समस्याओ को बिना समझे मनमाना काम करता है जिससे प्रशासन को असुविधा होती है।

४ किसी सीमा तक इस शासन व्यवस्था मे उत्तरदायित्व का अभाव रहता है। चुनाव के बाद राष्ट्रपति प्राय स्वतन्त्र-स ही होता है। जिस प्रकार का निरन्तर नियन्त्रण ससदीय शासन प्रणाली मे पाया जाता है वैसा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली मे नही है। दिन-प्रतिदिन के शासन मे राष्ट्रपति पर कोई भी नियन्त्रण नही है। वह अपने विवेक के अनुसार कार्य करने को स्वतन्त्र होता है। उसे अपने पद के दुरुपयोग करने पर केवल महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है।

एकात्मक सरकारे

एकात्मक सरकारे वे सरकारे होती है जहाँ सारे देश की समस्त प्रशासनिक शक्तियाँ सविधान द्वारा एक ही केन्द्र स्थित सरकार को सौंप दी जाती हैं। इगलैंड, फ्रास, और १६३५ के पहले भारत मे एकात्मक सरकारें थी। प्रान्तीय सरकारो के होने या न होने से एकात्मक सरकार की स्थिति पर कोई असर नही पडता। इंगलैंड और फ्रास मे प्रान्तीय सरकारें नही है। भारत मे १६३४ के पहले प्रान्तीय

सरकारें थी, पर ये सभी सरकारें एकात्मक सरकारें थीं। क्योंकि प्रान्तीय सरकारो की कोई सवैधानिक स्थिति न थी। वे केन्द्रीय सरकार के द्वारा बनाई गई थीं। उनकी जो भी शक्तियाँ थीं वह केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई थी। केन्द्रीय सरकार इच्छानुसार इन शक्तियो मे परिवर्तन कर सकती थी, इन्हे वापस ले सकती थी, या नई शक्तियाँ दे सकती थी सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि प्रान्तीय सरकारे केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता (एजेन्ट) के रूप मे काम करती थी। यदि प्रान्तीय सरकारे अभिकर्ता के रूप मे ही काम करें और उनके निज के कोई सवैधानिक अधिकार न हो तो ये एकात्मक सरकारें ही होगी। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि एकात्मक सरकारें दो प्रकार की हो सकती हैं। पहली श्रेणी मे वैसी एकात्मक सरकारे आती हैं जहाँ प्रान्तीय सरकारें न हो जैसे इंगलैंड, फ्रांस आदि। दूसरी श्रेणी मे वैसी एकात्मक सरकारें आती हैं जहाँ कि प्रान्तीय सरकारें हो—जैसे १९३५ के पहले का भारत।

एकात्मक सरकारो के गुण

१. एकात्मक सरकारे शक्तिशाली सरकारें होती हैं। वहाँ शक्ति के विभाजन का तो प्रश्न उठता ही नही। चाहे केन्द्रीय सरकार की देख-रेख मे काम हो, अथवा प्रान्तीय सरकारो द्वारा काम हो, नियन्त्रण की सारी शक्ति केन्द्रीय सरकार मे ही निहित होती है। सत्ता केन्द्रीय सरकार मे निहित होने के कारण सरकार का काम सुचारु रूप से चलता है।

२. एकात्मक सरकारो मे प्रान्तीय एव राजकीय सरकारो मे शक्ति के विभाजन को लेकर कोई झगडा नही रहता। सघीय सरकारो मे बहुत सारा समय इसी अधिकार सीमा के निर्धारण मे बीत जाता है। पंडित नेहरू के बाद अनेक राज्यो के मुख्य मत्रियो ने राज्य सरकारो के लिए अधिक शक्तियो की माँग की है। कई बार महत्वपूर्ण निर्णय इसलिए नहीं लिए जा सकते क्योंकि यही निर्णय लेना कठिन हो जाता है कि यह किसका का काम है।

३ उन स्थानों पर जहाँ प्रशासन मे एकरूपता लाने का प्रश्न हो एकात्मक सरकारे अधिक कार्यकुशल होती हैं। ऐसा इस कारण होता है कि सारी सत्ता एक ही केन्द्र मे निहित होने के कारण नियन्त्रण मे एकरूपता आती है। सारे देश मे एक ही कानून, एक ही प्रकार के नियन्त्रण मे कार्यान्वित कराया जाता है। यदि प्रान्तीय सरकारो द्वारा भी कानून कार्यान्वित हो रहे हो तो ये सरकारें केन्द्रीय सरकार के आदेशों की अवहेलना नही कर सकती क्योंकि प्रान्तीय सरकारो के निज के अधिकार तो होने ही नही हैं।

४. एकात्मक सरकारो मे खर्च कम होता है। यदि भारत मे एकात्मक शासन होता तो राज्यो और केन्द्र शासित प्रदेशों के राज्यपालो, उपराज्यपालों, मन्त्रिमण्डलो, विधान सभाओं और विधान परिषदो, एवं राज्य सचिवालयो पर

व्यय होने वाली धनराशि बच सकती थी। एकात्मक सरकार न होने की दशा मे देश मे अनेक सरकारें होती हैं। अमेरिका मे इस समय ५२ सरकारें (१ संघीय सरकार, ५१ राज्य सरकारें) हैं। भारत मे इस समय १६ राज्य एव १० केन्द्र शासित प्रदेश हैं। और इन सब की अलग-अलग सरकारे हैं। इतनी सरकारो के होने से काफी धनराशि का व्यय हो जाता है।

५ एकात्मक सरकारो मे निर्णय शीघ्रता पूर्वक होते हैं। एकात्मक सरकारो मे सारी शक्ति निहित होती है। उनके हाथ मे निर्णय लेने एव निर्णय को कार्यान्वित करने की शक्तियाँ होती हैं। उन्हे यह भय नही रहता कि उनका कोई निर्णय कही राज्यो की अधिकार सीमा का उल्लघन न करे। अत. सघीय राज्यो मे महत्वपूर्ण निर्णयो के पहले कई बार राज्यो के मुख्य मन्त्रियो एवं सम्बन्धित मन्त्रियो से विचारविमर्श की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के विचार विमर्श में कई बार काफी समय लग जाता है और,फलतः निर्णय लेने मे देरी हो जाती है। चूँकि एकात्मक सरकारो में यह सब नही करना पडता अतः यहाँ निर्णय जल्दी लिए जा सकते हैं।

एकात्मक सरकारों के दोष

१ एकात्मक शासन व्यवस्था छोटे देशो के लिए तो ठीक हो सकती है, पर बडे देशो मे इससे काम नही चल सकता। भारत और अमेरिका जैसे विशाल देशो मे एकात्मक शासन-व्यवस्था शायद उपयुक्त न हो। भारत के विभिन्न भागो की अपनी निज की समस्याएँ हैं। एकात्मक सरकारें इन समस्याओ को नही सुलभा सकती। स्थानीय समस्याओ को सुलभाने के लिए तो सघात्मक प्रशासनिक व्यवस्था अधिक उपयुक्त होती है।

२. एकात्मक शासन व्यवस्था मे दूसरा भय यह होता है कि केन्द्रीय सरकार स्वेच्छाचारी न हो जाय। सभी प्रशासनिक सत्ता एक ही केन्द्र मे निहित होती है। सघीय शासन व्यवस्था मे राज्य और सघ सरकारो मे दोनो को ही एक दूसरे का भय बना रहता है। अत दोनो ही ओर से यह चेष्टा की जाती है कि अधिकार सीमा का अतिक्रमण न हो। एकात्मक शासन व्यवस्था मे सारी सत्ता का एक ही केन्द्र मे होना, जनता के प्रजातन्त्रीय अधिकारो के हित मे नही है।

३ एकात्मक शासन व्यवस्था मे नौकरशाही का प्रभाव बढ जाता है। सघीय व्यवस्था मे राज्य स्तर पर भी जनता द्वारा चुने हुए नेता विधान मण्डल और राज्य मन्त्रिमण्डल मे होते हैं जो नौकरशाही पर नियन्त्रण रखते हैं। एकात्मक व्यवस्था मे ऐसा नही होता। अतः नौकरशाही का प्रभाव बढता है।

४. एकात्मक शासन व्यवस्था मे प्रशासन का सारा कार्य केन्द्र द्वारा निर्देशित

होता है । राज्य स्तर पर तो प्रशासनिक निर्णय होते ही नहीं । अतः सार्वजनिक कार्यों मे जनता की अरुचि होने लगती है । प्रशासनिक निर्णय लेने वाली संस्थाएं और व्यक्ति जनता से बहुत दूर हो जाते हैं । स्थानीय मन्त्रिमण्डल और विधानसभा के प्रति जो सम्बन्ध-भावना होती है वह केन्द्रीय सरकार के प्रति नहीं होती । स्वायत्तता का भी अभाव होता है । सारे महत्वपूर्ण फैसले केन्द्र की राजधानी मे ही होते हैं ।

५ एकात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ बहुत अधिक बढ़ जाती हैं । जो कार्य संघीय शासन व्यवस्था मे केन्द्र और अनेक राज्य सरकारें मिल कर करती है वही कार्य एकात्मक व्यवस्था मे केवल एक केन्द्रीय सरकार की जिम्मेवारी पर छोड दिए जाते हैं । आज के युग मे जब हम लोक-कल्याणकारी राज्य की ओर बढ रहे हैं तो शायद एकात्मक शासन व्यवस्था उचित न हो । राज्य प्रतिदिन नये-नये काम अपने ऊपर ले रहा है । नये उत्तरदायित्व उत्पन्न हो रहे हैं । बढते हुए कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वो को केवल एक ही केन्द्रीय सरकार के कन्धो पर छोड़ देना शायद उचित न हो ।

६. एकात्मक सरकारें संघीय सरकारो से कम प्रजातान्त्रिक होती है । एकात्मक सरकारों मे जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्णय एव नियन्त्रण की व्यवस्था केवल केन्द्र पर ही होती है । जबकि संघीय सरकारो मे यह व्यवस्था राज्य स्तर पर भी होती है ।

संघात्मक सरकारे

संघात्मक सरकारें बडे देशो मे मिलती हैं । भारत, अमेरिका, रूस, कैनेडा, आस्ट्रेलिया आदि देशो मे संघात्मक सरकारें हैं । संघात्मक सरकारो वाले देशो मे एक तो केन्द्रीय सरकार होती है और अन्य उनकी राज्य सरकारें होती हैं । जैसे भारत में १६ तो राज्य सरकारें हैं और १ केन्द्रीय सरकार है । अमेरिका मे ५१ राज्य सरकारें हैं और १ संघीय सरकार है ।

संघात्मक सरकारो वाले देशो मे एक ही राज्य सीमा मे दो सरकारें शासन करती हैं । जैसे उदाहरण के लिए राजस्थान का राज्य लें । यहाँ दो सरकारो द्वारा एक साथ ही शासन चलाया जा रहा है । कुछ प्रशासनिक जिम्मेवारियाँ केन्द्र सरकार की हैं तो कुछ राज्य सरकार की । यदि जैसलमेर की सीमा पर विदेशी सेना हमला कर दे तो उसका निराकरण करना केन्द्रीय सरकार की जिम्मेवारी है । राज्य में रेल एव डाक-तार व्यवस्था, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क आदि केन्द्रीय सरकार के काम हैं । राज्य मे शान्ति बनाये रखना, शिक्षा व्यवस्था, भूमिकर, जेल प्रशासन आदि राज्य सरकार के कर्तव्य हैं । अतः यह कहा जा सकता है कि संघीय शासन व्यवस्था दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था होती है — केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था एव राजकीय प्रशासनिक व्यवस्था । दोनो मे ही कार्यपालिकाएँ विधान

मण्डल और न्यायपालिकाएं होती हैं। दोनो अपने-अपने क्षेत्र मे शासन करते हैं।

चूंकि एक ही राज्य सीमा मे दो सरकारें काम करती हैं इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रशासन के विषयो का सविधान द्वारा बटवारा कर दिया जाय ताकि केन्द्रीय और राज्य सरकारो मे विवाद न हो। यदि सघीय शासन वाले देशो को देखें तो कई प्रकार की विभाजन प्रणालियाँ मिलती हैं। अमेरिका मे केन्द्रीय सरकार को कुछ निश्चित शक्तियाँ दे दी गई हैं और प्रशासन के शेष विषयों पर राज्य सरकारो का अधिकार है। भारत मे सविधान में तीन सूचियो की व्यवस्था है:—

(अ) केन्द्र सूची मे वे प्रशासनिक विषय हैं, जिनके लिए केन्द्र सरकार उत्तरदायी है जैसे रक्षा, विदेशो से सम्बन्ध, डाक, तार एवं टेलीफोन व्यवस्था, रैल इत्यादि।

(ब) राज्य सूची मे वे प्रशासनिक विषय हैं जिनके लिए राज्य सरकारें उत्तरदायी हैं जैसे शान्ति व्यवस्था, जेल प्रशासन, भूमिकर, समाज-कल्याण, सहकारिता, शिक्षा आदि।

(स) समवर्ती सूची मे वे विषय हैं जिन पर केन्द्रीय एव राज्य सरकार दोनो ही का अधिकार है जैसे दण्डविधान, शादी-विवाह सम्बन्धित नियम आदि। समवर्ती सूची के किसी विषय पर यदि केन्द्र सरकार और राज्य सरकार दोनो ही नियम बनायें और उन दोनो के नियमो मे असगति हो, तो असगति की सीमा तक राज्य सरकार द्वारा बनाया गया कानून रद्द माना जाता है, चाहे केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया कानून बाद मे ही क्यो न बनाया गया हो। हमारे सविधान मे अवशिष्ट शक्तिया केन्द्र को दे दी गई हैं।

सघ का निर्माण दो प्रकार से हो सकता है—

१. छोटे-छोटे राज्यो को मिला कर जब सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निर्माण हुआ तो यह १३ छोटे-छोटे राज्यो को मिलाकर बना था। ऐसे देशो मे सघीय शासन व्यवस्था प्राय: कम शक्तिशाली होती है। इसका कारण यह है कि सघीय शासन व्यवस्था के लागू होने के पहले ये सभी राज्य स्वतन्त्र थे। अत. ये केन्द्र को कम से कम शक्ति देना चाहते थे। अब भी वे अपने ही हाथो [illegible] अधिकाधिक शक्ति रखने की चेष्टा करते हैं।

२. एक बड़े देश को सघ बनाने के लिए छोटे-छोटे राज्यो मे बाट दिया जाय। या किसी एकात्मक सरकार के नीचे काम कर रही प्रान्तीय सरकारो को सविधान द्वारा शक्ति दे दी जाय। भारत मे सघीय व्यवस्था लागू करने के लिए सन् १९३४ मे ऐसा ही किया गया। १९३५ के पहले भारत एकात्मक शासन व्यवस्था वाला देश था। सघात्मक शासन व्यवस्था लागू करने के लिए प्रान्तीय सरकारो को १९३५ के भारत सरकार अधिनियम द्वारा सवैधानिक शक्ति प्रदान की गई। ऐसे

संघीय शासन प्रायः शक्तिशाली होते हैं क्योंकि नई व्यवस्था के लागू होने के तुरन्त ही पहले सारी प्रशासनिक सत्ता केन्द्र मे निहित होती है। केन्द्र कम से कम सत्ता हस्तान्तरित करना चाहता है। प्रान्तीय सरकारो मे इतनी शक्ति भी नही होती कि वे अधिक सत्ता प्राप्ति के लिए लड़-झगड़ सकें।

संघीय सरकारो के सुचारु रूप से काम कर सकने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएं हैं :—

१. लिखित सविधान—लिखित सविधान की आवश्यकता इसलिए पड़ती है जिससे कि केन्द्र और राज्य सरकारो के बीच अधिकार विभाजन मे कोई भ्रम न रह जाए। लिखित सविधान मे भ्रम का प्रश्न उठ ही नही सकता। एकात्मक सरकार मे चूंकि अधिकार विभाजन का प्रश्न नही होता इस कारण वहा पर अलिखित सविधान से भी काम चल सकता है।

२. अधिकार विभाजन—चूंकि दो सरकारें संघ के हर राज्य मे काम कर रही है इसलिए यह जरूरी है कि उनमे आपस मे अधिकारो का विभाजन हो जाए। यदि ऐसा न हो तो कुछ काम तो शायद किये ही न जाएं क्योंकि दोनो ही सरकारें इसी भ्रम मे रह सकती हैं कि दूसरी सरकार यह काम करेगी। इसी प्रकार, कुछ काम दोनो सरकारें कर सकती हैं। जब दो सरकारें एक ही भौगोलिक सीमा मे काम कर रही हैं तो यह बताना बड़ा ही आवश्यक होगा कि किसकी अधिकार सीमा कहाँ तक आती है।

३. दुष्परिवर्तनशील संविधान—संघीय सरकार की तीसरी आवश्यकता दुष्परिवर्तन शील सविधान की है। इसकी आवश्यकता इसलिए होती है जिससे कि राज्यों और केन्द्र सरकारो की अधिकार सीमाओ मे मनमाना परिवर्तन न किया जा सके। यदि सविधान मे संशोधन आसानी से हो तो जिस किसी सत्ता के हाथ मे यह शक्ति होगी वह उसका उपयोग करके राज्य और केन्द्र सरकारो के अधिकारो मे मनमाना परिवर्तन कर देगी। इससे सरकारो के स्थायित्व मे कमी आयेगी।

४. स्वतंत्र न्यायपालिका—स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता इसलिए होती है कि यदि लिखित सविधान की धाराओ के अर्थ के सम्बन्ध मे केन्द्र और राज्य सरकारो के बीच कोई विवाद उठ खड़ा हो तो उसका अधिकृत अर्थ निर्वचन न्यायपालिका द्वारा करवाया जा सके। यदि न्यायपालिका न हो तो अर्थ-निर्णय कौन करेगा ? स्वतंत्र न्यायपालिका इसलिए आवश्यक होती है कि उस पर सरकारी प्रभाव डालकर शक्तिशाली दल अपने पक्ष मे अर्थ-निर्वचन न करवा सके।

एकात्मक और संघात्मक सरकारो मे भेद

एकात्मक और संघात्मक सरकारो के भेद निम्न प्रकार से बताये जा सकते हैं :

एकात्मक सरकारें	संघात्मक सरकारें
१. अधिकारो का केन्द्रीयकरण	१. अधिकारो का बँटवारा।

२. प्रान्तीय सरकारो को केन्द्र ही अधिकार देता है।	२. राज्यो की सरकारो को संविधान द्वारा अधिकार मिलते है।
३. इनका संविधान परिवर्तनशील या दुष्परिवर्तनशील हो सकता है।	३. इनका संविधान दुष्परिवर्तनशील होता है।
४. ये सरकारे शक्तिशाली होती हैं।	४. ये सरकारें एकात्मक सरकार जैसी शक्तिशाली नही होती।
५. इनमे प्रशासकीय एकरूपता होती है।	५. इनमे प्रशासकीय विभिन्नता होती है।
६. इनमे प्रशासकीय व्यय कम होता है।	६. इनमे प्रशासकीय व्यय अधिक होता है।
७. इनमे प्रशासकीय निर्णय जल्दी होते हैं।	७. इनमे प्रशासकीय निर्णय होने मे देरी लगती है।
८. स्वतन्त्र न्यायपालिका आवश्यक नही है।	८. स्वतन्त्र न्यायपालिका आवश्यक है।

सघात्मक सरकारो के गुण

१. सघात्मक शासन व्यवस्था बडे देशो के लिए अधिक उपयुक्त होती है। बडे देश के विभिन्न भागो की अपनी निजी समस्याएँ होती हैं। ऐसे देशो मे सघीय शासन व्यवस्था बडी उपयोगी होती है। केन्द्रीय सरकार तो उन समस्याओ को सभालती है जो सारे राष्ट्र के महत्त्व की हैं। राज्य की सरकारें स्थानीय एव राजकीय महत्त्व के मामलो को अपने हाथ मे लेती हैं।

२. आज हम लोक-कल्याणकारी राज्य के युग मे रह रहे हैं। अब राज्य के कामों मे बहुत अधिक वृद्धि हो गई है। बढ हुए कामो को, एक बडे देश मे, एक ही सरकार के हाथ मे छोड देना उचित नही। एक ही सरकार शायद इतनी सभी समस्याओ को सुलझा भी न सके। इसलिए भी सघात्मक शासन व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव होती है।

३. सघात्मक सरकारो मे कार्य विभाजन होता है। कार्य विभाजन के कारण प्रशासकीय दक्षता मे वृद्धि होती है। कुछ काम केन्द्रीय सरकार अनेक वर्षों तक करते रहने के बाद उसमे दक्षता प्राप्त कर लेती है। यही बात राज्य सरकारो के बारे मे भी सही है।

४ सघात्मक शासन प्रणाली वाले देशों मे स्थानीय स्वराज्य एव राष्ट्रीय एकता का बडा ही सुन्दर सम्मिश्रण देखने को मिलता है। स्थानीय महत्त्व के प्रशासनिक विषय राज्य सरकारो के हाथ मे दे दिए जाते हैं और राष्ट्रीय महत्त्व के विषय केन्द्र सरकार के हाथो मे। ऐसा हो सकता है कि पास ही पास स्थित कुछ देश आपस मे सहयोग कर विकास एव रक्षा के कार्यक्रम निश्चित करना चाहे पर पूर्णतया एकता न चाहे। ऐसी अवस्था मे सघात्मक शासन व्यवस्था बडी उपयोगी होती है।

५. सघात्मक शासन प्रणाली मे स्थानीय महत्त्व के विषयो पर राज्य सरकारो का नियन्त्रण रहता है। स्थानीय सरकार की विधानसभा मे जनता के चुने हुए

प्रतिनिधि होते हैं। जनता राज्य सरकारो को अपना समझती है। केन्द्रीय सरकार उनसे बहुत दूर हो जाती है। एक राजस्थानी राजस्थान सरकार को भारत सरकार की अपेक्षा अपने अधिक निकट पाता है। कारण स्पष्ट है। राजस्थान सरकार मे उसके जान-पहचान परिचय वाले लोग भारत सरकार की अपेक्षा अधिक हैं। परिचय के कारण अपनत्व की भावना आती है।

६. सघात्मक सरकारो से कुछ आर्थिक लाभ भी होते हैं। यदि सघात्मक सरकार न होती तो भारत के सभी १६ राज्य स्वतत्र रूप मे विदेशो से सम्बन्ध स्थापित करते। सभी राज्य अलग-अलग अपने राजदूत और दूतावासो का प्रबध करते। १६ राजदूत और दूतावासो के स्थान पर अब एक राजदूत और एक दूतावास ही सारा काम कर लेते हैं।

७ सघात्मक शासन प्रणाली मे केन्द्र सरकार कभी भी निरकुश नही हो सकती। केन्द्र सरकारो पर राज्य सरकारो का प्रभाव सदैव ही रहता है। कोई भी ऐसी नीति जिसमे राज्य सरकारो का हित निहित हो, कार्यान्वित करने के पहले सरकार यह अवश्य सोचेगी कि राज्यो पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। भारत मे राष्ट्रपति एव प्रधानमत्री के चुनाव मे राज्यो के मुख्यमत्री काफी महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। यदि राज्यो के मुख्यमंत्री चेष्टा करे तो अपने दल के सदस्यो से अपनी इच्छानुसार दल की सरकारी नीति के विरुद्ध वोट डलवा सकते हैं।

सघात्मक सरकारो के दोष

१. केन्द्र और राज्य सरकारो मे सदैव ही गतिरोध बना रहता है। यह गतिरोध कई प्रकार के कारणो से हो सकता है। राज्य और केन्द्र सरकारे आपस मे कार्यक्षेत्र को लेकर विवाद खडे कर सकती हैं कि अमुक कार्य केन्द्र की अधिकार सीमा के भीतर है या राज्यो की अधिकार सीमा मे। गतिरोध का दूसरा कारण राज्यों एव केन्द्र मे विभिन्न दलो की सरकारे होना हो सकता है। चौथे आम चुनाव के बाद भारत मे उडीसा, बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पजाब, हरियाणा, मद्रास, केरल और पाण्डीचेरी मे गैर काग्रेसी दलो के मत्रिमण्डल बने थे। केन्द्र मे काग्रेसी सरकार थी।

२. भारत जैसे देश मे एक और भी प्रशासनिक समस्या आती है। भारत मे आयकर, सीमा एव उत्पत्ति शुल्क, रक्षा, डाक तथा रेल को छोड कर अन्य विभागो मे निज की कार्य पद्धति व सचालन नही हैं। भारत सरकार शिक्षा, सहकारिता, सामुदायिक विकास योजना, पचायती राज, स्वास्थ्य आदि के मामलो मे राज्य सरकारो को परामर्श देती है। जब एक ही दल की सरकारें राज्यो एव केन्द्रो मे हो तो इस प्रकार से दिये गये परामर्श अधिक प्रभावशाली होते हैं। जब केन्द्र और राज्यो मे विभिन्न दलो की सरकारें हो तो इस प्रकार का केन्द्र द्वारा दिया गया परामर्श कितना प्रभावकारी होगा यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता।

३. सघात्मक सरकारो में उग्र प्रान्तीय भावनाओ को प्रोत्साहन मिलता है।

कई बार तो राज्य सरकारें अपने स्वार्थलाभ के लिए इस प्रकार की भावनाओं को प्रोत्साहित करती है। अभी चौथे आम चुनाव से कुछ ही पहले आन्ध्र मे इस्पात सयन्त्र की स्थापना के पक्ष मे जो प्रदर्शन एव उपवास आदि एक काग्रेसी नेता द्वारा किये गए उसमें राज्य सरकार का सहयोग कहा जा सकता है। राज्यों की सीमा निर्धारण को लेकर उत्पन्न हुए वाद-विवादो मे राज्य सरकारो का रवैया पक्षपातपूर्ण कहा जा सकता है।

४ आन्तरिक शासन कमजोर हो जाता है। इस व्यवस्था मे दोहरी कानून व्यवस्था एव दोहरी राजभक्ति होती है। यदि राज्य सरकार और केन्द्र सरकार मे मतभेद हो तो नागरिक के लिए समस्या हो जाती है कि वह किसका समर्थन करे।

५ सघीय शासन एक राष्ट्र की भावना मे भी बाधक होता है। अभी हाल मे ही एक अमेरिकी विद्वान ने कहा कि वह अनेक बार भारत आ चुके हैं, पर अभी-तक ऐसा कोई व्यक्ति भारत मे नही मिला जिसने यह कहा हो कि वह भारतीय है। सबने ही अपना परिचय बंगाली, बिहारी, उड़िया, राजस्थानी कह कर ही दिया है। भाषा सम्बन्धी दगे, और नये राज्य आदि के निर्माण मे जिस प्रकार की भावना का परिचय दिया गया है, वह एक राष्ट्रीयता की भावना का शायद ही प्रतीक हो।

६. सघीय शासन व्यवस्था मे व्यय अधिक होता है। भारत मे १६ राज्यो के लिए १६ विधान सभाएँ (कुछ मे विधान परिषदें भी) है, मन्त्रिमण्डल हैं। यदि एकात्मक शासन होता तो इतने मंत्रिमण्डलो एव विधान सभाओ की कदापि आवश्यकता न होती।

७. भारत जैसे सघीय सरकार वाले देशों में प्रशासकीय दृष्टि से एक और असुविधा होती है। रेल सघीय विषय है, पर रेलवे की सम्पत्ति की रक्षा का भार राज्य सरकारो पर है। केन्द्रीय कानूनो को भग करने वाले मुकदमो की सुनवाई राजकीय अदालतो मे ही होती है। यदि राज्य सरकारो की ओर से पूरा सहयोग न हो तो सघीय शासन व्यवस्था मे काफी बाधाएँ हो सकती हैं।

विशेष अध्ययन के लिए

१ आशीर्वादम : पोलिटिकल थ्योरी
२ फाइनर थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ मॉडर्न गवर्नमेंट
३. इकबाल नारायण : राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त प्रथम भाग
४ लीकॉक : दी लिमिटेशन्स ऑफ फेडरल गवर्नमेंन्ट्स

७

संगठन

संगठन एक अत्यन्त ही प्राचीन प्रक्रिया है। जिसके अभाव में मानव-समाज की कल्पना करना कठिन है। व्यक्तिगत रूप में कोई कार्य कठिन प्रतीत होता हो उसे संगठन से आसानी से हल किया जा सकता है। संगठन के बिना समुदाय अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। प्रागैतिहासिक काल में जब व्यक्ति इकट्ठे होकर शिकार करने जाते थे, उनका एक संगठन रहा होगा। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम करते हैं तो उन लोगों का एक संगठन हो जाता है। संगठन उस ढांचे को कहते हैं जोकि कोई भी संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाती है। संगठन वस्तुतः विभिन्न अधिकारियों के बीच कार्य विभाजन का नाम है। अतः संगठन के लिए निम्नलिखित दो बातों का होना आवश्यक है :—

१. किसी उद्देश्य की प्राप्ति
२. एक से अधिक व्यक्तियों का होना

सबसे पहला संगठन शायद उस समय बना होगा जबकि दो व्यक्तियों ने किसी पत्थर के टुकड़े को सरकाने के लिए एक साथ मिल कर प्रयत्न करने का निश्चय किया। दो व्यक्तियों में आपस में कार्य विभाजन कैसे हो और उनके प्रयत्नों में समन्वय किस प्रकार हो, यही संगठन का उद्देश्य है।

संगठन सर्वव्यापी है। आप जहां कहीं जावें वहीं आपको संगठन मिलेगा। आज शायद ही ऐसा कोई काम हो जो एक व्यक्ति अकेला कर रहा हो। सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकार की संस्थाओं में संगठन पाया जाता है। बैंक, पोस्ट आफिस, राजकीय दफ्तर, औषधालयों, स्कूल, कालेज, दूकान हर कहीं आपको संगठन मिलेगा। यह अलग बात है कि कहीं पर संगठन अत्यन्त ही साधारण हो—जैसेकि, किसी दूकान का मालिक एक लड़के की सहायता से दूकान चला रहा हो। दूसरी ओर, एक ऐसी फैक्ट्री मिलेगी जहां पर १०,००० मजदूर काम करते हैं और वहां संगठन की समस्या जटिल है। छोटे संगठनों की समस्या बड़े संगठनों से भिन्न है। पर संगठन सब एक से हैं। सबका उद्देश्य है अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति करना। सबके सामने यही समस्या है कि किस प्रकार व्यक्तिगत प्रयत्नों को समन्वित करके उद्देश्य पूर्ति की ओर आगे बढ़ा जाय।

संगठन का जन्म इसलिए होता है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति करनी है। सरकार राशनिंग की व्यवस्था के लिए संगठन बनाती है। यदि सरकार यह आवश्यक

समझनी है कि देश के सीमावर्त्ती भागो मे दुश्मन के झूठे प्रचार का खण्डन करना है तो उसके लिए वह एक संगठन बना देती है। यदि किसी विश्वविद्यालय के छात्र हड़ताल करना चाहते हैं तो उसके लिए भी सगठन बनाना आवश्यक होता है। युद्ध-काल मे चूंकि अनेक नये काम प्रारम्भ करने होते हैं इसलिए अनेक नये विभाग खोले जाते हैं। इस प्रकार समय बीतने के साथ कुछ सगठन नष्ट भी हो जाते हैं। विद्यार्थियो की हड़ताल समाप्त होने ही सघर्ष समिति भग कर दी जाती है। राशनिंग की व्यवस्था समाप्त होने पर राशनिंग-विभाग के सगठन का अत हो जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मे सरकार ने हवाई आक्रमण सुरक्षा विभाग बनवाया था। युद्ध की समाप्ति पर यह सगठन समाप्त कर दिया गया। सगठन इसलिए समाप्त हो जाते हैं कि उद्देश्य प्राप्ति हो जाने के पश्चात् उनकी कोई उपयोगिता नही रह जाती। कुछ सरकारी सगठन तो ऐसे होते है जिनके बन्द होने का प्रश्न ही नही उठता जैसे शिक्षा विभाग, डाकतार का विभाग, पुलिस, वैदेशिक विभाग। कुछ अन्य सगठन ऐसे होते हैं जो उद्देश्य प्राप्ति के बाद बन्द कर दिये जाते है, जैसे राशनिंग, बाढ़-पीड़ितो की सहायता, बांध-निर्माण आदि, ऐसे सगठनो के लिए उद्देश्य प्राप्ति के बाद कोई काम रह ही नही जाता।

किसी भी प्रशासकीय इकाई की सफलता के लिए संगठन की बड़ी आवश्यकता होती है। इसके बिना प्रशासकीय इकाई अपने उद्देश्य की प्राप्ति नही कर सकती। उद्देश्य चाहे छोटा हो या बड़ा—यदि वह एक आदमी के कर सकने योग्य नही है तो सगठन जरूरी है। चूंकि आज के औद्योगिक युग मे इकाइयां बड़ी होती हैं अतः सगठन भी जटिलतर होते जा रहे हैं।

औपचारिक एव अनौपचारिक सगठन

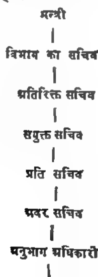
औपचारिक संगठन उस संगठन को कहते हैं जोकि कानून अथवा सत्ता प्राप्त अधिकारी द्वारा अधिकृत, अधिकारी अधीनस्थ सम्बन्ध पर आधारित हो। यह वह आदर्श वस्तुस्थिति है जोकि प्रबन्धक वर्ग स्थापित करना चाहता है। इसका आधार सत्ता होता है। जब कभी किसी सगठन का सगठन-चार्ट बनाया जाता है तो यह औपचारिक सगठन का ही चार्ट होता है।

इस प्रकार का औपचारिक सगठन वास्तविक सम्बन्धो पर ध्यान नही देता। यह तो कार्यकुशलता और कार्यालय की आवश्यकता के अनुसार बनाया जाता है। पर यदि वास्तविक सम्बन्धो को देखा जाय तो पता चलेगा कि वास्तविक सम्बन्ध सगठन चार्ट मे दिखाये गये सम्बन्धो से भिन्न हैं। वास्तविक सम्बन्धो को सगठन-चार्ट मे दिखाया जाना सभव नही क्योंकि ये अधिकृत सम्बन्ध तो होते ही नही। कई बार तो प्रबन्धक वर्ग को शायद यह पता भी न हो कि वास्तविक सम्बन्ध क्या हैं? इन वास्तविक सम्बन्धो को अनौपचारिक सगठन कहते हैं।

किसी भी सरकारी अथवा गैरसरकारी सस्था मे औपचारिक और अनौप-

चारिक संगठन एक ही साथ काम करते हैं। कई बार इन दोनो मे उद्देश्य की एकता होती है और अनेक बार विभिन्नता भी होती है। मान लीजिए कहीं किसी कालेज मे हड़ताल हो गई है। प्रिंसिपल साहब औपचारिक संगठन के प्रधान होने के नाते हड़ताल तुड़वाने की चेष्टा कर रहे हैं। शिक्षकों का एक दल जो शहर मे प्रभावशाली है या तो प्रिंसिपल साहब के इन प्रयत्नो को आगे बढ़ा सकता है या उसमे बाधा डाल सकता है। यदि अनौपचारिक और औपचारिक संगठन एक मत होकर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चेष्टा करें तो सफलता की संभावना बढ़ती है। यदि वे एक मत न हों और इन दोनो संगठनो मे आपस मे ही मतभेद हो और वे एक-दूसरे के विरोध मे काम करते हो तो उस हद तक सफलता की संभावनाएँ कम हो जाती हैं।

एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि ये औपचारिक संगठन किस प्रकार बनते हैं। औपचारिक संगठन बनने का प्रमुख कारण यह है कि पद का अधिकार और कर्मचारियों द्वारा स्वीकृति दोनो एक ही साथ प्राप्त नही होते। ऐसी अनेक स्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है जब पद की दृष्टि से सत्ता एक व्यक्ति को मिलती है पर कर्मचारी उसे स्वीकार न करके नेतृत्व के लिए किसी और की ओर देखते हैं। प्रबन्धकों ने एक बंगाली को निरीक्षक पद पर नियुक्त किया है। पर कर्मचारी उत्तर-प्रदेश और बिहार के अधिक संख्या मे होने के कारण किसी अन्य व्यक्ति के प्रभाव में हैं। पहले के सरकारी संगठनो मे आज की अपेक्षा इस प्रकार के उदाहरण कम होते थे। पहले सरकारी पदों पर वे ही व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे जिनको कर्मचारी वर्ग परम्परागत भावनाओं के कारण स्वीकार करता था। अनेक विभागों मे संगठन चार्ट मे दिये गए पद सोपान के अनुसार, अधिकारी अधीनस्थ सम्बन्ध कार्य नही करते। यह नीचे के उदाहरण मे स्पष्ट होगा :—



सहायक
|
लिपिक
|
चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी

नोट :—ऊपर दिखाया गया मार्गदर्शक चिह्न विभिन्न अधिकारियों के नीचे उच्च-अधिकारियों तक पहुँचने को चिन्हित करता है।

यदि प्रवर सचिव किसी कारणवश सीधा मन्त्री महोदय के पास पहुँच जाए, अनुभाग अधिकारी बीच के अधिकारियों को छोड़कर सचिव के पास पहुँच जाय तो यह अनौपचारिक संगठन का ही उदाहरण हुआ क्योंकि औपचारिक संगठन के अनुसार इस प्रकार का सम्बन्ध सम्भव नहीं था। जब कभी औपचारिक संगठन के सोपानों का उल्लंघन करके नये सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं उन्हें अनौपचारिक सम्बन्ध कहते हैं।

औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठनों में विभिन्नता निम्न प्रकार से दिखाई जा सकती है :

औपचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
१. कानून अथवा सत्ता प्राप्त अधिकारी द्वारा बनाया जाता है।	१ कानून अथवा सत्ता प्राप्त अधिकारी द्वारा नहीं बनाया जाता है।
२. इच्छापूर्वक बनाया जाता है।	२. यह स्वतः ही बन जाता है।
३. योजनाबद्ध होता है।	३. योजना का अभाव होता है।
४. लिखित होता है।	४. अलिखित होता है।
५ कार्यकुशलता की प्राप्ति के लिए बनाया जाता है।	५ कार्यकुशलता इसका उद्देश्य हो यह आवश्यक नहीं।
६. परिमेय होता है।	६ परिमेय नहीं होता है। संवेग पर आधारित रहता है।
७. अव्यक्तिगत होता है।	७ व्यक्तिगत होता है।
८. सत्ता पर आधारित होता है।	८ प्रभाव पर आधारित होता है।
९. सरकारी होता है।	९. गैर सरकारी होता है।
१०. इसमें आदर्श स्थिति होती है।	१०. इसमें वास्तविक स्थिति होती है।

अनौपचारिक संगठन सभी जगह मिलते हैं। सरकारी, गैरसरकारी सभी संस्थानों में, जहां भी संगठन हो, अनौपचारिक संगठन अपने, आप ही विकसित हो जाता है। राजनैतिक दल, मजदूर संघ, व्यावसायिक प्रतिष्ठान, विश्वविद्यालय, चर्च, सेना सभी जगह अनौपचारिक संगठन मिलते हैं। इसका कारण यह है कि सत्ता और प्रभाव एक ही हाथों में नहीं होते।

औपचारिक संगठन तो केवल एक संरचना का काम करता है। वास्तविक

शक्ति तो अनौपचारिक संगठन में होती है। प्राय ऐसा होता है कि जब किसी संस्था के औपचारिक संगठन का अन्य किसी संस्था मे अनुकरण किया जाता है तो वह संगठन नई संस्था मे उतना सफल नही होता। इसका कारण यही होता है कि केवल औपचारिक संगठन की ही नकल की जाती है। अनौपचारिक संगठन-जो वास्तव मे संगठन को शक्ति प्रदान करता है की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। जबकि वास्तविक स्थिति यह है कि सफलता वस्तुत अनौपचारिक संगठन पर ही निर्भर करती है।

अनौपचारिक संगठन स लाभ

१. इससे संगठन में लचीलापन आता है। यदि संगठन मे सात व्यक्ति हैं तो जो व्यक्ति जिस काम के लिए योग्य हो, चाहे उसकी वास्तविक स्थिति जो भी हो, उसे वह काम सौप दिया जाता है। औपचारिक संगठन के सपान उसकी स्थिति इसमे बाधक नही बन पाती।

२ इसे काम मे लाने मे बड़ी आसानी रहती है। शक्ति जहा भी हो, उसका उचित उपयोग होता है। सब कोई अपनी शक्ति भर सफलता के लिए योगदान करता है।

३. इसमे सबसे बडा लाभ यह होता है कि सरकारी सम्बन्ध व्यक्तिगत रूप मे आ जाते है। चूंकि दल के नेता के प्रति सद्‌भावना होती है, अतः लोग असुविधा उठाकर भी दल का नेता जो आज्ञा देता है उसका पालन करते हैं। यदि यह स्थिति न हो तो ५ बजते ही लिपिक कलम रोक लेगे। पर यदि नेता के प्रति सद्‌भावना है तो चाहे रात के ६ ही क्यो न बज जाय, वह काम पूरा ही कर लेगा।

अनौपचारिक संगठन से हानियाँ

१ इसमे अनुशासन की भावना मे कमी आती है। यदि सचिवालय में कोई लिपिक प्रति-सचिव से सीधा सम्पर्क स्थापित कर ले तो वह अनुभाग अधिकारी और अवर-सचिव की बात पर ध्यान नही देता। क्योकि वह तो सदा यही समझता है कि प्रति-सचिव तक उसकी पहुँच है।

२ इससे दूसरी हानि यह होती है कि जिम्मेवारी की भावना मे कमी आती है। यदि लिपिक प्रति-सचिव से सीधा ही सम्पर्क कर लेते है तो अनुभाग अधिकारी और अवर सचिव यह सोच कर सतोष कर लेते हैं कि जब लिपिक उनकी बात ही नही मानता तो वे उसके काम की जिम्मेवारी भी नही ले सकते।

३. इससे भ्रष्टाचार भी फैलने का डर रहता है। अनौपचारिक संगठन नियमो पर तो आधारित होता ही नही है। ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है जबकि सारे महत्वपूर्ण कार्य उसी व्यक्ति को दिये जाएँ जिसे आगे बढ़ाना है। दूसरो को उस प्रकार का अनुभव ही नहीं प्राप्त होने पाता।

४. इसमे यह भी भय रहता है कि लोग यह समझ लेते हैं कि वेतन वृद्धि

और पदोन्नति का उपाय अनौपचारिक रूप से उच्च अधिकारियों तक पहुँचना है। कर्मचारी कार्यालय के काम की अवहेलना करके अधिकारियों तक पहुँचने और उन्हें प्रसन्न करने के अवसर ढूँढा करते हैं।

५ अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत होता है। एक व्यक्ति जिस प्रकार के अनौपचारिक संगठन के माध्यम से काम कर रहा था, वह शायद दूसरे के लिए उपयुक्त न हो। यदि विभागाध्यक्ष की बदली हो जाय या वह अवकाश प्राप्त हो तो, नया विभागाध्यक्ष नये सिरे से अपना अनौपचारिक संगठन बनाना शुरू करेगा। पहले के विभागाध्यक्ष के समय में जो अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे वे शायद अब महत्त्वपूर्ण न हो सकें। अतः उनमें द्वेष की भावना पैदा हो जाना स्वाभाविक ही है।

अनौपचारिक संगठन का उपयोग बहुत सावधानी से करना पड़ता है। किसी सीमा तक तो इसका प्रयोग रुक ही नहीं सकता। अनौपचारिक संगठन बनना तो स्वाभाविक है परन्तु यह विभागाध्यक्ष का काम है कि वह इस प्रकार से काम ले कि औपचारिक और अनौपचारिक संगठन दोनों एक-दूसरे के पूरक के रूप में काम करें और उनमें आपस में प्रतिस्पर्द्धा न हो। अच्छे और बुरे संगठनों में प्रायः यही अन्तर पाया जाता है। अच्छे संगठनों में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही संगठन एक-दूसरे के पूरक के रूप में काम करते हैं। दोनों का संगठन के उद्देश्य की प्राप्ति में योगदान होता है एवं उद्देश्य प्राप्ति में सफलता मिलती है। बुरे संगठनों में अनौपचारिक और औपचारिक संगठन एक-दूसरे के विरोध में काम करने लगते हैं एवं संगठन के उद्देश्य की प्राप्ति को प्रायः असंभव सा बना देते हैं।

संगठन का महत्त्व

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह सदैव समूह में ही रहना चाहता है। समूह में रहने से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए संगठन आवश्यक है। संगठन हमारी बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देता है। मिस्र के पिरामिड और शेरशाह की कलकत्ते से पेशावर तक की सड़क संगठन के बिना कभी भी नहीं बन सकती थी।

प्राचीन समय में संगठन का महत्त्व इतना अधिक नहीं था जितना कि औद्योगिक क्रान्ति के बाद के वर्षों में हो गया है। वर्त्तमान युग में संगठन का महत्त्व बहुत ही अधिक हो गया है। सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्र में बड़ी-बड़ी प्रशासकीय इकाइयाँ संगठन के सहारे ही खड़ी हैं। चाहे पिछले युगों में संगठन इतना महत्त्वपूर्ण न रहा हो, पर वर्तमान युग में संगठन के बिना इन प्रशासकीय इकाइयों का अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

किसी भी सरकारी अथवा गैरसरकारी प्रशासकीय इकाई में संगठन के निम्नलिखित कार्य हैं :

१ प्रशासकीय इकाई के उद्देश्यों से जनता एवं इकाई के कर्मचारियों को अवगत कराता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनकी सद्भावनाएँ जीतना

चाहता है। सगठन यह चेष्टा करता है कि ये उद्देश्य सदैव ही जनता एवं कर्मचारियो के ध्यान मे रहें।

२. इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए अधिकारियो एव कर्मचारियो के बीच कार्य विभाजन करता है। हर व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है कि उसकी क्या जिम्मेवारी है। इस प्रकार के कार्य विभाजन के बिना आज की औद्योगिक सभ्यता चल ही नही सकती।

३. सगठन यह देखता है कि कार्य विभाजन को ठीक रूप से कार्यान्वित किया जा रहा है या नही। सारे कर्मचारी यदि एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार काम न करे तो उद्देश्य प्राप्ति का प्रश्न ही नही उठता। यदि कोई व्यक्ति उचित रूप से उद्देश्य प्राप्ति के लिए चेष्टा नहीं कर रहा है तो उसे समुचित चेष्टा करने की प्रेरणा दी जाती है। सगठन मे विभिन्न सोपान होते हैं। यह सिलसिला तबतक चलता रहता है जबतक कि हम प्रशासन के शीर्ष बिन्दु तक न पहुँच जाएं। प्रशासन का हर सोपान अपने निचले सोपान को नियोजित रखने के लिए उत्तरदायी होता है। निचला सोपान अपने ऊपर के सोपान की आधीनता मे काम करता है।

४. सगठन सचार व्यवस्था का भी काम करता है। सगठन के विभिन्न सोपानो से होता हुआ आदेश एव निर्देश सगठन के शीर्ष बिन्दु से नीचे के सोपानो तक पहुँचता है। इसी प्रकार सगठन के निचले सोपानो से शीर्ष बिन्दु तक सूचना, निवेदन एवं प्रतिवेदन आदि पहुँचते रहते हैं।

५. सगठन प्रशासन की विभिन्न इकाइयो मे, तथा इकाई के भीतर इकाई के उप-विभागो के बीच समन्वय बनाए रखता है। यदि इकाई के दो उप-विभागो मे किसी बात को लेकर झगड़ा हो जाय तो यह सगठन का कर्त्तव्य होता है कि इस झगड़े का निपटारा सगठन के हित को ध्यान मे रखते हुए करे। इसी प्रकार विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों के बीच भी समन्वय बनाये रखना आवश्यक होता है।

उपरोक्त विवरण से यह पता चलता है कि बिना संगठन के प्रशासकीय इकाईयों की कल्पना ही नही की जा सकती। छोटी प्रशासकीय इकाइयो मे संगठन की समस्या साधारण ही होगी। पर बडे प्रतिष्ठानो मे संगठन की समस्या अधिक जटिल होगी। सगठन की समस्या हर कही है। यह सगठन का ही फल है कि पुलिस का एक दस्ता उसी प्रकार का अनियन्त्रित व्यवहार नही करता जिस प्रकार एक भीड़ करती है। भीड़ और पुलिस के दस्ते के व्यवहार के अन्तर के पीछे सगठन ही है।

यदि सगठन इतना महत्त्वपूर्ण है, और सदैव से ही सगठन की आवश्यकता रही है तो यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि अभी हाल के दिनो मे सगठन का महत्त्व इतना क्यो बढ गया है? हाल के वर्षों मे संगठन का महत्त्व बढने के निम्नलिखित कारण हैं:

१. बडी-बडी प्रशासकीय इकाइयो का विकास:—आज हम बडी प्रशासनिक इकाइयो के युग मे रह रहे हैं। आज सरकारी और गैरसरकारी दोनो ही क्षेत्रो मे

पहले की अपेक्षा कही बडी-बडी प्रशासकीय इकाइयां काम कर रही हैं। सरकारी इकाइयाँ अब अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर काम करने लगी हैं। अपने देश और विदेशो मे बडे-बडे उद्योग-धधो आदि का विकास हो रहा है। यदि सगठन ढग का न हो तो ये प्रशासकीय इकाइयाँ अपने उद्देश्य मे कदाचित् ही सफल हो।

२ जब सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रो मे प्रशासकीय इकाइयाँ छोटे पैमाने पर काम करती थी तो सगठन की समस्या इतनी जटिल न थी। बहुत सारी समस्याएँ परम्परागत नियम, आदतो आदि के आधार पर सुलझ जाती थी। अत विशेष रूप से इनके अध्ययन आदि की आवश्यकता नही पड़ती थी। चूँकि इकाइयाँ छोटी होती थी, इसलिए यदि असफल भी हो जाती तो इतना बडा खतरा न था, जितना कि असफलता के कारण आज हो सकता है। आज सगठन पर पहले से कही अधिक उत्तरदायित्व का बोझ बढ गया है, अत. अब इस पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

३. तकनीकी विकास से भी सगठन का महत्त्व बढा है। तकनीकी विकास के कारण बडे बडे प्रतिष्ठान स्थापित हो सके हैं। अब छोटे पैमाने पर उत्पादन आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नही होता। तार टेलीफोन, रेडियो, टेलीप्रिंटर आदि ने सगठन के हाथ मे नियन्त्रण की नई शक्तियाँ केन्द्रित करदी हैं। आज दिल्ली स्थित किसी कम्पनी का मैनेजर अपने सगठन की कानपुर, लखनऊ, जयपुर, अहमदाबाद की शाखाओ से टेलीफोन द्वारा उसी प्रकार सुविधापूर्वक सम्पर्क स्थापित कर सकता है जैसे वे दिल्ली मे ही स्थित हो।

भविष्य मे संगठन का महत्त्व और भी अधिक बढने की सभावना है। नये कल-कारखाने खुलेंगे। लोग शहरो की ओर आकर्षित होगे। इनके फलस्वरूप सगठन के लिए नई-नई समस्याएँ पैदा होगी। इन समस्याओ का हल ढूंढ निकालने की जिम्मेदारी सगठनो पर होगी और फलत उनका महत्त्व बढेगा।

विशेष अध्ययन के लिए

१. एम० पी० शर्मा : लोक-प्रशासन सिद्धान्त एव व्यवहार
२ व्हाइट . इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
३ अवस्थी एवं माहेश्वरी लोक-प्रशासन
४. मार्स्टिटन मार्क्स : एलिमेंट्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
५. सेफाक्रो . एडमिनिस्ट्रेशन

संगठन के आधार

संगठन उस सरचना को कहते हैं जोकि कोई भी संस्था अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए बनाती है। संगठन वस्तुतः विभिन्न अधिकारियो के बीच कार्य-विभाजन का नाम है।

साधारण स्थितियो मे संगठन इतना जटिल नही होता। यदि आपने एक दूकान खोली है और अपनी सहायता के लिए लडके को नौकर रक्खा है तो लड़के से आपके सम्बन्ध निश्चित करने के लिए संगठन चार्ट की आवश्यकता नही होगी। आदत एव प्रथाओ के अनुसार आप लडके को उचित काम दे देंगे। जैसे यह लडके का कर्त्तव्य होगा कि वह समय से आधा-पौना घण्टा पूर्व आपके मकान पर आकर चाबी ले जाये, दूकान खोले, सफाई करे, पानी भर कर रखे। यदि इस बीच मे कोई व्यक्ति आ जाय तो आपको टेलीफोन करके सूचना दे और दूकान पर रहे। दोपहर मे घर से आपका खाना ले आये। शाम को दूकान बन्द करके चाबी घर पहुँचा दे। पर बडी संस्थाओ मे संगठन का कार्य काफी जटिल हो जाता है क्योकि वहा पर हजारो की सख्या मे अधिकारी एव कर्मचारी होते हैं और यदि संगठन मे कोई त्रुटि रह जाय तो काफी बडी हानि हो सकती है।

जब संगठन का उद्देश्य कार्य विभाजन है तो यह जानना आवश्यक हो जाता कि संगठन का आधार क्या होना है, अर्थात् किसी भी संस्था मे कार्य विभाजन किस आधार पर किया जाता है। किसी भी संस्था मे काम को बाँटने के चार आधार होते हैं :

१ उद्देश्य
२ प्रक्रिया
३. सेव्य समुदाय
४. क्षेत्र

अब इन चारो आधारो का एक-एक करके अध्ययन किया जाना चाहिए।

उद्देश्य —

कुछ संस्थाओ की स्थापना किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए होती है। जैसे रक्षा विभाग, वैदेशिक विभाग, डाक-तार विभाग, रेल, पुलिस आदि। राष्ट्रीय और राजकीय सरकारो के प्रमुख विभाग उद्देश्य के आधार पर ही होते हैं। निजी

प्रशासन की बडी-बडी इकाइयो मे भी प्रमुख विभाग उद्देश्य के आधार पर ही होते हैं।

उद्देश्य के अनुसार विभाग बनाने का मतलब यह होता है कि वे सारे लोग जो किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम करते हैं चाहे उनकी प्रक्रिया कुछ भी क्यो न हो एक ही विभाग के अग होंगे। जैसे रक्षा विभाग मे सैनिक, इंजीनियर, पशुचिकित्सक सभी रक्षा विभाग के अन्तर्गत ही आते है।

इस प्रकार के सगठन मे एक विभाग से सम्बन्धित सारी सेवाए एक ही विभाग के नियत्रण मे आ जाती हैं। अतः विभाग के अधिकारी जैसा उचित समझते हैं वैसी आज्ञाए देते हैं। उन्हे अन्य विभागो से सहयोग प्राप्त करने मे समय नष्ट नही करना पडता। रक्षा विभाग यदि सडक बनवाना चाहता है तो अपने इंजीनियरो को आदेश देता है। यदि चिकित्सा का प्रबन्ध करना चाहता है तो उसके निज के डाक्टर हैं। यदि सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना चाहता है तो निज के मोटर और ड्राइवर हैं। रक्षा विभाग के अधिकारी इन सभी का आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो रक्षा विभाग के अधिकारियो को सडक बनवाने के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग से कहना पडता। चिकित्सा के लिए राज्य चिकित्सा विभाग से निवेदन करना पडता। आवागमन के लिए सरकारी एव गैर सरकारी अभिकर्त्ताओ की सहायता लेनी पडती। इससे काम मे देरी हो सकती थी।

सभी सस्थाओ मे चाहे वे सरकारी हो अथवा गैर सरकारी, प्रशासन के बडे-बडे विभाग उद्देश्य के आधार पर ही निर्मित होते है।

लाभ

१ इस प्रकार के सगठन से समन्वय की समस्या का बहुत हद तक हल निकल आता है। सारी सेवाएँ एक ही प्रशासक के अधीन रहती हैं। सेना मे कमाण्डर सडकें बनवा सकता है। अस्पताल मे चिकित्सा की व्यवस्था करवा सकता है। आवश्यकतानुसार सेनाओ को इधर-उधर भेज सकता है। यदि ये सारी सेवाएँ एक ही हाथ मे न होती तो समन्वय की समस्या हो जाती और कई बार समन्वय की कमी के कारण उद्देश्य की प्राप्ति न हो सकती।

२. उद्देश्य के आधार पर यदि कार्य विभाजन हो तो सारे लोग उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रियाशील होते हैं। उद्देश्य प्राप्ति के महत्व को समझते हैं।

३. सारा उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति के हाथो मे केन्द्रित रहता है। यदि कोई काम ठीक समय पर न हो तो उस एक व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। वह यह कह कर उत्तरदायित्व से छुटकारा नही पा सकता कि उसके पास साधन नहीं थे और साधनो की कमी के कारण वह उत्तरदायित्व निभाने मे असफल रहा।

४ इस प्रकार के संगठन मे काम जल्दी होता है। सारे साधन एक ही व्यक्ति

के हाथ मे होते हैं। यदि सेना मे डाक्टर न हों तो चिकित्सा विभाग मे सहयोग प्राप्त करने मे समय लगेगा। चिकित्सा विभाग किस हद तक सहयोग कर सकेगा यह दूसरा प्रश्न है। हो सकता है चिकित्सा विभाग किसी अन्य जगह व्यस्त हो और उसके पास इस काम के लिए डाक्टर आदि न हो।

हानि

इस प्रकार के संगठन मे दो कमियां आ जाती है :—

१ इस प्रकार के सगठन मे व्यक्ति अपने सगठन के बाहर की बात नही सोच पाता। उसका सारा दृष्टिकोण अपने विभाग और उसके कार्यक्रमों तक ही सीमित रहता है। उनकी हालत कुँए के मेढ़क जैसी हो जाती है जो कुँए को ही सारा विश्व मान लेता है। दूसरे सगठन और उनके कार्यक्रमों का ज्ञान न होने के कारण अपने संगठन और इसके प्रशासकीय कार्यों को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है।

२ इस प्रकार के सगठन मे अक्सर द्विरावृत्ति हो जाता है। रक्षा विभाग भी अस्पताल बनवाता है और रेलवे भी अस्पताल बनवाती है। दोनो के ही इंजीनियरिंग विभाग होते हैं। दोनो ही स्कूल बनवाते हैं। यदि दो विभाग अस्पताल बनवाते हैं तो हो सकता है कि दोनो अस्पतालो मे तकनीकी स्टाफ और प्रयोगशालाओ को पूरा-पूरा काम न मिले। यदि दोनो अस्पतालो मे 'एक्स-रे' प्लाट है तो प्लाट और रेडियोलोजिस्ट दोनो की सेवाओ का शायद पूरा-पूरा उपयोग न हो रहा हो।

प्रक्रिया

प्रक्रिया (Process) जब संगठन का आधार होता है तो ऐसे सारे लोग जो एक ही प्रक्रिया काम मे लाते हैं उन्हे एक विभाग मे संगठित किया जाता है। जैसे इंजीनियरिंग विभाग, डाक्टरी विभाग, टाईपिंग विभाग, स्टेनोग्राफी विभाग आदि। उद्देश्य जब आधार होता है तो सारे लोग जो एकही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मुख्य एव सहायक रूप से काम कर रहे हैं एक विभाग के अन्तर्गत लाये जाते हैं। प्रक्रिया का इसमे कोई ध्यान नही रखा जाता। उद्देश्य एक हो, प्रक्रिया चाहे भिन्न क्यो न हो, तो एकही विभाग मे सगठन किया जायगा। इससे ठीक उल्टी स्थिति होती है जब प्रक्रिया सगठन का आधार हो जाता है। इसमे प्रक्रिया की एकता होनी चाहिए। प्रक्रिया एक हो फिर चाहे उस प्रक्रिया का किसी भी उद्देश्य के लिए प्रयोग हो उसका एक विभाग होगा। सांख्यिकीविद् चाहे रक्षा विभाग मे हो अथवा स्वास्थ्य मे या अन्य किसी विभाग मे वह सांख्यिकी विभाग के अन्तर्गत आयेगा।

प्रक्रिया छोटी इकाइयो मे ही काम कर सकती है। यदि इकाइयाँ बडी हो तो प्रक्रिया संगठन का आधार नही बन सकती। भारत सरकार के सभी टाइपिस्टो को एक विभाग मे सगठित करना कदापि संभव नही। यदि इस प्रकार का प्रयत्न किया जाय तो सारे विभागो का काम ठप्प पड जायगा। प्रशासन के बड़े विभाग राष्ट्रीय अथवा राजकीय स्तर पर प्रक्रिया के आधार पर नही मिलते। इस तरह हम यह कह

सकते हैं कि यदि सगठन बड़े हो तो प्रक्रिया के आधार होने की सभावना कम होती है। इसके विपरीत जब इकाइयाँ छोटी हो तो प्रक्रिया के आधार बनने की संभावना बढती जाती है।

लाभ :

१. यदि प्रक्रिया के आधार पर विभागो का निर्माण हो तो तकनीकी प्रविधियो एवं प्रयोगशालाओ का अधिकतम उपयोग सभव है। अधिक मूल्यवान यत्र आदि की सुविधा भी सभव है। यदि डाक्टरी विभाग अलग हो तो वे अधिक अच्छे यत्र आदि रख सकते हैं। यदि इसे शिक्षा, गृह, वित्त, विदेशी विभाग के लिए अलग-अलग कर दिया जाय तो इन सभी मे प्रयोगशालाओ एव अन्य तकनीकी सुविधाओ तथा विशेषज्ञो की व्यवस्था करने में बहुत अधिक व्यय होगा। यदि एक डाक्टरी विभाग हो तो यह आसानी से कम ही व्यय मे किया जा सकता है।

२. इस प्रकार के सगठन मे द्विरावृत्ति की सभावना कम हो जाती है। यदि हर विभाग मे चिकित्सा इकाई अलग हो तो उनके लिए अलग-अलग प्रयोगशालाओ एव तकनीकी सुविधाओ तथा विशेषज्ञो की व्यवस्था करनी होगी। यदि प्रक्रिया के आधार पर सगठन हो तो ऐसा करने मे जो व्यय होगा वह बचाया जा सकेगा।

३. इससे प्रयोगशाला, सयन्त्र तथा अन्य तकनीकी सुविधाओ का अधिकतम उपयोग सभव है। यदि हर विभाग के चिकित्सा इकाई मे 'एक्स-रे' प्लाट हो तो यह सभावना है कि इन सभी का अधिकतम उपयोग न हो। प्रक्रिया के आधार पर सगठन होने से इनका अधिकतम उपयोग सभव है।

४. इससे तकनीकी क्षेत्र मे समन्वय बढता है। सारे तकनीकी व्यक्ति एक ही तकनीकी विशेषज्ञ की आधीनता मे काम करते है।

५ इससे तकनीकी कर्मचारियो के लिए सेवा के अवसर मिलने की सभावना बढती है। पदोन्नति आदि की सभावना काफी बढ जाती है। हमारे देश मे विश्वविद्यालय अच्छे डाक्टर और इजीनियर नही रख पाते क्योंकि विश्वविद्यालयो मे इजीनियर और डाक्टरो की पदोन्नति के अवसर बहुत कम होते हैं। यदि ये व्यक्ति राजकीय सेवा में रहें तो उन्हे आगे बढने का अधिक अवसर मिल सकेगा।

हानि .

१. इससे काम मे बडी असुविधा हो सकती है। यदि राज्य सचिवालय में टकन और सकेतलिपि के विभाग हो तो इससे विभिन्न विभागो को असुविधा होगी। चिकित्सा विभाग मे यदि सकेतलिपिकार की आवश्यकता है तो पहले सकेतलिपि विभाग को बताना होगा। वे अपनी प्राथमिकता मे इसे कहा स्थान दे यह निश्चित नहीं। हो सकता है सकेतलिपिकार तुरन्त ही आ जाए या तीन-चार घण्टे बाद आये। टकन विभाग मे भी इसी प्रकार प्राथमिकता का प्रश्न आयेगा।

२. इस प्रकार की व्यवस्था मे देरी बहुत अधिक होगी। सकेतलिपि और टकन

के विभाग अपनी प्राथमिकता के अनुसार काम करेंगे। यदि प्रत्येक विभाग में टंकलिपिक हों तो विभागीय अध्यक्ष अपनी प्राथमिकता के अनुसार निर्देश दे सकेंगे और इस प्रकार आवश्यक काम पहले निबटाया जा सकेगा।

३. यह भी आशंका है कि प्रक्रिया वाले विभाग अन्य विभागों से सहयोग न करें। यदि रक्षा विभाग को सूचना, जन-निर्माण, स्वास्थ्य, शिक्षा विभाग आदि पर अपने कार्यक्रमों के लिए निर्भर रहना पड़े तो रक्षा विभाग के कार्यक्रमों की सफलता अन्य विभागों के सहयोग पर निर्भर करेगी। अन्य विभाग कहां तक सहयोग करेंगे यह कहना कठिन है। सहयोग के अतिरिक्त प्रत्येक विभाग की कार्यक्रम सम्बन्धी अपनी निज की प्राथमिकता होगी, इससे भी असुविधा होगी। सम्भवतः स्वास्थ्य विभाग पहले किसी अन्य काम को करने के बाद रक्षा विभाग का काम करना चाहे तब इससे रक्षा विभाग के काम में कठिनाई हो सकती है।

४. राज्य एवं केन्द्र सरकारों का सारा काम प्रक्रिया के आधार पर संगठित नहीं किया जा सकता। इसमें टंकन एवं संकेतलिपि के विभाग संभव नहीं।

५. प्रक्रिया के आधार पर बनाये गए विभागों में तकनीकी विशेषज्ञ प्रजातान्त्रीय नियन्त्रणों की आधीनता में काम करने में अपना अपमान समझते हैं। उनमें अपनी तकनीकी विशेषज्ञता के कारण बड़े स्वाभिमान की भावना रहती है।

६. यदि इस व्यवस्था में किसी एक प्रक्रिया के विभाग में कोई गड़बड़ी हो जाय तो इस कारण सारे सरकार के काम में भी गड़बड़ी हो जाने का भय रहता है।

सेव्य-समुदाय :

सेव्य समुदाय के आधार पर संगठन बनाने का तात्पर्य यह हुआ कि सारे लोग जो एक ही सेव्य-समुदाय या क्लाइंटले (Clientele) के सेवा के लिए हैं उन्हें एक विभाग में संगठित किया जाय। ऐसे संगठन में यह ध्यान नहीं रखा जाता कि उनका उद्देश्य क्या है और उनकी प्रक्रिया क्या है। उनके उद्देश्य और उनकी प्रक्रियाएँ जो भी हों यदि वे एक ही सेव्य-समुदाय से सम्बन्धित हों तो वे एक ही विभाग के अंग होंगे।

सेव्य-समुदाय पर आधारित संगठन को कई बार अन्य नामों से भी पुकारा जाता है जैसे सामग्री (Commodity) या उपादन (Material)। ऐसे संगठनों की उपयोगिता उन दशाओं में होती है जबकि लोग प्रगतिशील न हों, जहांकि विशेषज्ञता की आवश्यकता न हो और जहां थोड़ी सी ही सेवाएँ प्रस्तुत की जाने को हैं। चूँकि राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर ये दशाएँ पूरी नहीं होतीं इसलिए इन स्तरों पर ऐसे संगठन अधिक नहीं मिलते। सेव्य-समुदाय के आधार पर बने संगठनों में श्रम-विभाग शिशु-अस्पताल, आदिवासी कल्याण विभाग कहे जा सकते हैं। इस प्रकार

के विभाग अपने सेव्य-समुदाय की सभी सुविधाओं का ध्यान रखते हैं जैसे आदिवासी कल्याण विभाग, आदिवासियों की शिक्षा, स्वास्थ्य, सामान्य सुविधाओं, आर्थिक कल्याण तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं आदि सबकी पूर्ति करता है। सामग्री के आधार पर सगठन अमेरिकी डिपार्टमेन्टल स्टोर मे मिलता है। ये डिपार्टमेंटल स्टोर्स बहुत बड़ी दूकान होती हैं जहाँ आपकी आवश्यकता की प्राय सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं। ऐसी दूकानो मे फर्नीचर, खिलौने, जूते, दवाइयाँ, जेवरात के अलग-अलग विभाग हैं। यदि आप जयपुर के सहकारी बाजार मे जाएँ वहाँ भी इसी प्रकार के विभाग यथा दवाइयाँ, प्रसाधन सामग्री, चाय, कॉफी, मिर्च-मसाले, दालें, पापड और अन्य खाने-पीने के सामान, वनस्पति, बिजली के सामान, कपड़ा आदि के अलग विभाग मिलते हैं। यह सेव्य समुदाय या सामग्री या उपादान के आधार पर बनाया गया सगठन है।

लाभ :

१ इस प्रकार के संगठन बड़े ही सुगम होते हैं। यदि आप सहकारी बाजार मे जाएँ तो कई दूकानो पर मिलने वाली चीजे एक ही दूकान पर खरीद सकते हैं। जब कोई व्यक्ति आदिवासी कल्याण विभाग मे आता है तो यह विभाग उसकी प्राय. समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने की स्थिति मे रहता है।

२ यह सगठन उन दशाओं मे अधिक लाभकारी सिद्ध होता है जहाँ लोग उतने प्रगतिशील नहीं कि कई सरकारी विभागो से सम्पर्क स्थापित कर सकें। अनपढ ग्रामीण लोग विभागो के बीच कामो के बँटवारे को नही समझ पाते हैं।

३. चूँकि प्रति बार एक ही सेव्य-समुदाय अथवा सामग्री के सम्पर्क मे विभाग आता है इसलिए उस सामग्री या सेव्य-समुदाय की समस्याओं को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता है। ऐसे विभाग अपने-अपने क्षेत्रो मे विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेते है।

हानि :

१. विशेषज्ञता को यह सरलपन के कारण उचित स्थान नही देता। सारा काम एक ही कार्यालय मे हो जाय यह तभी सम्भव है जब प्रशासन बहुत ही कम काम करे और उसमे भी किसी भी प्रकार की विशेषज्ञता की आवश्यकता नही पडे।

२ प्रशासन का सारा काम सेव्य-समुदाय के आधार पर सगठित नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा किया जाए तो एक ही व्यक्ति कई वर्गों मे सम्मिलित हो जाएगा।

३ सेव्य-समुदाय के आधार पर बने सगठन मे राजनैतिक दबाव बहुत अधिक बढ जाता है। ये सगठन अधिकाधिक अनुग्रह पाने की चेष्टा करने लगते हैं। इनका निज का निहित स्वार्थ पैदा हो जाता है।

क्षेत्र :

क्षेत्र के आधार पर बनाये गए सगठनो मे ऐसे सभी लोगो को एक ही विभाग

मे लाया जाता है जो एक ही क्षेत्र में काम करते हैं। जिला प्रशासन क्षेत्र के आधार पर संगठन का उदाहरण है। ऐसे सगठन में उन सभी लोगों को जोकि किसी एक क्षेत्र विशेष मे काम करते हैं चाहे उनका उद्देश्य जो भी हो, प्रक्रिया जो भी हो, सेव्य-समुदाय जो भी हो, एक सगठन मे सगठित किया जाता है। यदि क्षेत्र आधार होता है तो उद्देश्य, प्रक्रिया एव सेव्य-समुदाय का प्रश्न ही नही उठता। औपनिवेशिक प्रशासन मे इसके अनेक उदाहरण मिलते है। भारत सचिव और उपनिवेश सचिव इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं। भारत मे राज्य प्रशासन, प्रभागीय प्रशासन, जिला प्रशासन, उप-जिला प्रशासन, तहसील, पचायत समिति, पचायत आदि क्षेत्र पर आधारित सगठनो के ही नमूने हैं। प्रशासन जनता तक पहुँच सके इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रशासन को छोटे-छोटे क्षेत्रीय आधार पर सगठित किया जाय। पुलिस विभाग ने जनता की सेवा के लिए सारे जिले को थानो और चौकियों मे बाँट दिया है। दिल्ली मे अंशदायी चिकित्सा सेवा के लिए शहर को विभिन्न क्षेत्रो मे बाँट दिया गया है।

लाभ :

१ यदि किसी क्षेत्र विशेष का विकास करना हो तो उसके लिए इस प्रकार का सगठन उपयोगी होता है। यदि जैसलमेर क्षेत्र का विकास करना हो तो उसके लिए एक ऐसा सगठन जो जैसलमेर क्षेत्र के आधार पर सगठित किया गया है अधिक उपयोगी होगा।

२. ऐसे सगठनो में समन्वय मे सुविधा होती है। जिला प्रशासन मे जिलाधीश जिला स्थित सभी अधिकारियो एव कर्मचारियो के काम का समन्वय करता है। यह इसलिए सम्भव होता है कि सारे क्षेत्र की सेवाएँ एक ही अधिकारी के नियन्त्रण मे काम करती हैं।

३. ऐसे सगठनो से यह भी सुविधा होती है कि कार्यक्रम और योजनाओ को क्षेत्र की आवश्यकताओ के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

४. क्षेत्रीय सगठनो के कर्मचारी स्थानीय परिस्थितियो से अच्छी तरह परिचित होते है। अत. कार्यक्रम को जनता की सुविधा की दृष्टि से चलाते हैं। इससे सरकार और जनता मे अच्छा सम्पर्क स्थापित होता है।

हानि :

१. क्षेत्र के आधार पर सगठित इकाइयो के कारण उन क्षेत्रो मे भी प्रशासनिक एकरूपता नही आ सकती जहाँ राष्ट्रीय हित मे इसकी बडी आवश्यकता होती है।

२. ऐसे सगठनो मे प्रबन्धक स्थानीय भावनाओ से ऊपर उठ कर काम नही कर पाता है।

३. ऐसे सगठनो के कारण तकनीकी एव विशेषज्ञ सेवाओ का अधिकतम

उपयोग सम्भव नहीं हो पाता । हर सगठन मे तकनीकी एव विशेषज्ञ सेवाएँ सगठित की जाती है । उनके पास प्राय: काफी काम नहीं होता । उनका बहुत सारा समय बेकार जाता है ।

४ ऐसे सगठनो मे राजनैतिक दबाव अन्य सगठनो की अपेक्षा अधिक होता है । स्थानीय नेता ऐसे सगठनो को अपने प्रभाव के क्षेत्र मे ले लेते हैं और सुविधाओ का मनमाना उपयोग करते हैं ।

आधार का चुनाव

यह कहना शायद उचित न हो कि सगठन का कोई एक आधार सबसे अच्छा है और सभी परिस्थितियो मे एक ही आधार उपयोगी होगा । सभी आधारो के अपने-अपने गुण और दोष है । आधार का चुनाव तो परिस्थितियो पर निर्भर करता है कि विशिष्ट परिस्थिति मे कौन-सा आधार सर्वश्रेष्ठ होगा । राजकीय और राष्ट्रीय स्तर पर विभाग उद्देश्य के आधार पर बनाये जाने चाहिए । सीमा की रक्षा के लिए क्षेत्र के आधार पर सगठन होना चाहिए ।

यदि किसी बडे विभाग को लिया जाय तो हम देखेंगे कि सगठन के विभिन्न स्तरो पर भिन्न-भिन्न आधार काम मे लाए जाते हैं । डाकतार का विभाग उद्देश्य के आधार पर है । डाकतार विभाग ने सारे देश को सर्किलो मे बाट रक्खा है । सर्किल के भीतर पोस्ट आफिस, तार, टेलीफोन, रेडियो के अलग-अलग भाग होते है यह सेव्य समुदाय के आधार पर है । रक्षा विभाग उद्देश्य के आधार पर सगठित किया गया है । विभिन्न कमाण्ड यथा पूर्वी कमाण्ड, दक्षिणी कमाण्ड, उत्तरी कमाण्ड आदि क्षेत्र के आधार पर है । कमाण्ड मे रसद के लिए डाक्टरी सामान, बन्दूके गोला-बारूद, मशीनों के पुर्जे बिल्डिंग के सामान की अलग अलग इकाई होनी है । कोई भी समस्त विभाग ऊपर से नीचे तक एक ही आधार पर बनाया जाय ऐसी माग समुचित नहीं कही जा सकती । विभिन्न परिस्थितियो मे आवश्यकतानुसार आधार का चुनाव किया जाता है ।

विशेष अध्ययन के लिए

१ एम० पी० शर्मा लोक-प्रशासन सिद्धान्त एव व्यवहार
२ आर्विक : दी एलिमेंट्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन
३ अवस्थी एव महेश्वरी लोक-प्रशासन
४ पी० सरन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

९

मुख्य कार्यपाल

मुख्य कार्यपाल प्रशासकीय इकाई का शीर्ष बिन्दु होता है। सरकारी एवं गैरसरकारी दोनो सगठनो मे यही बात है। प्रशासकीय सगठन कोण-स्तूपाकार (पिरामिड) की भाँति होते हैं। इनका आधार बडा होता है और ऊपर की ओर मे पतले होते जाते हैं। यहा तक कि वह स्थिति आ जाती है जबकि प्रशासन की सारी जिम्मेवारी एक ही व्यक्ति मे निहित हो जाती है। हमारे देश मे राष्ट्रीय प्रशासन मे राष्ट्रपति और राज्य के प्रशासन मे राज्यपाल की ऐसी ही स्थिति है। इसी प्रकार गैरसरकारी प्रशासन मे कम्पनी को ठीक तरह से चलाने की जिम्मेवारी प्रबन्ध निदेशक, सचिव या मुख्य व्यवस्थापक की होती है।

अब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या हमारे देश मे राष्ट्रपति एवं राज्यपाल वास्तव मे मुख्य कार्यपाल है। ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे दो कार्यपाल होते हैं। एक औपचारिक एव दूसरा अनौपचारिक। सवैधानिक दृष्टि से प्रशासन का सारा काम औपचारिक प्रधान के नाम से किया जाता है, चाहे औपचारिक प्रधान ने उन फाइलो को देखा भी न हो। हमारे सविधान मे इस बात की विशेष रूप से व्यवस्था की गई है कि "भारत सरकार के सारे कार्य इस प्रकार किये जाय कि सारे कार्य राष्ट्रपति के नाम से ही हो।"[1] राष्ट्र का सवैधानिक प्रधान होने के नाते व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रपति को कोई कार्यकारिणी शक्ति प्राप्त नही है। पर कार्यपालिका के सभी आदेश इसी के नाम पर निकाले जाने चाहिएँ। इसी प्रकार की व्यवस्था राज्यो के सदर्भ मे राज्यपाल के लिए भी है।[2] कार्यपालिका की वास्तविक शक्तिया तो अनौपचारिक प्रधानो यथा प्रधानमत्री एव मुख्यमत्रियो के हाथ मे होती है। ये दोनो ही ससद एव विधान मण्डल के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी रह कर कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियो का उपयोग करते हैं।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे इसके विपरीत औपचारिक तथा *अनौपचारिक प्रधान की शक्तिया एक ही व्यक्ति मे निहित होती हैं जैसे अमेरिका का* राष्ट्रपति। वहा पर प्रशासनिक आज्ञायें उसी के नाम से प्रकाशित की जाती हैं और वास्तव मे ये उसी के निर्णय होते हैं। यद्यपि उसकी सहायता के लिए दस सदस्यो

---

१. भारत का सविधान धारा ७७

२. वही।

की कैबिनेट होती है। पर इसकी स्थिति ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो से भिन्न होती है। कैबिनेट की एकमत सलाह के विपरीत भी राष्ट्रपति निर्णय लेने को स्वतन्त्र है। अमेरिकन कैबिनेट राष्ट्रपति के अधीनस्थ पदाधिकारियो की सस्था है, न कि उसके समकक्ष सहयोगियो की।

मुख्य कार्यपाल के कार्य

१. प्रशासनिक नीतियो का निर्णय —मुख्य कार्यपाल यह काम दो प्रकार से करता है। पहला, पालियामेंट या विधानमण्डल द्वारा बनाये गए कानूनो की अधि-सीमा मे नियम उपनियम आदि बनाता है। दूसरे, पालियामेंट विधानमण्डल के विचारार्थ विधेयक आदि प्रस्तुत करवाता है। ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे तो पालियामेंट का प्राय: ९/१० समय सरकार द्वारा प्रस्तुत विधेयको के विचार मे ही बीत जाता है।

२ मुख्य कार्यपाल प्रशासनिक सगठन के ढाँचे के निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है। नये विभाग बनाने चाहिएँ या नही, पुराने विभागो का पुनर्गठन कैसा हो, यह सभी बातें मुख्य कार्यपाल की ही जिम्मेवारी है। परिस्थितियो के अनुसार सरकार की जिम्मेवारियाँ बदलती रहती हैं। उनके लिए कई बार नये सगठन की आवश्यकता पडती है। अकाल पीडितो की सहायता के लिए एक विशेष सगठन अकाल आयुक्त की आवश्यकता होगी। यदि प्रशासन के विरुद्ध जनता की शिकायतें हो तो उनको दूर करने के लिए लोकपाल और लोक-आयुक्त जैसे सगठनो की आवश्यकता होती है।

३. नियुक्तियो आदि का अधिकार भी मुख्य कार्यपाल को ही होता है। यद्यपि आजकल लोक सेवा के प्रभाव से अधिकतर नियुक्तियाँ लोक सेवा आयोग की सस्तुति पर ही होती हैं, पर औपचारिक रूप से नियुक्ति का अधिकार मुख्य कार्यपाल को ही होता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक नियुक्तियाँ मुख्य कार्यपाल ही के हाथ मे होती हैं। भारत मे राज्यपाल, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीश, राजदूतो, महा-लेखापाल एव लेखा जाच अधिकारी आदि की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। नियुक्ति करने वाले अधिकारी को पदच्युत करने का अधिकार भी उसे होता है। अत यह कहा जा सकता है कि कार्मिक वर्ग के प्रशासन मे मुख्य कार्यपाल का बहुत ही अधिक हाथ रहता है।

४ प्रशासन को ढग से चलाने के लिए मुख्य कार्यपाल निर्देश, आदेश, घोषणा आदि करता है। चौथे आम चुनाव के बाद जब राजस्थान मे राष्ट्रपति शासन की स्थापना हुई तो यह राष्ट्रपति की घोषणा के द्वारा की गई। जब बाद मे स्थिति सामान्य हो गई तो एक दूसरी घोषणा द्वारा राष्ट्रपति शासन को वापस ले लिया गया। निर्देश एव आदेश से सरकारी कर्मचारियो के कामो मे एक रूपता आती है।

५ मुख्य कार्यपाल समय-समय पर जाँच आदि की आज्ञाएँ देता है। जयपुर मे

गोलीकाण्ड के बाद सरकार ने विभागीय जांच का आदेश दिया था। बाद में राज्यपाल ने न्यायिक जाच की आज्ञा दी। जाच आदि की आवश्यकता तब पडती है जब मुख्य कार्यपाल यह जानना चाहे कि उसके अधीनस्थ कर्मचारी अपनी शक्तियो का उचित रूप से उपयोग तो कर रहे हैं।

६. ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो में मुख्य कार्यपाल का यह भी कर्त्तव्य होता है कि वह वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पहले आगामी वर्ष के लिए आय एव व्यय के अनुमानित आंकडे तैयार करवाये और वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पहले इन्हे ससद के सम्मुख प्रस्तुत करे। वित्तीय वर्ष की समाप्ति के उपरान्त बिना ससद की सहमति कर वसूल करना कानूनी दृष्टि से अनुचित है।

मुख्य कार्यपाल का यह भी कर्त्तव्य होता है कि प्रशासन के विभिन्न विभागो एव मत्रालयो मे समन्वय बनाए रखे। कई बार ऐसा हो सकता है कि दो विभागों में आपस में मतभेद हो जाय, या एक ही काम दो विभागो द्वारा किया जा रहा हो। प्रशासकीय कार्यों मे तालमेल बनाये रखना बडा जरूरी है। कई बार तो तालमेल के इस कार्य को प्रशासन का हृदय कहते है। मान लीजिए सीमेंट और भवन-निर्माण की सामग्रियो की कमी है। सरकार का सम्भरण विभाग (Supply Dept.) इनकी मागो को कम करने का प्रयत्न कर रहा हो। दूसरी ओर, वित्त विभाग भवन निर्माण के लिए लोगो को ऋण दे रहा हो, जिससे इन सामग्रियो की माग पर सीधा असर पडता है। मुख्य कार्यपाल का यह कर्त्तव्य होता है कि वह यह देखे कि प्रशासन के विभिन्न विभाग कही विरोधी नीतियाँ तो नही कार्यान्वित कर रहे हैं।

मुख्य कार्यपाल को वे सब अधिकार एव शक्तियाँ दी जाती हैं जोकि गैर-सरकारी प्रशासकीय इकाइयो मे मुख्य व्यवस्थापक को दी जाती हैं। सारे कर्मचारी उसके आधीन होते हैं और उन्हे उसकी आज्ञाएँ माननी होती हैं। उनके ऊपर नियत्रण का अधिकार मुख्य कार्यपाल को होता है। इस प्रकार की व्यवस्था होती है कि मुख्य कार्यपाल आवश्यकतानुसार उन्हे आदेश एव निर्देश दे सके।

उसे सिद्धान्त एव कार्यरूप मे प्रशासन का प्रधान होना चाहिए। ससद या विधानमण्डलो को प्रशासकीय विभागो के प्रधानो से सीधा सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा न करके मुख्य कार्यपाल द्वारा ही प्रशासकीय नियत्रण का कार्य करना चाहिए। इसी प्रकार की स्थिति निजी प्रशासन के क्षेत्र मे भी मिलती है। आपका कालेज विश्व-विद्यालय द्वारा सीधे चलाया जाता है। विश्व-विद्यालय के प्रमुख कार्यपाल कुलपति महोदय हैं। कालेज को सुचारु रूप से चलाने के लिए निदेशक एव उप-निदेशक की नियुक्ति की गई है। उनके नीचे स्थानीय अध्यक्ष और व्याख्याता होते है। चूँकि कालेज चलने की सारी जिम्मेवारी निदेशक पर है इसलिए सिंडिकेट और कुलपति महोदय को जो कुछ भी पूछ-ताछ करना हो, वह निदेशक महोदय से ही करनी चाहिए। स्थानीय अध्यक्ष और व्याख्यातामो से सम्पर्क स्थापित करना अनुचित होगा।

नीति निर्धारित करने वाली सत्ता को उद्देश्य बता देना चाहिए। सरकारी गैर-सरकारी प्रशासन में यह कानून बना कर किया जाता है। प्रशासन में सचालक-मण्डल यह काम करता है। उद्देश्य के साथ ही उन्हें प्रमुख प्रशासन पद्धति भी बता दी जानी चाहिए ताकि उन्हें अपनी अधिकार सीमा का ज्ञान हो जाय। उसके बाद उसे स्वतत्र रूप से काम करने का अवसर दिया जाना चाहिए। उसके स्वविवेक में बार-बार का हस्तक्षेप अनुचित है। यह बात दूसरी है कि उसका कार्य सतोषप्रद न हो तो उसे सवैधानिक या कानूनी तरीके से हटा दिया जाए।

ससदात्मक शासन प्रणाली वाले देशो मे बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री। मुख्यमत्री स्वीकार करने के बाद प्रशासन का सारा काम उसी के हाथ में छोड़ दिया जाता है। मन्त्रि-मण्डल की नियुक्ति, विभागो का बँटवारा, प्रमुख सचिव आदि की नियुक्ति सभी प्रधानमत्री/मुख्यमत्री के हाथ में होती है। जो भी नियुक्तिया लोक सेवा के नियमो के अनुसार नही होती हैं वे मुख्य कार्यपाल अपने स्वविवेक से करता है। ससद समय-समय पर प्रश्न पूछ कर, कामरोको प्रस्ताव पारित कर बहिर्गमन, निंदा प्रस्ताव, आदि के द्वारा प्रशासन पर कुछ नियत्रण रखती है। प्रशासन की सारी जिम्मेदारी प्रधानमत्री और उसके साथियों पर ही होती है। यदि प्रधानमत्री और ससद मे अनबन हो जाए तो या तो ससद अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मन्त्रि-मण्डल को हटा देती है, या मत्रिमण्डल त्यागपत्र दे देता है। प्रधानमत्री चाहे तो विधान मण्डल को भग करवा कर नये चुनाव भी करवा सकता है। चुनाव के बाद भी यदि उसका बहुमत नही आता तो वह त्यागपत्र दे देता है। ऐसी दशा मे ससद नया नेता चुन लेती है। ससदात्मक शासन प्रणाली इस प्रकार की व्यवस्था करती है कि आवश्यकता पड़ने पर नेता तो बदल लिया जाय पर प्रशासन का काम ससद या ससद की समिति को नही दिया जाता।

यदि ससद मुख्य कार्यपाल को प्रशासनिक शक्तियाँ नही देगी तो एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो जायगी जहाँ प्रशासकीय विभागो के अधिकारी व्यवस्थापिका के अभिकर्त्ता के रूप मे काम करने लगेंगे। मुख्य कार्यपाल उन पर नियत्रण नहीं रख सकेगा। सैद्धान्तिक रूप से चाहे वे भले ही मुख्य कार्यपाल के नीचे हों, पर वास्तविक रूप मे वे स्वतत्र होंगे। ऐसी दशा मे जब ससद प्रशासनिक शक्ति अपने हाथो मे ही रखना चाहती है, तो अनेक मण्डल, आयोग आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। कई बार मण्डल एव आयोग आदि के सदस्यो की नियुक्ति मुख्य कार्यपाल द्वारा ही होती है। पर यह केवल औपचारिक व्यवस्थामात्र है। कार्यपाल इन्हें किसी भी प्रकार नियत्रण मे नही रख सकता।

ऐसी स्थिति मे प्रशासन की दशा उस कम्पनी सी हो जाती है जिसमे कोई मुख्य-व्यवस्थापक न हो, न तो प्रशासनिक नियत्रण हो और न कोई कार्यक्रम हो। सारा काम बिना किसी समन्वय के किया जा रहा हो। मुख्य कार्यपाल को चाहे सविधान द्वारा इन कामो का उत्तरदायित्व दिया भी गया हो, पर उसे ऐसी प्रशासनिक परिस्थि-

तियों मे रखा जाता है कि वह अपना उत्तरदायित्व निभाने मे सर्वथा असमर्थ रहता है। प्रशासन की ऐसी व्यवस्था जहा विधान मण्डल स्वयं ही समिति, आयोग, बोर्ड द्वारा प्रशासन चलाने की व्यवस्था करती है, सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से दोषपूर्ण है।

मुख्य कार्यपाल प्रशासन सम्बन्धी इतने उत्तरदायित्वो को अकेले नही निभा सकता। अत: उसकी सहायता के लिए अनेक परामर्शदाता प्रतिष्ठानो की नियुक्ति की जाती है। ये मुख्य कार्यपाल को निर्णय लेने मे सहायता पहुँचाते हैं। सूचनाएं एकत्रित करते हैं और मुख्य कार्यपाल की ओर से यह देखते हैं कि आज्ञाओ एव निर्देशनो का उचित रूप मे पालन हो रहा है या नही। अमेरिका मे राष्ट्रपति की सहायता के लिए एक्जीक्यूटिव आफिस आफ दी प्रेसिडेंट (Executive office of the President) है। भारत मे प्रधानमन्त्री और कैबिनेट की सहायता के लिए कैबिनेट सचिवालय है। सचिवालय का प्रधान एक सचिव होता है। सचिवालय मुख्यत: चार भागो मे बँटा है।

१ मुख्य सचिवालय
२ ओ० एंड एम० प्रभाग
३ सैनिक कक्ष
४. आर्थिक कक्ष

इनके अतिरिक्त केन्द्रीय सांख्यिकीय विभाग सलग्न कार्यालय के रूप मे काम करता है।

योजना आयोग भी परामर्शदाता प्रतिष्ठान के रूप मे ही काम करता है। इसका उद्देश्य भारत सरकार को योजना एव विकास के क्षेत्र मे परामर्श देना है। इसकी स्थापना मार्च १९५० मे की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य देश की तीव्र गति से आर्थिक प्रगति के लिए योजना बनाना है। इसके सचिवालय का प्रधान एक सचिव होता है। आयुक्त तीन प्रमुख भागो मे बँटा है:

१. कार्यक्रम परामर्शदाता मण्डल
२ सामान्य सचिवालय
३ तकनीकी प्रभाग

इसमे २१ खण्ड पीठ हैं।

इनके अतिरिक्त योजना आयोग मे कई परामर्शदात्री समितियां भी हैं। जैसे राष्ट्रीय विकास परिषद, आयोजना निर्माण समिति, सिंचाई एव विद्युत योजनाओ की परामर्शदात्री समिति, जन-सहयोग के लिए समन्वय समिति इत्यादि।

केन्द्रीय सचिवालय भी परामर्शदाता प्रतिष्ठान ही है। यह अनेक मन्त्रालयो मे विभक्त है। मन्त्रालय अपने विभाग के मंत्रियो को प्रशासनिक मामलो मे परामर्श देता है। यह देखता है कि विभागीय प्रशासन नियमो के अनुसार चलता है। मंत्रियो के लिए सूचनाएं एकत्रित करता है, उन्हे निर्णय लेने मे सहायता पहुँचाता है तथा उन्हे

यह बताता है कि उनकी आज्ञाओं का उचित ढंग से पालन हो रहा है या नहीं। अनेक मंत्रालयों में यथा, विधि मंत्रालय, सिंचाई एवं विद्युत मंत्रालय, सामुदायिक विकास मंत्रालय, में केवल सचिवालय ही हैं। सहायक शृंखलाएँ नहीं हैं। इसीलिए डीन एपल्बी (Dean Appleby) ने कहा है कि कुछ प्रमुख विभागों को छोड़ कर भारत की *केन्द्रीय सरकार में केवल परामर्शदाता प्रतिष्ठान ही हैं। सहायक शृंखलाएँ* नहीं हैं।

मुख्य कार्यपाल का प्रशासन में वास्तविक महत्व समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके नेतृत्व के कार्य को अच्छी तरह समझा जाय। मुख्य कार्यपाल स्वयं क्या करता है या क्या नहीं करता है यह तो गौण वस्तु है। यह अपेक्षा भी नहीं की जाती कि मुख्य कार्यपाल सारा काम स्वयं करे। मुख्य कार्यपाल को तो यह देखना है कि प्रशासन का सारा काम अच्छी तरह सुचारु रूप से चले। उसे ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना है कि जिसमें प्रत्येक अपना काम अच्छी तरह कर सके जिससे उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। मुख्य कार्यपाल अपने उद्देश्य एवं भावनाओं से अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को इस प्रकार प्रभावित करता है कि वे अपने पारस्परिक विभेदों को भुलाकर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अग्रसर हों। यह सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकारों की प्रशासकीय इकाइयों में लागू होता है।

मुख्य कार्यपाल के लिए अपने सहयोगियों के बीच सत्ता का प्रतिनिधान करना बड़ा आवश्यक है। आज के समय में सरकारी एवं गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में प्रशासकीय इकाइयाँ इतनी बड़ी हो गई हैं कि बिना प्रतिनिधान के काम चल ही नहीं सकता। यदि प्रतिनिधान नहीं किया गया तो सारे प्रशासन का भार मुख्य कार्यपाल पर आ पड़ेगा और मुख्य कार्यपाल इस कार्यभार में दब कर रह जाएगा। यही कारण है कि कुछ देशों में प्रधानमन्त्री कोई भी विभाग अपने पास नहीं रखता। वह सामान्य रूप से सारे प्रशासन की देखभाल करता है और सहयोगियों के बीच समन्वय बनाए रखता है। यही बात गैर-सरकारी प्रशासन में भी लागू होती है। मुख्य व्यवस्थापक कई बार कोई विभाग अपने पास नहीं रखते। उनका सारा समय समन्वय और भविष्य में कम्पनी के विकास की योजनाएँ बनाने में बीतता है। वे अपने प्रमुख सहयोगियों से मिलते हैं, यदि प्रशासन में कोई समस्या आ गई हो तो उसके निदान का प्रयत्न करते हैं और यह देखते हैं कि उनके सहयोगी योजनाओं को उनकी इच्छानुसार कार्यान्वित कर रहे हैं।

आज का युग प्रजातन्त्रीय युग है। आज पुरानी मान्यताएँ तेजी से बदल रही हैं। मुख्य कार्यपाल चाहे वह सरकारी क्षेत्र में हो, अथवा गैर-सरकारी इन बदलती हुई परिस्थितियों से अछूता नहीं रह सकता। प्रशासकीय नेतृत्व भी प्रजातन्त्रीय होना चाहिए। *प्रजातन्त्रीय प्रशासकीय नेतृत्व का तात्पर्य यह है कि मुख्य कार्यपाल अपने* सन्निकट अधीनस्थ अधिकारियों की बातें सुनेगा। उनसे अपने विचारों को मनवाने के लिए तर्क और अनुनय का उपयोग करेगा। भय और आज्ञा का प्रयोग प्रजातन्त्रीय

प्रशासकीय नेतृत्व मे कम-से-कम होना चाहिए। इनका उपयोग तभी ठीक कहा जा सकता है जब अन्य सभी उपाय असफल रहे हों और भय एव आज्ञा के अतिरिक्त दूसरा कोई भी रास्ता न बच रहा हो।

मुख्य कार्यपाल के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियो को इस बात से आश्वस्त कराये कि वह उन पर विश्वास रखता है। यदि वे कानून की सीमा मे काम करें, और स्वविवेक का निजी अथवा राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपयोग नही करे तो मुख्य कार्यपाल उनका साथ देगा। आज भारतीय प्रशासन मे प्राय. सभी अधिकारियो के सामने यही समस्या मुँह बाये खड़ी है। क्या ठीक ढग से काम करने के बाद भी उनके अधिकारी उनका साथ देंगे ? अंग्रेजी शासन मे हर अधिकारी को यह विश्वास था कि यदि वह अपने अधिकार सीमा के भीतर स्वविवेक का बिना किसी भय अथवा स्वार्थ के उपयोग करेगा तो उसके उच्च-अधिकारी उसका साथ देंगे। अत अधिकारी निर्णय लेने और उनको कार्यान्वित करने मे अपनी योग्यता भर पीछे नही हटते थे। पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद परिस्थितियो के बदलने के कारण यह आश्वासन नही रह सका। फलत. हम देखते हैं कि अधिकारी-गण निर्णय लेने मे हिचकते हैं, और जहा तक सम्भव हो, किसी न किसी बहाने निर्णय को टालते रहते है। निर्णय के बाद भी उनको कार्यान्वित करने मे उत्साहशील नही दिखाई पड़ते। अत मुख्य कार्यपाल का यह कर्तव्य है कि वह अधिकारियो को आश्वस्त कराये कि उन्हे अपना काम नियमो के अनुसार करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर प्रशासन और मुख्य कार्यपाल उनका साथ देंगे। जबतक अधिकारियो को इस प्रकार का आश्वासन नही मिलता प्रशासन की कुशलता नहीं बढ़ाई जा सकती।

विशेष अध्ययन के लिए

१. विलोबी — प्रिंसिपिल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
२. डाइमक एवं डाइमक : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
३. वाइट . इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
४. एम० पी ० शर्मा . लोक-प्रशासन सिद्धान्त एव व्यवहार
५ अवस्थी एवं माहेश्वरी लोक-प्रशासन

१०

प्रशासकीय शाखा का संगठन

सार्वजनिक कार्यों की अधिकतम कार्यकुशलता और मितव्ययता पूर्ण प्रशासन के लिए जिन सेवाओं की आवश्यकता है उनकी संगठन योजना का आधारभूत रूप क्या हो, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। दूसरे रूप मे इस प्रश्न का आशय उन विभिन्न सेवाओं की संख्या एवं रूप निर्धारण करने तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों से है जो कि निर्धारित कार्य को पूर्ण करने के लिए स्थापित की जायेगी। यह निश्चित किये बिना कि संगठन का आधारभूत रूप क्या है। प्रशासकीय प्रणाली के प्रारूप के सम्बन्ध मे निर्णय नहीं हो सकता। इस दृष्टिकोण से समस्या को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सरकार की प्रशासकीय प्रणाली एक एकीकृत प्रशासकीय यन्त्र है। इसका अभिप्राय यह है कि विभिन्न प्रशासकीय सेवाएँ एक-दूसरी से अलग-अलग या स्वतन्त्र इकाइयों के रूप मे दिखाई न देकर एक सामान्य संगठन के कार्यवाहक अंग दिखाई दें। इनमे से प्रत्येक का अपना भिन्न क्षेत्र होते हुए भी सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वे दूसरी सेवाओं से सौहार्दपूर्ण ढंग से कार्य करें।

जिस प्रकार किसी मोटर कार मे मशीन, गाड़ी का मुख्य भाग रबर के हिस्से, बिजली की फिटिंग आदि अलग-अलग चीजें हैं, पर गाड़ी के लिए ये सभी एक होकर काम करते हैं तभी गाड़ी चलती है, इसी प्रकार चाहे विभिन्न प्रशासकीय सेवाएँ अलग-अलग हो पर प्रशासकीय मशीन को उचित रूप से चलाने के लिए इनका एक होकर एक व्यवस्थित तथा समन्वित रूप से काम करना जरूरी होता है। सरकारों की प्रशासकीय शाखाओं की जाँच से यह पता चलता है कि उनका जन्म दो भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित है उनको (१) स्वतन्त्र या असम्बन्धित प्रणाली और (२) एकीकृत या विलयित या समाकलित या विभागीय प्रणाली कहा जा सकता है।

स्वतन्त्र प्रणाली या असम्बन्धित प्रणाली

इस प्रणाली मे प्रत्येक सेवा एक स्वतन्त्र इकाई समझी जाती है जिसका दूसरी सेवाओं से या तो कोई सम्बन्ध नहीं रहता या सम्बन्ध रहता भी है तो केवल औपचारिक मात्र। इसके अन्तर्गत दी जाने वाली सेवा से मुख्य कार्यपाल या व्यवस्थापिका—जिसके द्वारा उसका जन्म हुआ था और जिसके द्वारा उसका नियन्त्रण निर्धारण किया जा रहा है, का सीधा सम्पर्क स्थापित रहता है।

एकीकृत या विलयित या समाकलित या विभागीय प्रणाली

इस प्रणाली मे उन सभी सेवाओं को जिनका कार्य एक सामान्य क्षेत्र मे

जाता है एक समष्टि में इकट्ठा करने का प्रयत्न किया जाता है। इनका परस्पर सहयोग एवं निकट सम्बन्ध रहे इसलिए इन्हे विभागो मे बाट दिया जाता है जिनका एक मुख्य अधिकारी होता है जिसे उन सभी सेवाओ का साधारण ज्ञान होता है। उसका यह कर्तव्य होता है कि सभी समष्टिगत सेवाओ को सौहार्दपूर्ण ढग से आम उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कार्य करने को प्रेरित करे। इस प्रणाली के अन्तर्गत सत्ता का सूत्र विभिन्न सेवाओ से विभागो द्वारा, जिनकी वे अधीनस्थ इकाइयां हैं, मुख्य कार्यपाल या व्यवस्थापिका जिसके अन्तर्गत सभी विभाग आते हैं, की ओर प्रवाहित होता है।

एकीकृत या विलयित प्रणाली क्यो ?

प्रत्येक प्रणाली के अपने अलग-अलग लाभ हैं। परन्तु किसी भिन्न दृष्टिकोण से दूसरी प्रणाली अधिक उचित प्रतीत होने लगती है। इसके लाभ निम्नलिखित हैं :—

१. इस प्रणाली द्वारा सरकार की समस्या साधारण रूप से आसान हो जाती है। आजकल सरकार विभिन्न प्रकार की अधिक से अधिक सेवाएं प्रारम्भ करती जा रही है। ऐसी दशा में साधारण जनता का तो क्या कहना, जो लोग इन सेवाओ को पूर्ण करने के लिए उत्तरदायी हैं, उन्हे भी इनके जटिल स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नही है। ऐसी स्थिति मे जो कुछ भी समस्या की जटिलता को कम कर सके वह अच्छा होगा। विशेषतया यह प्रणाली अधिक ज्ञानप्रद विधान बनाना सम्भव करती है और जनता द्वारा इन सेवाओ के प्रभावशाली उपयोग को भी सम्भव बनाती है।

२. इस प्रणाली द्वारा विभिन्न सरकारी विभाग अपने कार्यक्रमो को अधिक अच्छी तरह तैयार कर सकते हैं तथा उन्हे सुचारु रूप से पूरा कर सकते हैं।

३. इस प्रणाली मे मुख्य कार्यपाल से सीधा सम्पर्क रखने वाले तात्कालिक अधीनस्थ कर्मचारियो की सख्या कम हो जाती है। इससे नियन्त्रण अधिक कारगर रूप से रखा जा सकता है तथा मुख्य कार्यपाल को प्रशासन की विभिन्न समस्याओं पर सोच-विचार करने के लिए काफी समय मिलता है। फलत: एक प्रभावशाली शिखरस्थ प्रशासन व नियन्त्रण की व्यवस्था का विकास होता है।

४. यह प्रणाली अधिकार एव उत्तरदायित्व को पूरी तरह निश्चित करती है।

५. इस प्रणाली मे संगठन, सामग्री, सयन्त्र, कर्मचारी व कार्यों के दुहरेपन को रोकने का पर्याप्त उपाय रहता है।

६. पुस्तकालयो प्रयोगशालाओ तथा अन्य सेवाओ का पूरा-पूरा उपयोग इसमे सम्भव होता है।

७. यह उन सेवाओं के बीच जोकि एक ही सामान्य कार्य-क्षेत्र मे प्रभावशाली हो, पारस्परिक सहयोगी सम्बन्धों को सम्भव बनाती है, जो किसी दूसरी विधि

द्वारा नहीं हो सकता ।

८. यह उन तरीकों को प्रस्तुत करती है जिनमें अधिकार क्षेत्र के मतभेदों को हटाया जा सके या उनमें तत्परता से समायोजन किया जा सके। चूँकि सारा संगठन एक ही व्यक्ति की अधीनता में काम करता है, अत प्रशासकीय इकाइयों के आपसी झगड़े आसानी से सुलझाए जा सकते हैं ।

९. यह सभी प्रशासकीय प्रक्रियाओं व विधियों का मानकीकरण अधिक सुविधाजनक रूप से करती है । इस प्रणाली में संस्थागत कार्यकलापों के केन्द्रीयकरण में सुविधा होती है जैसेकि क्रय करना, सुरक्षित रखना, सम्भरण करना व नियुक्ति करना आदि ।

१० चूँकि इस प्रणाली द्वारा एक ही प्रकार की सेवाएँ एक विभाग के अन्तर्गत आती हैं इसलिए सरकार को विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के बनाने में सुविधा होती है और उसमें आपस में उचित सोहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। अतः इस प्रणाली द्वारा विकास सम्बन्धी कार्यों को सुचारु रूप देने एवं उनके क्रियान्वित करने में सुविधा मिलती है ।

एकीकृत या विभागीय प्रणाली की अपेक्षाएँ

उपरोक्त विवरण से एकीकृत प्रशासकीय प्रणाली की असम्बन्धित प्रणाली से सैद्धान्तिक रूप से उत्कृष्टता प्रकट होती है। पर सैद्धान्तिक उत्कृष्टता मात्र से किसी प्रशासकीय प्रणाली को सफलता मिल जाए यह अनिवार्य नहीं है । सैद्धान्तिक रूप से ठीक प्रणाली को यदि गलत तरीके से काम में लाया जाये तो सफलता शायद ही मिल सके । एकीकृत प्रशासकीय प्रणाली की आवश्यकता के लिए निम्नलिखित अपेक्षाएँ हैं —

१ विभिन्न सेवाओं को विभागों में एकत्रित करने का काम ठीक प्रकार से किया जाए। एक विभाग में उन्हीं सेवाओं को लाया जाना चाहिए जोकि एक ही क्षेत्र से सम्बन्धित हों। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जहां तक सम्भव हो, विभाग सम-उद्देशीय या एक उद्देशीय होने चाहिए । ऐसी सेवाएँ जो उस उद्देश्य से सम्बन्धित न हों, उन्हें उस विभाग में कदापि शामिल नहीं किया जाना चाहिए ।

२. कभी-कभी विभागीय या एकीकृत प्रणाली के समर्थक यह दृष्टिकोण बना लेते हैं कि विभिन्न सेवाओं का छोटे छोटे विभागों में केवलमात्र गठन कर देना ही लाभदायक होगा। पर यह केवल भ्रममात्र है। जबतक सेवाओं का गठन इस भांति का न हो कि जिसमें उनमें वास्तविक कार्यात्मक सम्बन्ध बने रहे उनका विभागों में गठन करना सेवाओं और विभागों दोनों के लिए ही अहित करते हैं ।

३. सेवाओं के दृष्टिकोण से हम देखते हैं कि यदि उन्हें एक ऐसे विभाग के अन्तर्गत रखा जाए जिसका कि मुख्य कार्य वह नहीं है, इन सेवाओं को उसके अन्तर्गत अनावश्यक संलग्न किया गया है तो उनके कार्य में शिथिलता आजाएगी। कई बार

प्रशासकीय कामो की गतिविधि कम हो जाती है क्योंकि इन सेवाओ मे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण कार्य करने से पहले विभागीय अध्यक्ष की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

४. विभागो के दृष्टिकोण से देखें तो प्रतीत होता है कि उनमें असंगत तत्त्व आ जाते हैं जिससे जटिलता बढ जाती है और सेवाओ मे उचित समन्वय पैदा नही हो पाता है। प्रशासकीय विधियो में मानकता भी नही आ पाती है।

५. इससे विभाग के अध्यक्ष के समय एव ध्यान का भी सदुपयोग नहीं हो पाता है। उसका जो पूरा समय एव ध्यान विभाग के प्राथमिक कर्त्तव्यो को दिया जाना चाहिए था, उसमे व्यवधान हो जाता है और उसके ऊपर अनावश्यक अधिक उत्तरदायित्व आ जाता है।

विभागीय गठन में किन सेवाओं को शामिल किया जाना चाहिए

ऐसा कहा जा सकता है कि यदि सम-उद्देशीय विभागो के सिद्धान्त को विभागीय गठन का सुदृढ आधार मान लिया जाए तो बहुत कम समस्याएँ सामने आयेंगी। किन्तु, वास्तव मे ऐसा नही है। ज्योही विभाग गठित करने का कार्य प्रारम्भ किया जाता है बहुत-सी विचारणीय बातें सामने आती हैं। इनमें से सबसे पहले जिसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए वह है, यह निर्धारण करना कि कौन-सी सेवा प्रशासकीय सेवा है जिसको कि विभाग मे गठित किया जाता है। अर्ध न्यायिक एव अर्ध-वैधानिक सेवाओ को विभागो के गठन मे शामिल नही करना चाहिए। इस प्रकार की सेवाओ को कार्यपाल के निर्देशन व नियंत्रण के अन्तर्गत नहीं लाया जाना चाहिए। ये या तो न्यायपालिका के अन्तर्गत या विधानसभा के अन्तर्गत, इनके प्राथमिक कार्यों को ध्यान मे रखते हुए रखी जानी चाहिए। इन दोनो प्रकार के कार्यों सम्बन्धी सेवाओ को कार्यपाल के अन्तर्गत लाना एक बडी भूल होगी। इसी भाँति अर्ध-वैधानिक और अर्धन्यायिक सेवाओ के अन्तर्गत उन सेवाओ का रखा जाना भी जो कि पूर्णतया प्रशासकीय है उचित नही। अत प्रथम समस्या यह है कि सेवाओ की प्रकृति का निर्धारण किया जाय। तत्पश्चात् उसकी प्रकृति के अनुसार यदि वह पूर्णतया प्रशासकीय है तो विभागो मे गठित किया जाय। यदि वह अर्ध-न्यायिक या अर्ध-वैधानिक है तो क्रमश न्यायपालिका या विधानसभा के अन्तर्गत रखी जाय। इसके साथ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इन तीनो प्रकार की सेवाओ के अन्तर्गत या साथ दूसरे प्रकार की सेवाएँ न जोडी जाएँ।

सेवाओं को विभाग के गठन मे सम्मिलित करने का सिद्धान्त

जब यह निश्चित हो जाये कि कौन-सी सेवाएँ विभागो के अन्तर्गत आएँगी तो सेवाओ के गठन के सिद्धान्त के निर्धारण की समस्याएँ सामने आती हैं। प्रश्न यह है कि क्या सेवाओं का गठन उनके आधारभूत उद्देश्यो, जिसके लिए उन्हे स्थापित किया गया था और चलाया जा रहा है, के अनुसार किया जाए या उन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सेवाओ के कार्यों ने जो रूप ले रखा है, उसके अनुसार किया

जाए ? आधारभूत उद्देश्य के अनुसार अगर सेवाओं का गठन किया जाता है तो सरकार के विभिन्न कार्य क्या-क्या हैं यह निर्धारण करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न विभाग बनाये जाएँ और प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत वे सभी सेवाएँ सम्मिलित की जाएँ जिनके कार्य उनसे सम्बन्धित हैं।

यदि सेवाओं का गठन उनके कार्यों के रूप के अनुसार किया जाता है तो उन सभी सेवाओं के कार्यों को जैसे इन्जीनियरिंग, वैज्ञानिक अनुसधान सांख्यिकी के निर्धारण का प्रयत्न किया जाना चाहिए और उन सभी सेवाओं को विभिन्न विभागों के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए जिनके कार्य इस दृष्टिकोण से उनके रूप के समकक्ष है। दोनों सिद्धान्तों के अलग-अलग लाभ हैं किन्तु विलोबी ने उद्देश्य के आधार पर सेवाओं के गठन पर जोर दिया है। उनका कथन है कि कार्य के रूप के अनुसार गठन करने से एक सर्वोच्च अधिकारी में सभी मामलों के उत्तरदायित्व को केन्द्रित करने का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। अत सेवाओं को विभागों में गठित करते समय मुख्य कार्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए न कि कार्यों के रूप का। अत सारांश मे यह कहा जाता है कि पुनर्गठित प्रशासकीय प्रणाली मे निम्नलिखित सिद्धान्तों को स्थान मिलना चाहिए।

१ सगठन का प्रकार एकीकृत या विभागीय होना चाहिये।

२ पूर्णत प्रशासकीय सेवाओं और अर्ध वैधानिक व अर्ध न्यायिक सेवाओं तथा दूसरी विशेष सेवाओं का निर्धारण किया जाए और केवल प्रशासकीय सेवाओं को ही विभागीय गठन मे सम्मिलित किए जाए।

३ सेवाओं को उनके उद्देश्य के कार्यों को ध्यान मे रख कर विभागो मे बाटा जाना चाहिए न कि सेवाओं के कार्य के रूप को ध्यान मे रख कर।

४ यथासम्भव विभाग समकार्यात्मक हों।

प्रशासकीय विभाग का आन्तरिक सगठन

यदि किसी प्रशासकीय विभाग के कार्यों को देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होगा कि मुख्यतः ये दो भागो मे विभाजित किए जा सकते हैं

(अ) प्राथमिक कार्यकलाप—ये वे कार्यक्रम है जिन्हे पूरा करने के लिए विभाग बनाया गया है। ये कार्यक्रम प्रत्येक विभाग मे अलग-अलग होते हैं। शिक्षण व्यवस्था शिक्षा विभाग मे, देश की आन्तरिक एव बाह्य सुरक्षा रक्षा विभाग मे, रोगियो की चिकित्सा स्वास्थ्य विभाग मे प्राथमिक कार्यक्रम कहे जाएगे।

(ब) संस्थागत कार्यकलाप—ये ऐसे कार्यक्रम होते हैं जोकि विभाग को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक होते हैं। यदि विभाग इन कामो को नही करे तो वह अपने प्राथमिक कार्यकलापो को पूरा नही कर सकेगा। इस श्रेणी मे पूर्तिसेवा, सचार, लेखा, अन्वेक्षण, कार्मिक वर्ग प्रशासन आदि सेवाएँ आती हैं।

प्राथमिक तथा संस्थागत कार्यकलापो मे अन्तर

इन दो प्रकार के कार्यकलापो मे निम्नलिखित अन्तर हैं

(ग्र) प्राथमिक कार्यकलाप स्वयं मे ही साध्य होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विभाग का निर्माण ही इसलिए किया गया है कि ये काम सुचारु रूप से पूरे किए जा सकें। शिक्षा विभाग का निर्माण इसलिए किया गया है कि स्कूल और कालेजों मे विद्यार्थियो को शिक्षा दी जा सके। इसके विपरीत सस्थागत कार्यकलाप साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन मात्र हैं। पूर्ति सेवा, संचार, लेखा आदि सेवाओं को साध्य नही कहा जा सकता। ये तो विभाग के प्राथमिक उद्देश्य की प्राप्ति के साधन हैं। ये काम इसलिए किए जाते हैं कि विभाग अपना प्राथमिक काम अच्छी तरह कर सके।

(ब) विभाग के प्राथमिक कार्यकलापो में कार्यकुशलता उसके संस्थागत कार्यकलापो की कार्यकुशलता पर निर्भर होती है। यदि किसी विभाग में कार्मिक वर्ग प्रशासन ठीक से नही है, और वहां पर लोग हमेशा एक-दूसरे से लड़ते-भिड़ते रहते हैं, अनुशासनहीनता है, नीति भ्रष्टता है, लोगो को विभाग की कार्मिक नीतियो मे विश्वास नहीं है, ऐसी स्थिति मे प्राथमिक कार्यकलापों मे कार्यकुशलता का प्रश्न ही कहाँ उठता है।

(स) प्रत्येक विभाग के प्राथमिक कार्यकलाप अलग-अलग होते हैं। जैसे रक्षा विभाग का प्राथमिक कार्यकलाप देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा करना है तो समाज-कल्याण विभाग समाज के पिछड़े हुए वर्गों की उन्नति के लिए प्रयास करता है।

चूँकि ये कार्यक्रम अलग-अलग होते हैं अतः इनसे सम्बन्धित नियम तथा नीतियाँ भी अलग-अलग होनी हैं। इसके विपरीत सस्थागत कार्यक्रम जैसे लेखा पूर्ति सेवा, कार्मिक वर्ग-प्रशासन सभी विभागो मे एक समान ही होना है।

यही कारण है कि आई० ए० एस० सचिव सचिवालय के प्रत्येक विभाग मे काम करते मिलते हैं तथा एक विभाग से दूसरे विभाग मे उनका स्थानान्तरण होता रहता है। जो लोग प्राथमिक तथा सस्थागत कार्यक्रमो मे अन्तर नहीं समझते वे कई बार इस प्रकार आपत्तियां उठाते हैं कि आई० ए० एस० का अधिकारी सभी विभागो मे कैसे काम कर सकने मे सक्षम होता है। वस्तुत स्थिति यह है कि आई० ए० एस० अधिकारी विभाग के प्राथमिक कार्यक्रमो को नही सभालते। वे तो संस्थागत कार्यक्रमो पर नियन्त्रण रखते हैं।

प्रशासन मे अधिकतर हम विभागो के सस्थागत कार्यकलापो एवं इनसे सम्बन्धित समस्याओं का ही अध्ययन करते हैं।

(द) चूँकि विभागो की स्थापना प्राथमिक कार्यकलापो की पूर्ति के लिए ही हुई है अतः इस दिशा मे खर्च कम करने का प्रश्न प्राय: कम ही उठता है। पर संस्थागत कार्यकलापो के खर्चों को कम करने का सदैव ही प्रयास किया जाता है। जब किसी विभाग मे प्रशासनीय व्यय कम करना होता है तो पहले सस्थागत कार्यकलापों के खर्चों मे कमी की जाती है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि प्राथमिक तथा सस्थागत कार्यों की प्रकृति मे काफी अन्तर है। अत. प्रशासकीय कार्यकुशलता के लिए यह आवश्यक है कि इन दोनो कार्यों के लिए अलग-अलग इकाइयाँ बनाई जाएँ। इसके पक्ष मे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं .

(अ) जिन अधिकारियो को प्राथमिक कार्यकलापो मे काम करना है, उन्हे यदि संस्थागत कार्यों से छुट्टी मिल जाए तो वे अपना सारा समय प्राथमिक कार्यकलाप मे ही बिता सकेंगे। इससे प्राथमिक कार्यकलाप की सफलता की आशा अधिक हो जाती है।

(ब) अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि कोई अधिकारी अपने व्यावसायिक विशेषज्ञता के क्षेत्र मे तो बहुत ही अधिक कार्यकुशल है, पर सस्थागत कार्यकलाप के क्षेत्र मे वे कुछ भी नही कर पाते। जैसे एक डाक्टर अपने डाक्टरी के क्षेत्र मे तो बड़ा ही योग्य है, पर कार्मिक प्रशासन तथा सामान खरीदने के काम मे ठीक तरह काम नही कर पाता। डाक्टर का चयन उसकी व्यावसायिक योग्यता के आधार पर होता है न कि सस्थागत कार्यों मे उसकी कार्यकुशलता के आधार पर।

(स) सस्थागत काम भी आजकल बहुत ही अधिक तकनीकी बन गए है। उदाहरण के लिए कार्मिक वर्ग, प्रशासन लेखा, सर्वेक्षण, बिक्री कर आदि लिए जा सकते हैं। इन क्षेत्रो मे से किसी मे भी कोई इजीनियर या डाक्टर शायद ही सफलतापूर्वक काम कर सके। यदि इन कामो को कुशलतापूर्वक करवाना है तो इन्हे इन विषयो के विशेषज्ञो को सौंपना पड़ेगा।

कई बार सस्थागत कामो के लिए एक अभिकरण बना दिया जाता है, जो विभाग के सभी सेवाओ के लिए या कई विभागो के लिए सस्थागत काम करता है। जैसे भारत सरकार मे महानिदेशक, प्रदाय एव व्यवस्थापन (Director General of Supplies & Disposal) भारत सरकार के सभी विभागो के लिए सामान की आपूर्ति करता है तथा फालतू सामान नीलाम करवाता है। केन्द्रीय लोकसेवा आयोग सरकार के सभी विभागो के लिए कार्मिक वर्ग का चयन करता है। चूँकि विभिन्न विभागो के सस्थागत काम प्राय एक-से ही होते हैं अत इनको भलीभाँति चलाने के लिए इस प्रकार के अभिकरण अधिक कार्यकुशल होते है। साथ ही यदि कई विभागो या सारे सरकार के लिए एक ही अभिकरण हो तो खर्च मे भी काफी कमी हो जाती है। यदि प्रत्येक विभाग अपना आपूर्ति एव व्यवस्थापन के लिए अलग प्रबन्ध करे या लोकसेवा आयोग अलग-अलग बनाएँ तो इसमे खर्च काफी अधिक बढ़ जाएगा।

विशेष अध्ययन के लिए

१ विनोबी प्रिंसिपिल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
२. अवस्थी एव माहेश्वरी . लोक प्रशासन

११

प्रशासन के यन्त्र

यन्त्र का अभिप्राय सेवा या उपयोग के उपकरण से है। जिस प्रकार किसी कार्य को पूरा करने के लिए कुछ आवश्यक यन्त्रो का होना जरूरी है ठीक उसी प्रकार से प्रशासन को सुचारु रूप मे चलाने एव प्रशासन में कार्यक्षमता लाने के लिए कुछ यन्त्रो का भी होना अत्यावश्यक है। अत: हम यह कह सकते हैं कि प्रशासन मे कार्यक्षमता लाने के लिए जिन यन्त्रो का उपयोग किया जाता है उन्हे प्रशासकीय यन्त्र कहा जाता है। प्रशासन के अध्ययन मे प्रशासकीय यन्त्रो का अध्ययन अपेक्षित है क्योकि उन्ही के उचित प्रयोग पर ही प्रशासन की कार्यक्षमता एव सुचारुता निर्भर करती है। साधारणतया प्रशासन के सभी यन्त्र जैसे प्रपत्र, अभिलेख आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। वैसे प्रशासन की सामान्य समस्याओ का विवेचन करते समय बजट, सेवाओं सम्बन्धी एवं कार्यकुशलता सम्बन्धी अभिलेख, वित्तीय वक्तव्य विवरण और प्रतिवेदन, वस्तु सूचियाँ आदि का जो अध्ययन किया जाता है वह सब भी प्रशासकीय यन्त्र कहे जाते हैं। यहाँ पर निम्नलिखित यन्त्रो का अध्ययन किया जाएगा :

१ प्रशासकीय सहिता
२ सेवा प्रबन्ध-विवरण
३. सेवा पुस्तिका
४ सगठन एव कर्मचारी वर्ग की रूप रेखाएँ, रेखाचित्र और मानचित्र
५. कार्य अभिहस्ताकन और प्रगति-प्रतिवेदन
६. प्रशासकीय प्रतिवेदन
७. सरकारी राजपत्र

प्रशासकीय सहिता

प्रशासकीय सहिता मे विभाग सम्बन्धी विधान, नियमो का व कानूनो का उल्लेख होता है। इस तरह के उल्लेख की आवश्यकता प्रत्येक सार्वजनिक प्रशासक के लिये न केवल इसलिये आवश्यक है कि उसे अपने कार्य सम्बन्धी पूर्ण विवरण का ज्ञान हो तथा वह कार्य सुचारु रूप से चला सके। इसके अतिरिक्त इसकी आवश्यकता इसलिए भी होती है कि सार्वजनिक प्रशासक पर यह भी उत्तरदायित्व है कि वह व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गए विस्तृत विधान से परे न हटे एव उसे सही

रूप से कार्यान्वित करे जिससे कि सार्वजनिक नीतियो द्वारा वांछित फल प्राप्त हो सके। इसलिए जहाँ तक एक सार्वजनिक प्रशासक का क्षेत्र है उसके सम्बन्ध मे उसे पूरी जानकारी होनी चाहिए।

प्रशासकीय संहिता द्वारा प्रशासक के वैध दायित्वों का निर्देश होता है और व्यवस्थापिका को भी यह निश्चित करने मे सुविधा हो जाती है कि उसके आदेश सही ढग से कार्यान्वित किये जा रहे हैं या नही तथा नये विधान भी उसी के अनुकूल हैं या नही। इसके अतिरिक्त जनता भी प्रशासकीय संहिता का अध्ययन करके प्रशासन के प्रति अधिक जागरूक रह सकती है एव लाभ प्राप्त कर सकती है। अत सरकार द्वारा सावधानी व मनोयोग से बनाई गई प्रशासकीय संहिता का होना आवश्यक है। प्रशासकीय कार्यों को दो भागो उद्देश्यात्मक व सस्थागत मे बाटा जाता है। प्रशासकीय संहिता की अन्तर्वस्तु का निर्धारण करते समय यही अन्तर ध्यान मे रखा जाना चाहिए और केवल सस्थागत कार्यों को प्रशासकीय संहिता मे लिया जाना चाहिए। उद्देश्यात्मक कार्यों को उनके कानूनो का अविभाज्य अग बना दिया जाना चाहिए।[1] ऐसा करने से प्रशासक के समस्त उत्तरदायित्व एक ही पुस्तक मे एकत्रित मिल सकेंगे।

विलोबी का मत है कि संहिता मे केवल उन प्रावधानो का उल्लेख होना चाहिए जो सामान्य और आधारभूत है। अन्य विस्तार की बातो को प्रशासकीय अधिकारियो के विवेक पर छोड दिया जाना चाहिए। अतः प्रशासकीय संहिता की रचना करते समय अनावश्यक कठोरता तथा व्यापकता का प्रवेश न हो इसके लिए सतर्क रहना चाहिए। लचीलापन नष्ट होने से लालफीताशाही का तीव्र गति से विकास होता है जिससे प्रशासन मे अकार्यकुशलता आ जाती है। सामग्री सम्बन्धी संहिता की समस्याओ को दूर करने के लिए विलोबी ने सुझाव दिया है कि प्रशासकीय संहिता को पाच भागो मे बाट दिया जाना चाहिए। उनके अनुसार प्रथम भाग मे मूल अधिनियमो को जिनसे सगठन के विभागो की शक्तियो और अधिकारो के उल्लेख का प्रावधान हो, अकित किया जाना चाहिए। दूसरे भाग मे कानून के उन प्रावधानो का उल्लेख होना चाहिए जिनके द्वारा कर्मचारियो की नियुक्ति, वर्गीकरण, उनकी पदोन्नति तथा सेवा की अन्य शर्तों का निर्धारण होता है। तीसरे भाग मे ऐसे नियमों का वर्णन होना चाहिए जिनके आधार पर प्रशासन का सचालन होता है जैसे ठेके देना, अधिप्राप्ति (Procurement) आपूर्ति आदि के तरीके। चौथे भाग मे उन नियमो का समावेश होना चाहिए जिनके द्वारा प्रशासकीय सेवाओ के खाते, वित्तीय विवरण, लेखा-परीक्षण सम्बन्धी प्रावधानो का निर्धारण होता है। अन्तिम तथा पचम भाग मे बचे हुए सभी नियमो को उचित शीर्षको के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए। जोकि पहले चारो भागो मे वर्णित नही हैं।[2]

---

१. Willoughby : Principles of Public Administration pp 162
२. Ibid pp 163

सेवा प्रबन्ध-विवरण

कार्यक्षम प्रशासन के लिए उन सभी तथ्यो का पूर्ण ज्ञान होना अत्यावश्यक है जिनका उस कार्य पर प्रभाव पडता है या जिनसे उन पर नियन्त्रण होता है। इसके बिना न तो विधायक ही और न प्रशासकीय अधिकारी ही उचित निर्णय ले सकेंगे कि क्या कार्य किया जाए, उस कार्य को कितना वित्त मिले, उस कार्य को कैसे कार्यान्वित किया जाय और कौनसे कानून उसके सम्बन्ध मे लागू करें तथा किन तरीको से उसका निर्देशन व देख-रेख किया जाए। प्रत्येक सेवा सम्बन्धी इस तरह की एकत्रित की गई सूचना को ही सेवा प्रबन्ध-विवरण (Service monograph) कहा जाता है। इसमे प्रत्येक सेवा सम्बन्धी पूर्ण व विस्तृत सूचना क्रमबद्ध योजनानुसार प्रस्तुत की जाती है। विलोबी के अनुसार एक अच्छे सेवा प्रबन्ध-विवरण मे किसी सेवा सम्बन्धी निम्नलिखित सूचना सम्मिलित की जानी चाहिए.

(क) सेवा सम्बन्धी कार्यों का विस्तारपूर्वक विवरण

(ख) सेवा सम्बन्धी सगठन का वर्णन

(ग) सेवा यन्त्र-समुच्चय तथा दूसरी सुविधाओ का वर्णन यदि आवश्यकता हो तो।

(घ) सेवाओ की क्रियाओ से सम्बन्धित नियम तथा उनके लागू किये जाने का वर्णन।

(ड) वित्तीय वर्णन।

(च) सूचना सग्रह के साधनो का वर्णन।

सेवा प्रबन्ध-विवरण से प्रशासको को न केवल जिस सेवा को वह कर रहे हैं उसके बारे मे ही विस्तृत सूचना प्राप्त होती है बल्कि उस सेवा से सम्बन्धित दूसरी सेवाओ के बारे में भी ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे सेवा यन्त्र-समुच्चय व आपूर्ति आदि के बारे मे सूचना जिससे ये सुविधायें आवश्यकता के समय प्राप्त की जा सकें। सेवा प्रबन्ध-विवरण के होने से कार्य के दोहरापन को रोका जा सकता है जिससे विभागो के कार्यों मे समन्वय स्थापित होता है तथा कार्य सुविधाजनक रूप से पूरा होता है। अधिकारियो का स्थानातर होता रहता है। वे एक सेवा से दूसरी सेवा मे जाते हैं। सेवा प्रबन्ध-विवरण से अधिकारियो का पथ-प्रदर्शन होता है। अत उनके लिए यह एक महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय यन्त्र है। विधायको के लिए भी यह लाभदायक है। उन्हें प्रत्येक सेवा सम्बन्धी सूचना एक ही स्थान पर मिल जाती है और वे विवेकपूर्ण विधान बनाने मे इस सुविधा को महत्त्वपूर्ण पाते हैं।

सार्वजनिक जनता के लिए भी इसका उपयोग कम नही है। उन्हे सरकार के सगठन के बारे मे सूचना मिलती है जिससे जनता जागरूक होती है। जनता सरकार के कार्यकलापो के सम्बन्ध में अपनी राय ठीक तरीके से बना सकती है। इसके अतिरिक्त वित्त विभाग को विभिन्न सेवाओ की वित्त सम्बन्धी मांगो की जाच-पडताल करने मे भी सुविधा होती है।

सेवा प्रबन्ध-विवरण वर्णनात्मक होना चाहिए। इसमे किसी प्रकार की आलोचना, या सस्तुति नहीं होनी चाहिए।

सेवा-पुस्तिका

इसमे विभिन्न सेवाओ से सम्बन्धित सामान्य सूचना, इतिहास, कार्य सगठन आदि का वर्णन होता है। सेवा पुस्तिका (Service manual) मे प्रत्येक सेवा के कार्यों की विस्तृत व्याख्या होती है। इसमे सेवा सम्बन्धी सगठन का विधान, कानून, नियम आदि होते है तथा सेवा को लागू करने के तरीको का भी विवरण, विस्तृत रूप से होता है। इसमे सम्बन्धित सामग्री का उल्लेख अध्यायगत रूप से होता है। इसमे सेवा के व्यय के उल्लेख के साथ-साथ पदाधिकारियो की नियुक्त, प्रशिक्षण, पदोन्नति का विवरण भी होता है तथा सामान क्रय करना, इसकी देखभाल और वितरण एव जायदाद के अभिलेख बनाना और पत्राचार करने सम्बन्धी तरीको का भी विवरण होता है। सेवा-पुस्तिका की विशेषता यह है कि सेवा सम्बन्धी कार्यक्रम के विषय मे निगाह डालते ही तुरन्त जानकारी प्राप्त हो जाती है।

सेवा-पुस्तिका की प्रशासन के यन्त्र के एव नियन्त्रण के रूप मे आवश्यकता है। इसके द्वारा कार्यविधियो का प्रचार होता है जिससे कर्मचारियो को अपना कार्य करने मे प्रेरणा मिलती है।

उन्हे उनके उत्तरदायित्वो के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है। नियन्त्रण के यंत्र के रूप मे सेवा-पुस्तिका का महत्व इससे प्रकट होता है कि इसके द्वारा उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियो पर सफलतापूर्वक नियन्त्रण रख सकते हैं। उच्च अधिकारी यह जान सकता है कि उसके अधीनस्थ कर्मचारियो ने नियमानुसार अपने कर्तव्यो को निभाया है अथवा नही। इससे नियन्त्रण का ढाचा ठीक बना रहता है। निर्देशक को नियन्त्रण करने मे सुगमता होती है। यदि इनकी व्यवस्था भी एक समरूप योजनानुसार की गई है तो इससे प्रशासन को कार्यकुशल बनाने मे बहुत अधिक सहायता प्राप्त हो सकती है।

संगठन तथा कर्मचारियो के रेखाचित्र, चार्ट तथा मानचित्र

उच्च पदाधिकारियों को उन सभी सूचनाओ का जिनका सम्बन्ध प्रशासकीय नियमों के प्रशासन से है, प्राप्त होना अत्यावश्यक है। रेखाचित्र, चार्ट तथा मानचित्रो के द्वारा सगठन एव कर्मचारियो से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। यह सूचना एकत्र करना प्रशासन का महत्वपूर्ण यन्त्र है।

रेखाचित्र (Out-line) सगठन का सामान्य उपस्थापन है। चार्ट और मानचित्र (map) दृष्टात अधिक विवरण मे देते हैं, एवं पारस्परिक सम्बन्धो का स्पष्टीकरण करते हैं। सगठन सम्बन्धी रेखा-चित्र का उद्देश्य किसी सेवा, विभाग या सरकार का सगठन किस प्रकार है, इसका प्रदर्शन करना है। इनमे ऊपर से लेकर छोटी से छोटी इकाइयो का प्रदर्शन तथा उनके सम्बन्ध का भी विवरण होना है। इनमे साथ

ही साथ सगठन के उच्चाधिकारी से लेकर सभी छोटे अधिकारियो तक का भी विवरण होता है। जितना उचित व विस्तृत रूप मे तैयार किया हुआ रेखाचित्र होगा उतनी ही अधिक व उचित सूचना उपलब्ध होगी। क्योंकि इसमे मुख्यालयो एव क्षेत्रीय सस्थापनो का भी विवरण होता है इसलिए उच्चाधिकारियों को मितव्ययिता करने के लिए बार-बार प्रेरणा मिलती रहती है। यह मितव्ययिता कार्यों के उचित हस्तातरण द्वारा प्राप्त की जा सकती है। रेखाचित्रो द्वारा दूसरी सेवाओ मे सम्बन्धित अधिकारियो को भी सूचना प्राप्त होती है। इसके आधार पर यदि एक सेवा दूसरी सेवाओ से कुछ सुविधाये सुलभ कराना चाहे तो कार्यों का दोहरापन बचाया जा सकता है। सगठन के रेखाचित्रो मे न केवल अधीनस्थ विभागो का ही प्रदर्शन किया जाना चाहिए, बल्कि उप विभागो का उच्च विभाग से क्या सम्बन्ध है यह भी प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

चार्ट

सगठन को प्रदर्शित करने का दूसरा साधन चार्ट है। बहुत से व्यक्ति चार्टों द्वारा सगठन को जल्दी ही और ठीक प्रकार से समझ लेते हैं। चार्ट द्वारा सगठन को प्रदर्शित करने मे कुछएक आपत्तिया उठाई जाती हैं। इनमे चार्ट बनाने का खर्च, उनमे जल्दी परिवर्तन एव सशोधन करने की समस्या और इनकी जल्दी ही उपयोगिता समाप्त हो जाना आदि बताया जाता है। अपना उद्देश्य पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए एक अच्छा चार्ट साधारण एव आसान होना चाहिए। चार्ट द्वारा वह सूचना अच्छी तरह दी जा सकती है जो रेखा-चित्रो द्वारा नही दी जा सकती है। इसमे नाना प्रकार की रेखाओ का प्रयोग करके सत्ता का प्रवाह तथा अधिकारियो का सम्बन्ध अच्छी प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

मानचित्र

मानचित्र द्वारा भी सगठन को प्रदर्शित किया जाता है। इनका प्रयोग क्षेत्रीय सगठन को प्रदर्शित करने के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विभिन्न सेवा के क्षेत्रीय सस्थापनो का विभिन्न प्रकार के चिह्नो का प्रयोग करके एक ही बड़े मानचित्र मे प्रदर्शन किया जा सकता है। इनके द्वारा प्रशासन मे कार्य कुशलता और मितव्ययता आदि के सम्बन्ध मे व्यापक रूप से विचार किया जा सकता है। इनके द्वारा एक ही विभाग का विभिन्न सेवाओ या विभिन्न विभागो की विभिन्न सेवाओ मे सहयोग के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर ढूढने मे भी सहायता मिलती है। क्षेत्रीय निरीक्षण को प्रभावशाली एव मितव्ययी बनाने मे मानचित्र सहयोग देते हैं।

कार्य अभिहस्ताकन और प्रगति-पत्र

लोक-प्रशासन मे जितना ही अधिक गभीर रूप से प्रशासन की समस्याओ का अध्ययन किया जाता है उतना ही अधिक नियन्त्रण एव निरीक्षण का महत्व स्पष्ट होता जाता है। किसी भी विभाग का कार्यक्षम प्रशासन कार्यकुशल निर्देश पर निर्भर

करता है। पदाधिकारियो का यह कार्य तभी सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है जबकि वे अपने *अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों तथा उनकी आवश्यकताओं को भली-भांति समझते हो।* अत यह आवश्यक है कि अधिकारियो के कार्य अभिहस्तांकन (Work Assignments) का अभिलेख हो तथा प्रत्येक सेवा प्रगति के सम्बन्ध मे नियमित अभिलेख रखे जाएँ। इससे विभाग की गति के बारे मे पता लग जाता है तथा नियंत्रण मे सुविधा होती है। उच्च अधिकारियो को यह पता रहता है कि कौन-सा काम किस कर्मचारी को सौंपा गया है और उसने अपना काम अच्छी तरह किया या नही। यदि काम अच्छी तरह नही किया गया है अथवा प्रगति सन्तोषजनक नही है इसकी तत्काल ही जाच पडताल की जाती है तथा असन्तोषजनक प्रगति के विरुद्ध उचित कदम उठाये जा सकते हैं। सफल नियंत्रण के लिए ठीक सूचनाओं की उपलब्धि आवश्यक है। प्रगति प्रतिवेदन से ये सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

प्रशासकीय प्रतिवेदन

लोक-प्रशासन मे अनेक प्रकार के प्रतिवेदनो का उपयोग किया जाता है। इनमे प्रशासकीय प्रतिवेदन का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। प्रशासकीय प्रतिवेदन मे यह बताया जाता है कि प्रशासकीय कार्य-कलाप किस तरह चल रहा है। अंग्रेजी शासन काल मे भारतवर्ष की प्रशासकीय स्थिति के सम्बन्ध मे एक प्रतिवेदन प्रतिवर्ष तैयार किया जाता था। यह प्रतिवेदन पार्लियामेंट के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। प्रान्तीय सरकारें भी इसी प्रकार वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करती थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी केन्द्र तथा राज्य सरकारो के विभिन्न मन्त्रालय तथा सार्वजनिक निकाय वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करके संसद तथा विधान सभाओं के सम्मुख प्रस्तुत करते है। *वार्षिक प्रतिवेदन केवल लोक-प्रशासन मे ही नही वरन् निजी प्रशासन मे भी तैयार* किये जाते हैं। प्रत्येक वर्ष अंश-भागीदारो की साधारण बैठक मे प्रबन्ध-निर्देशक या निर्देशक मण्डल का अध्यक्ष कम्पनी के प्रशासन के सम्बन्ध मे एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।

प्रशासकीय प्रतिवेदन मे विभिन्न विभागो के कार्यों का विस्तृत रूप मे ब्यौरा दिया जाता है जैसे शिक्षा विभाग अपने प्रतिवेदन मे यह बताता है कि कितने नये स्कूल, कालेज आदि खोले गये। कितने नय वैकल्पिक विषयो के शिक्षण की व्यवस्था की गई। प्रशासकीय प्रतिवेदनो के आधार पर प्रमुख कार्यपाल या विधानमण्डल इन पर नियन्त्रण रख सकते हैं। प्रशासकीय प्रतिवेदन वह माध्यम है जिसके द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारियो को यह सूचित करते हैं कि आलोच्य काल म उन्होंने *अपनी जिम्मेदारियाँ किस प्रकार निभाई हैं।*

प्रशासकीय प्रतिवेदनो की उपयोगिता बढाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :

1. *उच्च अधिकारी यह निश्चित करे कि प्रतिवेदन मे कौनसी बातें सम्मिलित*

की जायेंगी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग सारे विश्वविद्यालयों से वार्षिक रिपोर्ट एक निश्चित निदर्श (Proforma) में मँगाता है। इससे यह लाभ होता है कि सूचनाएँ एक पूर्व निर्धारित ढंग से ही प्रस्तुत की जाती है जिससे कि इनके मूल्यांकन एवं तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है। इसके विपरीत यदि ऐसा न किया गया तो प्रत्येक अधिकारी अपने मनमाने ढंग से प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा और फलतः इसकी उपयोगिता कम हो जाएगी।

२ प्रशासकीय प्रतिवेदनों के विभिन्न स्तर होते हैं जैसे गाँव का पटवारी अपना प्रतिवेदन राजस्व निरीक्षक के पास भेजता है। राजस्व निरीक्षक पटवारियों के प्रतिवेदन के आधार पर अपना विवरण तैयार कर कानूनगो के पास उसे प्रेषित करते हैं। कानूनगो अपना प्रतिवेदन तहसीलदार के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इन प्रतिवेदनों के आधार पर रिपोर्ट तैयार करके तहसीलदार तहसील की रिपोर्ट एस० डी० ओ० को भेजते हैं। एस० डी० ओ० तहसीलदार की रिपोर्टों के आधार पर अपनी रिपोर्ट बना कर जिलाधीश को भेजते है। जिलाधीश के स्तर पर एस० डी० ओ० के प्रतिवेदनों के आधार पर पूरे जिले की रिपोर्ट तैयार की जाती है। इन प्रतिवेदनों को पूर्ण रूप से उपयोगी तभी बनाया जा सकता है जबकि ऊपर के स्तर की रिपोर्ट के लिए नीचे के स्तर की रिपोर्ट को आधार के रूप में उसके साथ संलग्न किए जाये। उदाहरण के लिए जिलाधीश के प्रतिवेदन के आधार के रूप में एस० डी० ओ० के स्तर के प्रतिवेदन संलग्न किये जाने चाहिए।

प्रशासकीय प्रतिवेदनों का यह सिलसिला जिलाधीश के स्तर पर ही समाप्त नहीं हो जाता। कुछ मामलों में राज्य स्तर पर तथा कुछ अन्य मामलों में केन्द्र सरकार के स्तर तक प्रतिवेदनों का सिलसिला बना रहता है।

सरकारी राज-पत्र

सरकार अपने आदेशों आदि को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए उन्हें राज-पत्र (Govt. Gazette) में प्रकाशित करती है। साधारणतः राज-पत्र साप्ताहिक होते हैं। पर महत्वपूर्ण आदेशों को प्रकाशित करने के लिए असाधारण राज-पत्र भी प्रकाशित किए जाते हैं। सरकार के सभी महत्वपूर्ण आदेश, नियम, उपनियम आदि राज-पत्र में प्रकाशित किए जाते हैं।

राज-पत्रों की उपयोगिता

राजपत्रों की निम्नलिखित उपयोगिताएँ बताई जा सकती हैं :

१. वर्तमान संवैधानिक सरकारें इस बात को मानती हैं कि सरकार के सभी अधिकारी जनता के प्रति उत्तरदायी है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार अपने कार्यों, आदेशों, नियमों आदि के बारे में जनता को सूचित करे। राज-पत्र में प्रकाशित आदेश जनता की सूचना के लिए है। कोई भी व्यक्ति राजपत्र की प्रतियाँ खरीद सकता है।

२. ग्राजकल सरकार का कार्यक्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत हो गया है। जन-साधारण के प्रत्येक भाग पर सरकार के कामो का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। जनसाधारण का जो भाग सरकार के कामो से प्रभावित होता है उसे इसकी सूचना देना सरकार का कर्तव्य है। सरकार इस कर्तव्य को निभाने के लिए सामान्य अथवा वर्ग विशेष से सम्बन्धित सूचनाएँ राजपत्र मे प्रकाशित करवाती है।

३. *सरकारी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी राज-पत्रो का उपयोग होता* है। राजपत्रित कर्मचारियो की नियुक्तियाँ, पदोन्नति, पदावनित, सेवामुक्ति आदि राज-पत्र मे प्रकाशित की जाती हैं। इनके अतिरिक्त ठेके, आपूर्ति आदि से सम्बन्धित *विज्ञापन भी राजपत्र मे प्रकाशित किए जाते हैं।*

४ नागरिक प्रशिक्षण की दृष्टि से भी सरकारी राजपत्र की आवश्यकता है। नागरिको को सरकार के कामो और उनके करने के तरीको के बारे मे शिक्षा मिलती है।

५ सरकार का एक कार्य जनसम्पर्क स्थापित करना भी है। राजपत्रो द्वारा सरकार को जनसम्पर्क स्थापित करने मे सहायता मिलती है।

६ राजपत्र द्वारा सरकार के कार्यों का विज्ञापन एव प्रचार भी होता है।

सरकारी राजपत्र के प्रकाशन एव सम्पादन मे अधिक से अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है। इसके अक जितनी शीघ्रता से प्रकाशित होगे उतना ही अच्छा रहेगा। यदि सम्भव हो तो यह दैनिक प्रकाशित होना चाहिए। इनमे निहित सूचना को जनता के सम्मुख वर्गीकृत रूप मे रखा जाना चाहिए।

विशेष अध्ययन के लिए

१. विलोबी . प्रिंसिपिल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

२. एम०पी०शर्मा लोक-प्रशासन सिद्धान्त एव व्यवहार

१२

प्रशासकीय शक्तियाँ

प्रशासकीय शक्तियाँ वे शक्तियाँ है जो किसी नीति को कार्यान्वित करने के लिए सरकारी अधिकारियो को दी जाती है। प्रशासन की कुशलता बहुत कुछ इन शक्तियो पर निर्भर करती है। प्रशासकीय अधिकारियो को इतनी शक्तियाँ मिलनी चाहिए जिससे कि वे अपनी जिम्मेवारियो को उचित रूप से निभा सकें।

प्रशासकीय शक्तियो से प्रशासन जनता से सरकारी नीतियो को मनवाता है। सरकारी विभागो के आन्तरिक प्रशासन और कार्य सचालन के नियम, कानून आदि इसके अन्तर्गत नही आते। प्रशासकीय शक्तियां कार्यपालिका के हाथो मे निहित होती है। विधान मण्डल और न्यायालय इनके ऊपर काफी नियन्त्रण रखते हैं। वास्तव मे प्रशासकीय शक्तियो की सीमा रेखा निर्धारित करने का काम विधान मण्डलो का है। विधान मण्डलो द्वारा निर्मित कानूनो के अन्तर्गत कार्यपालिका नियम, उपनियम एवं आदेश आदि के द्वारा यह काम करती है। न्यायपालिका यह देखती है कि कार्यपालिका विधान मण्डल द्वारा निर्धारित सीमा रेखा का उल्लघन तो नही कर रही है। यदि कार्यपालिका ऐसा करती है तो न्यायपालिका कार्यपालिका के आदेशो एव कार्यों को अवैध घोषित कर देती है। उन व्यक्तियो को जिन्हे अवैध आदेशो एव कार्यों से हानि हुई हो, उचित क्षतिपूर्ति राजकोष से करायी जाती है।

आज के युग मे प्रशासकीय शक्तियो को जनता के हडताल, घेराव, सत्याग्रह आदि कई बार निष्क्रिय कर देते हैं। यदि जनसाधारण किसी समय प्रशासकीय शक्तियो को चुनौती देता है तो बडी विकट समस्या पैदा हो जाती है। पुलिस को अधिकार है कि वह शान्ति भग करने वालो को गिरफ्तार करे। पर सरकारी कर्मचारियो के सगठन उन्हे ऐसा करने से रोकते हैं। यदि पुलिस उन्हे पकडती है तो कर्मचारी सगठन हडताल करवा कर सारे प्रशासन को अस्तव्यस्त कर देते हैं। आप किसी भी दिन दैनिक समाचार-पत्र उठा कर देखें। देश के विभिन्न भागो से ऐसे समाचार आपको मिलेंगे जहाँ पर कि कुछ हित गुटो ने प्रशासकीय अधिकारियो को अपनी शक्तियो का उपयोग करने से रोका है। विद्यार्थियो द्वारा हडताल और उपकुलपति का घेराव, श्रमिको द्वारा व्यवस्थापक एव अन्य प्रशासकीय अधिकारियो का उनके आफिस मे या बाहर घेराव आदि इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं।

दिन प्रतिदिन प्रशासकीय शक्तियो का क्षेत्र बढता जा रहा है। आज के सदर्भ मे बढती हुई प्रशासकीय शक्तियाँ सगठित हितों के विरुद्ध जनसाधारण की रक्षा का

साधन समझी जाती है ।

प्रशासकीय शक्तियो के स्रोत

प्रशासकीय शक्तियाँ निम्नलिखित स्रोतो से प्राप्त होती है —

१. संविधान — कई बार संविधान मे ही कई महत्त्वपूर्ण अधिकार कुछ अधिकारियो को दिए जाते है । भारतीय संविधान के अनुसार समस्त कार्यपालिका की शक्तियाँ राष्ट्रपति मे निहित हैं । चुनाव आयोग को चुनाव सम्बन्धी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं ।

२. कानून — संसद और राज्यो की विधान सभाओ द्वारा बनाये गए कानूनो से बहुत सी प्रशासकीय शक्तियाँ अधिकारियो को प्राप्त होती हैं । भारतीय आय कर अधिनियम के अनुसार आय कर अधिकारियो को अनेक अधिकार प्राप्त हैं । उन क्षेत्रो मे जहाँ पर कानूनी राशनिंग व्यवस्था है, सिविल सप्लाई विभाग के अधिकारियो को कानून के द्वारा राशनिंग व्यवस्था को लागू करने के लिए अनेक प्रशासनिक अधिकार दिये जाते हैं ।

३ परम्परा — कई बार सरकारी अधिकारियो को परम्परा के आधार पर भी अधिकार प्राप्त होते है । बहुत समय से ऐसा होता आ रहा है, अतः भविष्य के लिए उसे स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लिया जाता है । एक विभाग के लिए आदेश विज्ञापित करने के पहले सम्बन्धित विभाग से परामर्श लेना इसका उदाहरण कहा जा सकता है ।

कार्यपद्धति — सरकारी कार्यालयो का सारा काम एक निश्चित कार्यपद्धति के अनुसार होता है । पद्धति यह अपेक्षा करती है कि यह काम कोई विशेष अधिकारी करेगा । प्रशासकीय शक्तियो को साधारणत दो भागो मे बाटा जा सकता है ।

(अ) अदमनकारी शक्तियाँ

(ब) बल प्रयोगात्मक शक्तियाँ

अदमनकारी शक्तियाँ वे शक्तियाँ हैं जहाँ राज्य की बातो को न मानने के फलस्वरूप कोई दण्ड व्यवस्था नही होती । ऐसी दशा मे राज्य बल प्रयोग के स्थान पर समझाने बुझाने पर जोर देता है । आजकल सरकार ने अनेक कार्यक्रम ऐसे चला रक्खे है जहाँ पर जनता चाहे तो सरकार की बातें नहीं माने । जैसे परिवार नियोजन का क्षेत्र लीजिए । सरकार परिवार नियोजन को प्रोत्साहन दे रही [redacted] । इसके लिए परिवार नियोजन केन्द्र परिवार नियोजन पखवाड़ा, प्रदर्शनी आदि का प्रबन्ध किया जा रहा है । इस सम्बन्ध मे जनता को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है । पर फिर भी यदि कोई इन बातो को नही मानता तो उसे दण्ड देने की कोई व्यवस्था नही है ।

अदमनकारी प्रशासकीय शक्तियो के प्रकार.—

१ **नीति की घोषणा** — जनता के सही मार्ग-दर्शन के लिए सरकार नीति

की घोषणा कर देती है। जैसे 'जय जवान, जय किसान,' स्वर्णदान, अथवा सोमवार की शाम को भोजन न करना आदि।

सरकार चाहती है कि जनता इन नीतियों के अनुसार काम करे। सोमवार की शाम को हर व्यक्ति ऐसा भोजन करे जिसमे अन्न का उपयोग न हो पर अपने निवास स्थान पर यदि कोई इस प्रकार का भोजन करता है जिसमे अन्न का उपयोग किया गया हो तो कोई दण्ड व्यवस्था नही है।

२. घोषणात्मक विधि–इसके अन्तर्गत कानून तो बनाया जाता है। पर उसके उल्लघन के लिए सजा नही दी जाती। जैसे शारदा एक्ट। इस अधिनियम के अनुसार शादी करने के लिए निम्नतम आयु सीमा निर्धारित कर दी गई है पर इसका उल्लघन करने के लिए किसी को दण्ड नहीं दिया जाता।

नीति की घोषणा एव घोषणात्मक विधि मे अन्तर यह है कि नीति की घोषणा तो कार्यपालिका द्वारा ही की जा सकती है। इस सम्बन्ध मे विधान मण्डल द्वारा किसी नियम आदि के बनाने की आवश्यकता नही होती। पर घोषणात्मक विधि विधान मण्डल द्वारा बनाया जाना जरूरी है। घोषणात्मक विधि एवं साधारण कानूनो मे अन्तर यह है कि घोषणात्मक विधि मे दण्ड व्यवस्था नही होती, जबकि साधारण विधियो मे दण्ड व्यवस्था होती है। यदि आप रात्रि के समय बिना रोशनी जलाये मोटर या मोटर साइकिल चलाते पकडे जायें तो आपका चालान किया जाता है और अदालत द्वारा दण्ड दिलवाया जाता है। क्योंकि कानून के अनुसार यह दण्डनीय अपराध है।

३. ऐच्छिक वाणिज्य मानक की स्थापना—सरकार ऐच्छिक वाणिज्य मानक की स्थापना करती है। जनता अपने सामान की इन मानक केन्द्रो पर जाच करवा कर अपने वाणिज्य वस्तुओं के लिए विशिष्ट सील प्राप्त करती है। यदि आप घी के निर्माता हैं तो आप अगमार्क की सील प्राप्त कर सकते हैं। वाणिज्य-वस्तुओं की बाजार मे बिक्री के लिए इस सील की प्राप्ति आवश्यक नही है। उत्पादक स्वेच्छा से अपने वाणिज्य वस्तु के विज्ञापन के लिए उसे प्राप्त करते हैं। अनेक व्यावसायिक उत्पादनो के लिए इण्डियन स्टैण्डर्स इन्स्टिट्यूट सील प्रदान करता है।

४. आदर्श उपस्थित करना–सरकार अपने कार्यों द्वारा जनता के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करती है जिससे कि जनता के सदस्य उस आदर्श का अनुसरण कर सकें। जैसे सरकार चाहती है कि उद्योगपति अपने औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे अपने कर्मचारियो के लिए उचित वेतन, निश्चित काम के घण्टे, सन्तोषजनक सेवाओं की शर्तें एवं पेंशन व्यवस्था करे, तो सरकार पहले अपने कर्मचारियो के लिए ऐसी व्यवस्था करती है जोकि उद्योगपतियो के लिए आदर्श उपस्थित करते हैं।

५. अधिवेशन बुलाना–सरकार सम्बन्धित व्यक्तियो अथवा उनके प्रतिनिधियो को बुलाकर सलाह-मशविरा करती है ताकि सरकार अपनी नीतियो को उनके सम्मुख प्रस्तुत कर सके और उन्हें समझा बुझाकर अपनी नीतियों को मानने के लिए राजी

कर सके। जैसे मिल मालिको अथवा उनके प्रतिनिधियो की एक कान्फ्रेंस बुलाकर उन्हे यह समझाना कि सुरक्षा के नियम पालन करना स्वय उनके निज के हित में है। मजदूरो की समस्या पर विचार करने के लिए कई बार त्रिदलीय अधिवेशन बुलाये जाते हैं जिनमे सरकार, मिल मालिक और मजदूरो के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। कान्फ्रेंस की सिफारिश सलाह के रूप में होती है और इन्हे मानने के लिए किसी को भी कानूनी रूप से बाध्य नहीं किया जा सकता।

६ प्रदर्शन–सरकार प्रदर्शन कर किसी काम के सही तरीको का प्रचार करती है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत सरकार ने ए० आर० पी० 'हवाई आक्रमण सुरक्षा' नामक सस्था बनाई थी जो इस बारे मे प्रदर्शन देती थी कि हवाई हमले के समय भोपू बजने पर क्या करना चाहिए और हमला समाप्त होने पर आग बुझाने और घायलो की सेवा सुरक्षा किस प्रकार करनी चाहिए। लोग अपनी स्वेच्छा से ही इन प्रदर्शनो मे जाते थे। किसी को भी अपनी इच्छा के विरुद्ध इसमे नही ले जाया जाता या और न वह प्रदर्शन मे बनाये गये तरीको को मानने को ही बाध्य था। आजकल किसानो को खेती के वैज्ञानिक तरीके दिखाने के लिए सरकार ने प्रदर्शन कृषिक्षेत्रो की स्थापना की है।

७ मध्यस्थता—कई बार विभिन्न वर्गों मे मतभेद हो जाने की दशा में सरकार उनके बीच मध्यस्थता करके समझौता करवाती है। जैसे मजदूरो और मिल-मालिको के बीच की समस्याएँ। इन दशाओ मे न तो सरकार मध्यस्थता करने को बाध्य है और न मिल-मालिक और मजदूर इनको मानने को बाध्य हैं। पर सरकार इन्हे अपने प्रभाव से एक साथ बैठा कर विचार-विमर्श करने पर राजी करती है।

८. आर्थिक सहायता—अनेक बार *किसी कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने* और उसको कार्यान्वित करने के लिए सस्ते ऋण या आर्थिक सहायता की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है। जैसे भारत सरकार राज्य सरकारो द्वारा परिवार नियोजन पर किये गए खर्च का अधिकाश भाग वहन कर लेती है। राज्य सरकार छोटे उद्योगो के लिए, किसानो को पैदावार बढाने मे सहायता देने के लिए ऋण एवं आर्थिक सहायता की व्यवस्था करती है। इन कार्यक्रमो के लिए सरकार की ओर से कोई जोर जबरदस्ती नही की जाती। आर्थिक सहायता के कारण लोग स्वेच्छा से इन कार्यक्रमो को अपना लेते हैं।

९. अभियान—कई बार किसी कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिए सरकार आन्दोलन-सप्ताह आदि चलाती है जैसे वन्य-प्राणी सप्ताह, सुरक्षा-सप्ताह, स्कूलचलो आन्दोलन आदि। वन्य-प्राणी सप्ताह मे जगली जानवरो को दिक न करने को जनता से अपील की जाती है। सुरक्षा-सप्ताह मे सडक पर दुर्घटनायें न हो इस उद्देश्य से यातायात-पुलिस जनता को प्रशिक्षित करने का प्रयत्न करती है। 'स्कूल-चलो' आन्दोलन मे ग्रामीण क्षेत्रों के बालको को स्कूल मे भर्ती कराने पर जोर दिया जाता है। और भी अनेक कार्यक्रमो के लिए सरकार इसी प्रकार के प्रयत्न

करती है।

१०. अपील

कई बार प्रभावशाली व्यक्ति जनता के नाम अपील जारी करते हैं। जैसे चदे के लिए अपील, या सरकार को अन्य किसी काम मे सहायता देने के लिए अपील। ऐसी अपीलो का अनुपालन करना कानूनी दृष्टि से आवश्यक नही होना।

११. प्रतिकूल प्रकाशन कभी-कभी कानून के विरुद्ध आचरण करने वालो के नाम आदि प्रकाशित करवा दिये जाते हैं। जैसे कालेज की परीक्षा मे नकल करने वालो के नाम नोटिस बोर्ड पर लगवा देना। नागपुर निगम एक समाचार-पत्रिका प्रकाशित करती है, जिसमे उन लोगो के नाम प्रकाशित किये जाते हैं, जिन्हे निगम के अधिकारी कर की चोरी करते हुए पकडते हैं। इस प्रकाशन को पढना या न पढना जनता की इच्छा पर है। निगम किसी को इसे खरीदने या पढ़ने पर बाध्य नही करता है।

अदमनकारी शक्तियाँ इन दशाओ मे काम में लाई जाती हैं

१. जबकि सविधान अथवा कानून मे इस काम को करने की व्यवस्था न हो तो अदमनकारी शक्तियो के प्रयोग से उन उद्देश्यो की पूर्ति का प्रयत्न किया जाता है। सरकार जनता को उसी काम के करने के लिए बाध्य कर सकती है जिसके लिए संविधान एव कानून आज्ञा दें। सविधान और कानून द्वारा निर्धारित सीमारेखा के बाहर जाने की दशा मे कोई भी नागरिक अदालत मे सरकारी आज्ञाओ की वैधता को चुनौती दे सकता है। ऐसी परिस्थितियो मे सरकार अदमनकारी शक्तियो का उपयोग करती है। उदाहरण के लिए, परिवार नियोजन के कार्यक्रम को लीजिए। सविधान या कानूनो मे नियोजित परिवार के लिए कही कुछ भी नही कहा गया है। अत सरकार प्रचार, प्रदर्शनी, परिवार नियोजन केन्द्र आदि खोल कर लोगो को परिवार नियोजन के साधनो को प्रयोग मे लाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

२ प्राय, ऐसा भी होता है कि कानून द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काफी नही होती। ऐसी दशा मे सरकार अदमनकारी शक्तियो के माध्यम से जनमत तैयार कर लेती है। मान लीजिए कि सरकार सडको को बिल्कुल साफ रखना चाहती है। सरकार के लिए यह कदापि सभव नही कि जो कोई भी सडक पर गन्दगी फैलाए, सिगरेट के टुकडे, रद्दी कागज आदि फेंके उसे पकड कर अदालत से सजा दिलाए। अतः सरकार यह चेष्टा करती है कि जनता मे ऐसी भावना प्रोत्साहित की जाए कि वे सडको को साफ रखने मे सरकार की सहायता करें। वे ऐसे काम न करें जिससे सड़कें गन्दी हों तथा गन्दगी फैलाने वालों को रोकें।

३. जब किसी कार्यक्रम के प्रति जनता से विरोध की आशका हो तो सरकार अदमनकारी शक्तियो का प्रयोग करती है। प्रजातन्त्रीय सरकारो को जनता की भावना के प्रति बड़ा ही सजग रहना पडता है क्योंकि प्रति पाँचवे वर्ष या उसके पहले ही उन्हें

वोट के लिए जनता के सामने जाना होता है। अदमनकारी शक्तियों के प्रयोग से लाभ यह होता है कि क्योंकि इन आज्ञाओं को मानना आवश्यक नहीं होता अतः जनता में विरोध जोर नहीं पकड़ता। जनता यदि चाहती है तो उनके अनुसार काम करती है और नहीं चाहती तो नहीं करती है। ऐसी दशा में इन आज्ञाओं को अदालत में चुनौती देने का प्रश्न ही नहीं उठता। सरकार की लोकप्रियता पर इसका असर इसलिए नहीं पड़ता कि यह ऐच्छिक रहता है और इसके लिए किसी प्रकार की जोर जबरदस्ती नहीं की जाती।

४. जब सरकार ऐसे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए चेष्टा कर रही हो, जिनके लिए जल्दी न हो, तो अदमनकारी शक्तियों का प्रयोग किया जाता है। उद्देश्य प्राप्ति की जल्दी तो रहती ही नहीं है, अतः सरकार बल प्रयोगात्मक शक्तियों से काम लेकर नया सिर दर्द मोल नहीं लेना चाहती। अदमनकारी शक्तियों के प्रयोग से सरकार के खर्च में कमी हो जाती है। चूँकि इन आज्ञाओं का पालन आवश्यक नहीं है इसलिए सरकार को निरीक्षक एवं कर्मचारी इस काम के लिए नहीं रखने पड़ते जो यह देखें कि इसका पालन हो रहा है या नहीं। अपराधियों को दण्ड दिलाने के खर्च एवं दिक्कत से भी सरकार बच जाती है।

५. उन कार्यक्षेत्रों में जो अभी अपेक्षाकृत नये हैं, और जिनके बारे में जनता को अधिक ज्ञान नहीं है, सरकार साधारणतः अदमनकारी शक्तियाँ जैसे प्रचार, प्रदर्शन, कान्फ्रेंस, आदि के द्वारा काम प्रारम्भ करती है।

६ कभी-कभी सरकार चाहते हुए भी बल प्रयोगात्मक शक्तियों का प्रयोग नहीं कर पाती क्योंकि सरकार के पास इतने साधन नहीं होते कि जनता से जबरदस्ती आज्ञा पालन करवाया जा सके। यदि सरकार यह चाहती है कि १८ वर्ष से कम के युवक और १४ वर्ष से कम की युवतियों का विवाह न हो और इस नियम का सख्ती से पालन हो तो सरकार को एक बहुत बड़ी संख्या में अधिकारी एवं कर्मचारी रखने होंगे जो हर विवाह के पहले जाँच पड़ताल कर यह पता लगावें कि कहीं नियमों का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है। चूँकि सरकार के पास इतने साधन नहीं अतः सरकार *अदमनकारी शक्तियों का प्रयोग करती है और प्रयत्न करती है कि ऐसा वातावरण* बन जाय कि जनता स्वतः ही इस कानून को मानने लग जाय।

बल प्रयोगात्मक शक्तियाँ

बल प्रयोगात्मक शक्तियाँ वे शक्तियाँ हैं जहाँ सरकार की आज्ञायें न मानने में दण्ड देने की व्यवस्था होती है। जैसे सरकार ने नियम बना रक्खा है कि सड़क पर बायें हाथ चलिए। जो ऐसा नहीं करते पुलिस उनका चालान करती है और नियमों के अनुसार उन्हें दण्ड दिया जाता है। राशनिंग के नियमों का उल्लंघन करने जैसे, जाली सदस्यों के नाम पर राशन लेने आदि पर भी दण्ड की व्यवस्था होती है। कर न देने वालों की सम्पत्ति नीलाम करवा दी जाती है। सरकार के कार्यक्षेत्र का बहुत

बडा भाग बल प्रयोगात्मक शक्तियो के ही क्षेत्र मे आता है जहाँ सरकार अपनी आज्ञाओं का पालन बलपूर्वक करवाती है। अन्य संस्थाओ और सरकार में यही अन्तर है कि जहा अन्य सस्थाएं या तो बल प्रयोग नही करती हैं या थोडा बहुत करती हैं, सरकार काफी हद तक बल प्रयोग करती है। सरकार अपने नियमो का उल्लघन करने वालो को जेल भेज सकती है। कई दशाओ मे आजन्म कारावास या प्राणदण्ड की व्यवस्था होती है। ये शक्तियां सरकार को छोड अन्य किसी संस्था को प्राप्त नही होती। लाठी चार्ज करवाना, गोली चलवाना, धारा १४४ लागू करना, मार्शल ला लागू करवाना, और जबरदस्ती आज्ञाएं मनवाना राज्य ही कर सकता है।

सरकारो के बल प्रयोग की सीमा संविधान तथा देश के कानून द्वारा निर्धारित होती है। कई बार क्राति आदि के बाद जब संविधान, कानून आदि रद्द कर दिये जाते हैं उस समय बल प्रयोग की सीमा सरकार की अपनी शक्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय जनमत पर निर्भर होती है। चूंकि सरकारें अन्य संस्थाओ की अपेक्षा अधिक दूर तक बल प्रयोग कर सकती हैं अत: लोग अन्य सस्थाओ की तुलना मे सरकार से अधिक डरते हैं।

बल प्रयोगात्मक शक्तियों के विभिन्न प्रकार

१. निरीक्षण

निरीक्षण दो प्रकार के होते हैं—आन्तरिक एव बाह्य। आन्तरिक निरीक्षण वह निरीक्षण है, जहाँ विभाग के प्रधान अथवा उनके द्वारा अधिकृत किसी अधिकारी द्वारा विभाग के कर्मचारियो के कामो का निरीक्षण किया जाय। जैसे कालेज के प्रिंसिपल या वाइस प्रिंसिपल द्वारा कालेज के स्टोर का निरीक्षण कराया जाए।

बाह्य निरीक्षण वह निरीक्षण है जहाँ बाहर के अधिकारी आकर निरीक्षण करे। बॉयलर इन्स्पेक्टर साहब द्वारा मिल के बॉयलर का निरीक्षण बाह्य निरीक्षण का उदाहरण है। यदि मिल के चीफ इंजीनियर या कोई दूसरे साहब निरीक्षण करते तो यह आन्तरिक निरीक्षण होता।

निरीक्षण का उद्देश्य यह देखना होता है कि सरकार या अन्य अधिकृत सत्ता द्वारा निर्धारित नियमो का सही प्रकार पालन हो रहा है या नही। प्रोफेसर वाइट ने निरीक्षण की परिभाषा इस प्रकार दी है—जननीति के आधार पर किसी बात का परीक्षण एव मूल्याकन। जैसे यूनिवर्सिटी हर दूसरे तीसरे वर्ष कालेजो मे निरीक्षण के लिए निरीक्षक मण्डल भेजती है। निरीक्षक मण्डल यह देखता है कि कालेज के अधिकारी पुस्तकालय, प्रयोगशाला, क्लास, खेल के मैदान, छात्रावास आदि के सम्बन्ध मे विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित नियमो का पालन कर रहे हैं अथवा नही।

२. अनुज्ञा

अनुज्ञा (Licence) किसी काम को करने के लिए सरकार द्वारा प्रदत्त आज्ञा-पत्र भी होता है। जैसे बन्दूक रखने की अनुज्ञा, रेडियो रखने की अनुज्ञा, मोटर

साइकिल या स्कूटर चलाने की अनुज्ञा। बिना अनुज्ञा के काम करना जिनके लिए कि अनुज्ञा-पत्र आवश्यक है, दण्डनीय अपराध है। जैसे बिना अनुज्ञा-पत्र के बन्दूक या रेडियो रखना दण्डनीय अपराध है। बिना अनुज्ञा-पत्र के मोटर साइकिल या स्कूटर चलाने वालो का पुलिस चालान करती है और उनके खिलाफ न्यायालय मे अभियोग चलवाती है।

अनुज्ञा-पत्र उन्ही व्यक्तियो को दिया जाता है जोकि इसकी प्राथमिक योग्यताओ की शर्तें पूरी करते हैं जैसे बन्दूक रखने का लाइसेंस उन्हे ही दिया जाता है जिनकी काफी एव निश्चित आय है और जिनका चरित्र ठीक है। मोटर साइकिल, स्कूटर चलाने का लाइसेंस उन्हे ही दिया जाता है जो मोटर वाहन अधिनियम द्वारा निर्धारित परीक्षा सफलता पूर्वक पास कर लेते है। सरकार कई दशाओ मे अनुज्ञा-पत्र को रद्द करने का अधिकार भी रखती है। यह तभी होता है जबकि अनुज्ञा-प्राप्त व्यक्ति द्वारा अनुज्ञा की शर्तों का उल्लघन किया जाए। या अनुज्ञा-पत्र का दुरुपयोग किया जाए। जैसे यदि बार-बार गाडी चलाने की अनुज्ञा की शर्तों का उल्लंघन किया जाए तो यह अनुज्ञा-पत्र रद्द किया जा सकता है।

अनुज्ञा-पत्र देने के लिए शर्तें बनी होती हैं। जो इन शर्तों को पूरा करते हैं उन्हे एक विशेष पद्धति द्वारा इसे प्रदान किया जाता है। कई बार अनुज्ञा-पत्र देने की शक्ति के उपयोग पर न्यायपालिका द्वारा नियत्रण भी रहता है। यह इसलिए होता है जिससे कि कार्यपालिका अनुज्ञा-पत्र प्रदान करने और रद्द करने की शक्ति का उपयोग बदले की भावना मे या राजनैतिक उद्देश्य से न कर सके।

३. जाँच करने की शक्तियाँ

यदि नियत्रण रखना हो तो सही तथ्यो का पता होना जरूरी है। जाँच करने की शक्तियाँ इन तथ्यो का पता लगाती हैं। इस शक्ति के द्वारा सूचनाए एकत्रित की जाती हैं जो आगे की नीतियाँ एव कार्यक्रमो के आधार बनती है। जाँच करने की शक्तियाँ कई बार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के मार्ग मे बाधा भी बन सकती हैं क्योकि सम्बन्धित व्यक्तियो की इच्छा के विरुद्ध जाँच करने की शक्तियो का उपयोग किया जा सकता है। जाँच करने की शक्तियाँ निम्न प्रकारो से काम मे लाई जा सकती हैं :

(अ) जिनके पास कोई सूचना हो, उसे सूचना देने की आज्ञा। जाच अधिकारी यदि यह समझता है कि किसी व्यक्ति के पास कोई ऐसी सूचना है जोकि उसके जाँच के विषय से सम्बन्धित हो तो वह उसे आज्ञा दे सकता है कि वह निश्चित समय पर उसके सम्मुख उपस्थित होकर यह सूचना बतावे। पुलिस उन लोगो को कई बार थाने पर बुलाकर पूछताछ करती है जिनसे उसे कुछ सूचना प्राप्त होने की आशा होती है।

(ब) जाँच अधिकारी यह भी आदेश दे सकता है कि स्थान विशेष की तलाशी ली जाए और वहा जो कागज पत्तर या अन्य सामान हो उसकी जब्ती कर ली जाय। सगीन मामलो मे पुलिस कई बार तलाशी लेती है। आयकर और वाणिज्यकर के

विभागों की ओर से कई बार छापा मारा जाता है और आवश्यक कागजात जब्त कर लिये जाते हैं।

(स) जाँच अधिकारी किसी स्थान विशेष पर जाकर घटनास्थल की जाँच कर सकते हैं। यदि कहीं डाका पडा हो, चोरी हुई हो अथवा अन्य कोई दुर्घटना हुई हो तो पुलिस अधिकारी घटनास्थल पर पहुँच कर जाँच-पड़ताल करते हैं।

४. निर्देशन की शक्ति

निर्देशन की शक्ति का उद्देश्य यह होता है कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को यह बता सके कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं करना है। उच्च अधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि वे समय-समय पर आवश्यक आज्ञाएं जारी कर काम का निर्देशन करें।

प्रशासकीय आदेश या निर्देश देने की शक्ति

प्रशासक अपने सरकारी कर्त्तव्य का पालन करते हुए अनेक आदेश देते है। आदेशों द्वारा ही नियमों का पालन करवाया जाता है। सरकारी अधिकारी जनहित मे आदेश जारी करते हैं। जैसे स्वास्थ्यरक्षा के लिए किसी कुंए के पानी का उपयोग न करने का आदेश। इन आदेशो का उल्लंघन करने वालों को दण्ड दिया जाता है। आप चाहे किसी सरकारी आदेश को अनुचित ही क्यो न समझें आपको ये आदेश मानने ही होंगे। यह बात दूसरी है कि आप किसी आदेश के विरुद्ध न्यायालय मे अपील करें और न्यायालय उसे अवैध घोषित कर दे। न्यायालय के निर्णय के बाद उस आदेश को मानने की आवश्यकता नही रह जाती है। पर यदि न्यायालय का फैसला आपके विरुद्ध होता है तो आपको आदेश मानने ही होंगे।

आदेश दो प्रकार के हो सकते हैं। (अ) विधेयात्मक आदेश और (ब) निषेधात्मक आदेश। विधेयात्मक आदेश वे होते है जहां किसी व्यक्ति को कुछ करने का आदेश दिया जाता है जैसे आयकर अधिकारी के कार्यालय मे उपस्थित होने का आदेश। निषेधात्मक आदेश में किसी व्यक्ति को किसी काम को न करने का निर्देश होता है जैसे किसी कमजोर पुलिया को उपयोग मे न लाने का आदेश।

नियम बनाने की शक्ति

आजकल प्रशासन का विषय बड़ा ही जटिल तथा गंभीर बनता जा रहा है। संसद तथा विधान सभाओं को इतना समय ही नही मिलता और न उनके सदस्यों मे इतनी तकनीकी योग्यता होती है कि वे वर्तमान औद्योगिक समाजों के लिए विस्तृत रूप से नियम कानून आदि बना सकें। फलतः संसद तथा विधान सभाएं कानूनों मे कुछ मोटी-मोटी बातें निर्धारित कर देती हैं। इस निर्धारित सीमारेखा के भीतर सरकारी विभाग नियम बनाते हैं।

सरकारी विभागों द्वारा बनाये गए इन नियमों को वही मान्यता प्राप्त है जो कि संसद या विधान सभा द्वारा निर्मित कानूनों को। इन नियमों का पालन करना

आवश्यक है। इनका उल्लघन करने वाले दण्ड के भागी होते हैं।

प्रशासकीय न्याय निर्णय

कई बार सरकारी विभागो के हाथो मे अर्धन्यायिक शक्तियां भी होती हैं। प्रशासकीय न्याय निर्णय की शक्ति इसी प्रकार की है। किसी प्रशासकीय विभाग द्वारा दो दलो के बीच झगडे की जाँच-पडताल तथा कानून एव तथ्य के आधार पर निर्णय को प्रशासकीय न्याय निर्णय कहते हैं।

इस प्रकार का झगडा सरकार तथा नागरिक, या दो नागरिको के बीच हो सकता है। प्रोफेसर वाइट के मतानुसार दो दल तथा उनके बीच झगडा प्रशासकीय न्याय निर्णय के लिए आवश्यक है।

प्रशासकीय न्याय निर्णय के फैसले मानने को दोनो दल बाध्य होते हैं। जब-तक कि विभागीय उच्च-प्रधिकारी अथवा न्यायालय के आदेश से फैसला निरस्त नही कर दिया जाय दोनो ही दलो के लिए इसे मानना आवश्यक होता है। इसका उल्लघन करने वाले दण्ड के भागी होते हैं।

प्रशासकीय शक्ति

शक्ति का तात्पर्य उस दण्ड से है जोकि सरकार की वैध आज्ञाए न मानने की दशा मे दी जा सकती है। दण्ड के भय से प्राय: लोग इच्छा न होने हुए भी आदेशो एव कानूनो का पालन करते है। कई बार जब जनता किसी भी प्रकार आज्ञाओ का पालन नही करती तो दण्ड से ही आज्ञाए मनवाई जाती हैं।

शक्तियाँ कई प्रकार की होती हैं

(१) जुर्माना या जेल—अग्रेजी शासनकाल मे जो लोग क्रान्तिकारियो की सहायता करते थे उनके विरुद्ध यह शक्ति काम मे लाई जाती थी।

(२) सामान एवं सम्पत्ति की जब्ती—अग्रेजी शासनकाल मे जो लोग सरकारी टैक्स आदि देने मे आना-कानी करते थे उनको चल तथा अचल सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी।

(३) यदि सरकार से कोई लाभ प्राप्त हो रहा हो तो उस लाभ को रोका जाना। जैसे पेंशन या वजीफा रोक देना।

(४) यदि सरकार के विरुद्ध कोई काम कर रहा हो तो उसे निवारक नजरबंदी कानून के अनुसार जेल मे बद किया जा सकता है।

(५) किसी वस्तु की आपूर्ति रोक देना—यदि आप बिजली या पानी का बिल समय पर जमा न करें, इनकी सप्लाई काट दी जाती है। टेलीफोन उपभोक्ता यदि समय पर बिल जमा न करे तो उनकी सचार-व्यवस्था को काट दिया जाता है।

(६) अनुज्ञा-पत्र जब्त कर लेना या उसका नवीनीकरण न करना। सभी अनुज्ञा-पत्र एक निश्चित अवधि के लिए ही जारी किये जाते हैं। अवधि के भीतर दुरुप-

योग की दशा मे अनुज्ञा-पत्र जब्त किये जा सकते हैं। यदि समय पूरा हो गया तो नवीनीकरण नही किया जाता। यदि आपके पास बन्दूक का अनुज्ञा-पत्र है और आपने बन्दूक का दुरुपयोग किया है तो आपका अनुज्ञा-पत्र जब्त किया जा सकता है या उसका नवीनीकरण रोका जा सकता है।

(७) अधिकारियो द्वारा तात्कालिक कार्यवाही—कई बार अधिकारियो को तत्काल ही कारंवाई करने का अधिकार होता है जैसे चोरी से सीमापार से माल लाने वालो के माल की जब्ती का अधिकार या स्वास्थ्य अधिकारियो को उन खाद्य वस्तुओ को नष्ट करने का अधिकार जोकि आदमियो के खाने योग्य नही है।

विशेष अध्ययन के लिए

१. वाइट . इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
२. एम० पी० शर्मा : लोक प्रशासन, सिद्धान्त एव व्यवहार

१३

प्रशासकीय कार्य

किसी भी विभाग मे देखें तो पता चलेगा कि प्रशासकीय कार्यों को दो भागों मे बाँटा जा सकता है। पहला, वे कार्य जो राजनैतिक स्तर पर होते हैं तथा दूसरे वे कार्य जो असैनिक अधिसेवा के स्तर पर होते हैं।

राजनैतिक स्तर—

विभागीय मन्त्री,
राज्य मन्त्री,
उप मन्त्री,
पार्लियामेंट्री सचिव।

असैनिक अधिसेवा—

(डायरेक्टर) निदेशक,
(ज्वॉइन्ट डायरेक्टर) संयुक्त निदेशक,
(डिप्टी डायरेक्टर) उप-निदेशक,
(असिस्टेंट डायरेक्टर) सहायक निदेशक,
अन्य पदाधिकारी एवं कर्मचारी

राजनैतिक स्तर पर प्रशासकीय कार्य

राजनैतिक स्तर के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं—

१ निर्णय करना

महत्वपूर्ण प्रशासकीय निर्णय राजनैतिक स्तर पर ही लिए जाते हैं। चाहे राजनैतिक नेता अपने नीचे के कर्मचारियों की राय मान लें, पर अधिकृत रूप से नीति सम्बन्धी मामलों मे निर्णय लेना राजनीतिज्ञों का ही काम है।

निर्णय का काम इस स्तर पर बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यो तो सभी स्तरो पर कुछ न कुछ निर्णय लिए जाते हैं पर नीचे के स्तरो पर लिए गए निर्णयो के लिए ये निर्णय नीति का काम करते हैं। इस स्तर पर लिए गए निर्णयो की सीमा रेखा के भीतर नीचे के विभिन्न स्तरो पर निर्णय लिए जाते हैं। निर्णय का महत्व इस बात से स्पष्ट हो जायेगा कि यदि निर्णय न हो तो प्रशासन सम्बन्धी सारे काम रुक जायेंगे। सारे काम चाहे वे बहुत बड़े हो अथवा बहुत ही छोटे हो निर्णय पर ही निर्भर करते हैं। एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। आप घर से कालेज के लिए

रवाना होते हैं। रास्ते में आपका मित्र मिल जाता है। वह यह प्रस्ताव रखता है कि आप उसके साथ मैटिनी शो में जायें, कालेज नहीं जायें। अब आपके लिए एक निर्णय लेना जरूरी हो गया है। कालेज जावें या मित्र के साथ सिनेमा। यदि निर्णय कालेज जाने के पक्ष में है तो आप मित्र से आज्ञा लेकर कालेज की ओर चल पड़ेंगे। यदि सिनेमा जाने का निर्णय होता है तो आप मित्र के साथ सिनेमा जायेंगे और एक दिन के मनोरंजन के कार्यक्रम के बाद दूसरे दिन ज्यादा अच्छी तरह काम करने को तैयार हो जायेंगे। यदि आप कोई निर्णय न लें और चौराहे पर खड़े अपना और अपने मित्र का समय नष्ट करें तो कालेज न जाने का नुकसान हुआ। आपका और आपके मित्र का समय नष्ट हुआ, और आपका मनोरंजन भी न हो सका। यह सब अनिर्णय के कारण हुआ। प्रशासकीय दृष्टि से अनिर्णय से बुरी कोई भी स्थिति नहीं हो सकती। गलत निर्णय कई बार परिस्थितियों के प्रभाव से सही साबित हो जा सकते हैं। अनिर्णय की स्थिति इस प्रकार गलत निर्णय से भी खराब होती है, क्योंकि अनिर्णय के कारण कोई अगला कदम नहीं उठाया जा सकता।

२. निर्णय के लिए उत्तरदायित्व स्वीकार करना

जो निर्णय लिए गए हैं उनके लिए उत्तरदायित्व स्वीकार करना भी राजनीतिज्ञों का काम है। यदि राजनैतिक स्तर पर यह निर्णय किया जाता है कि देश की उत्तरी सीमा पर रक्षा के लिए सेना भेजी जाय तो उसके लिए उत्तरदायित्व स्वीकार करना उनका कर्तव्य है। यह जिम्मेवारी संसद, अपने राजनैतिक दल और देश की आम जनता के प्रति होती है। यदि पार्लियामेंट चाहे तो मन्त्रिमण्डल को अविश्वास का प्रस्ताव पास कर हटा सकती है। पार्टी भी दल के सदस्यों के प्रति अनुशासनिक कार्यवाही करती है। जनता समाचार-पत्र, सभाओं आदि के माध्यम से आलोचना करके राजनीतिज्ञों को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाये रखती है।

३ राजनीतिज्ञों का तीसरा काम अपने निर्णयों को जनता को समझाना और जनता के सम्मुख उसका औचित्य स्थापित करना है। प्रजातन्त्र में सरकार का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि जनता उचित रीति से सरकार की नीति को समझे और सरकार के प्रति मित्रता की भावना रखे। निर्णयों को जनता को समझाना और जनता के सम्मुख उनका औचित्य स्थापित करना ऐसे काम हैं जोकि राजनीतिज्ञों को स्वयं ही करने पड़ते हैं। इस काम में प्रतिनिधान सम्भव नहीं है। असैनिक सेवा के सदस्य जनता के सम्मुख किसी नीति विशेष के समर्थक के रूप में यदि आयें तो इससे असैनिक सेवा के राजनीति में पड़ जाने का खतरा रहता है। यह काम राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री और उनके सहयोगी समय-समय पर राष्ट्र के नाम सवाद, पत्रकार सम्मेलन, सार्वजनिक सभाओं आदि के द्वारा करते हैं।

४. सरकार के कुशलता-पूर्वक काम करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार यह जाने कि जनता उसकी नीतियों के बारे [illegible] क्या सोचती है। उसकी

नीतियो का जनसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ता है यह पता लगाना भी राजनीतिज्ञो का ही काम है। राजनीतिज्ञ जनता के नेताओ से सम्पर्क, समाचार पत्रो से सम्पर्क और राजनैतिक दलो से सम्बन्ध के कारण सरकार को यह बताते हैं कि उनकी नीतियो का जनता पर क्या प्रभाव पडा है। यदि जनता मे कोई गलतफहमी हो गई हो तो उसे दूर करना राजनीतिज्ञो का काम है। राजनीतिज्ञ वास्तव मे जनता एव प्रशासन के बीच की कडी का काम करते हैं। वे प्रशासन तक जनता की बात और जनता तक प्रशासन की बात पहुँचाते हैं। प्रशासन को नेतृत्व प्रदान करना भी राजनीतिज्ञो का ही काम है। राजनीतिज्ञो के व्यक्तित्व पर ही प्रशासन का सर्वस्व निर्भर रहता है। यदि राजनीतिज्ञ ढग के हो और असैनिक सेवा का विश्वास प्राप्त कर उन्हे अपने साथ अच्छी तरह ले चल सकें तो प्रशासन ठीक तरह चलता है। अपने नेतृत्व के प्रभाव से राजनीतिज्ञ अपने विचारो को कार्यरूप मे परिणत करवाते हैं। राजनीतिज्ञ वास्तव मे प्रशासन नही करता, बल्कि यह देखता है कि उसके विचारो के अनुसार असैनिक सेवा के सदस्य प्रशासन चलाते हैं।

असैनिक सेवा स्तर पर प्रशासकीय कार्य

इस स्तर के प्रमुख प्रशासकीय कार्य इस प्रकार हैं—

१. परामर्श

असैनिक पदाधिकारी सारे कार्यालय के नियमो, आदेशो और पूर्व निर्णयो के ज्ञाता होते हैं। प्रशासन मे यह वर्ग स्थायित्व लाता है। राजनीतिज्ञ इस वर्ग पर परामर्श एव सूचना के लिए निर्भर करते हैं। यह वर्ग राजनैतिक नेताओ को यह बतलाता है कि क्या प्रशासकीय दृष्टि से सभव है और क्या सभव नही है। नीति निर्धारण एव नीति को कार्यान्वित करना दोनो मे ही यह वर्ग राजनैतिक नेताओ को सहायता देता है। इस वर्ग के बिना आज हम लोगो को जिस प्रकार का प्रशासन मिल रहा है वह नही मिलेगा। यह राजनैतिक नेताओ को यह बताता है कि किस प्रकार कम से कम व्यय मे अधिक से अधिक जनहित के कार्य किए जा सकते हैं।

२. कार्यक्रम निर्धारण

कार्यक्रम निर्धारण का काम राजनैतिक न होकर तकनीकी होता है। यह तो पहले ही निर्णय हो चुकता है कि क्या करना है। यह विवादास्पद होता है क्योंकि विभिन्न हित सरकार से अपने लाभ के लिये काम करवाना चाहते हैं। निर्णय के उपरान्त उस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए जो कदम उठाए जाते हैं वे विवादास्पद नही होते। इसमे सगठन के सम्बन्ध के निर्णय यथा कितना काम करना होगा, किस प्रकार कर्मचारियो आदि की नियुक्ति होगी, निरीक्षण की क्या व्यवस्था होगी। यह कार्यक्रम निर्धारण के अन्तर्गत आता है। यदि आप कालेज से लौटते समय अपने किसी साथी की पिटाई करने की योजना कार्यान्वित करें तो इस प्रकार के निर्णय जैसे आपके कौन-कौन साथी किन किन रास्तो से चलेंगे, कहाँ पर एक साथ मिलेंगे।

कौन पहले साइकिल से टक्कर देगा इस प्रकार के निर्णय कार्यक्रम निर्धारण के अन्तर्गत आते हैं।

३ उत्पादन

सभी सरकारी कार्यालयो का उद्देश्य किसी सेवा या वस्तु का उत्पादन करना है। इस सम्बन्ध मे सेवा स्तर पर कई प्रकार के काम किये जाते हैं। सबसे पहले तो मापदण्ड स्थापित किया जाता है। जैसे टंकक को कम से कम ४० शब्द प्रति मिनट की गति से टंकण करना चाहिए। आशुलिपिक को १२० शब्द प्रति मिनट की गति से श्रुतलेखन लिखना चाहिए। कार्यकर्ताओ का काम इसी मापदण्ड से मापा जाता है। दूसरा काम कर्मचारी वर्ग की सेवाओ को उचित ढग से काम मे लाना है। प्रशासकीय एजेन्सियाँ कर्मचारियो को प्रशिक्षण देती हैं, उनमे आपस मे काम का बँटवारा करती हैं। उनके ऊपर नियन्त्रण रखती हैं। यह देखना उनका काम है किसमे कर्मचारी नियमानुसार अपने कर्त्तव्यो को पूरा करें।

४. ओ० एण्ड एम० (O&M)

प्रशासकीय कारको का एक काम ओ० एण्ड एम० भी है। इसका उद्देश्य यह होता है कि कार्यपद्धति की जाँच की जाय और यह देखा जाय कि कार्यपद्धति उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कहाँ तक उपयुक्त है। यह इसलिए आवश्यक हो जाता है कि कई बार सगठन के उद्देश्य बदल जाते हैं, परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। बदले हुए उद्देश्य एवं बदली हुई परिस्थितियो के फलस्वरूप कार्य पद्धति का बदलना भी आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो बहुत शीघ्र एक स्थिति पैदा हो जाएगी जबकि प्रशासकीय कार्यपद्धति एकदम ही बेकार हो जाएगी क्योकि बदली हुई परिस्थितियो का सामना करने की योग्यता इसमे नही रह जाएगी।

५. प्रशासन के लिए उत्तरदायित्व स्वीकार करना

इस स्तर पर कई प्रकार के उत्तरदायित्व होते हैं। प्रथम, प्रशासन को निर्धारित नीति की सीमा के भीतर चलाने का। दूसरा, प्रशासन की कार्यकुशलता बनाए रखने का। तीसरा, वित्तीय उत्तरदायित्व का। प्रशासन को समस्त आय-व्यय का ब्योरा इस प्रकार रखना पड़ता है कि महालेखापाल व लेखा जाँच अधिकारी (Auditor & Comptroller General) तथा लोक लेखा-समिति (Public Accounts Committee) को सतुष्ट किया जा सके। प्रशासन पद-सोपान की व्यवस्था में कर्मचारियो पर नियन्त्रण रखने के लिए भी जिम्मेवार होता है।

विशेष अध्ययन के लिए

१. व्हाइट : इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

२. एम० पी० शर्मा - लोक-प्रशासन: सिद्धान्त एव व्यवहार

१४

उत्तरदायित्व

यह सदैव से ही समस्या रही है कि प्रशासन को किस प्रकार उत्तरदायी बनाया जाए। यदि प्रशासन पर नियन्त्रण न हो तो प्रशासन मनमानी करने लगे। प्राचीन काल में राजा पर नियन्त्रण रखने के लिए कुछ धार्मिक एवं राजनैतिक बन्धन थे। राजा धर्मशास्त्रों एवम् धर्मगुरुओं की आज्ञाओं के अनुसार काम करता था। परम्परा के कारण भी राजा की शक्तियों पर रोक रहती थी। वह परम्परा से प्राप्त जनता के अधिकारों का हनन करने की चेष्टा नहीं करता था। इसके साथ ही उसको अपने सरदारों की भी सहमति का ध्यान रखना पड़ता था क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं सरदारों की सहायता से विद्रोह आदि दबाये जाते थे। यदि अधिकांश सरदार राजा की किसी नीति का विरोध करते तो शायद वह उसे त्याग देता था।

उत्तरदायित्व क्या है—इसके दो अर्थ हो सकते हैं। विधेयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक अधिकारी को उचित ढंग से कानून की सीमा में अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। निषेधात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि किसी भी अधिकारी को गैरकानूनी ढंग से कोई काम नहीं करना चाहिए। प्रत्येक अधिकारी को आवश्यकता पड़ने पर यह दिखाना पड़ता है कि उसने अधिकार प्रयोग, जनहित को ध्यान में रख कर, कानून की सीमा के भीतर किया है।

इस प्रकार, जब हम उत्तरदायित्व की बात करते हैं तो हमारे सामने एक समस्या आती है, उत्तरदायित्व को निभाने के लिए आवश्यक है कि सारा काम कानून की सीमा में हो। अधिकारी अपने अधिकार-क्षेत्र में ही काम करें। यदि इसका पालन कठोर ढंग से किया जाए तो अधिकारियों को स्वविवेक से काम लेने की स्वतन्त्रता नहीं रह जाएगी। कानून के जटिल बन्धन में पड़कर वे कानून का पालन तो कर सकेंगे, पर जनहित का उद्देश्य सफल न हो सकेगा। समस्या इन दोनों सीमान्तों के बीच एक मध्य-मार्ग निकालने की है जिससे कि अधिकारी वर्ग उत्तरदायित्व की भावना से विहीन होकर मनमाना काम न करने लग जायें और दूसरी ओर ऐसी स्थिति न पैदा हो जाए जिससे कि अधिकारी स्वविवेक के अनुसार काम ही न कर सकें।

आधुनिक युग में प्रशासन को उत्तरदायी बनाये रखना बड़ा ही कठिन कार्य है। प्रशासन की जिम्मेदारियाँ बहुत अधिक बढ़ गई हैं। कर्मचारियों की संख्या

पहले कभी भी इतनी अधिक नही थी। प्रशासन की समस्याएँ अब पहले से कहीं अधिक जटिल हो गई है।

प्रशासन पर नियन्त्रण रखने के लिए निम्नलिखित साधन होते हैं:—

१. प्रशासनिक नियन्त्रण
२ संसद का नियन्त्रण
३ न्यायपालिका का नियन्त्रण
४ जनमत का नियन्त्रण

नियन्त्रण की सीमा विभिन्न देशों मे अलग-अलग होती है। यह तो संवैधानिक व्यवस्था पर निर्भर करता है। अमेरिका मे प्रशासन काँग्रेस के प्रति उसी हद तक जिम्मेवार नही है जिस सीमा तक भारत और इंगलैंड में है। भारत और इंगलैंड मे प्रशासन पर न्यायालयो का नियन्त्रण अमेरिका मे कहीं कम है। रूस में प्रशासन की जिम्मेवारी वस्तुत. कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति है।

प्रशासनिक नियन्त्रण

प्रशासनिक पद-सोपानात्मक सगठन नियन्त्रण का काम भी करता है। आप किसी दफ्तर मे जायें तो देखेंगे कि लिपिक अपनी फाइल अनुभाग अधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। अनुभाग अधिकारी का कर्तव्य होता है कि अपने वरिष्ठ अधिकारी के सम्मुख फाइल प्रस्तुत करने के पहले यह देखले कि प्रस्ताव आदि ठीक ढग से तैयार किये गए हैं या नही। यदि वह काम से सन्तुष्ट नहीं है तो लिपिक को बुला कर निर्देश देता है और निर्देश के अनुसार पुनः यह फाइल उसके सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। अनुभाग आफिसर द्वारा प्रस्तुत की गई फाइलो पर नियन्त्रण रखने का काम अवर सचिव का है। इसी तरह आगे भी नियन्त्रण रखा जाता है। यदि आप किसी कर्मचारी के काम से असन्तुष्ट हो तो चाहे लोक-प्रशासन हो, अथवा निजी प्रशासन आप उसके प्रशासकीय अधिकारी से शिकायत करते हैं। आप इसी कारण ऐसा करते है कि वह प्रशासकीय अधिकारी उसे सही ढग से काम करने की आज्ञा दे सकता है। सरकारी विभागो मे अनेक नियम उपनियम, आदेश, पूर्वादेश आदि सरकारी कर्मचारियो पर नियन्त्रण रखने के लिए होते हैं। प्रशासकीय श्रमिक पद विभाजन का यह उद्देश्य होता है कि इन प्रशासकीय नियमो तथा आदेशो आदि का उचित रूप से पालन हो सके। इस प्रकार की व्यवस्था इसलिए है कि काम सही ढग से हो, किसी भी प्रकार की गडबडी न हो। आवश्यकता होने पर उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियो को निर्देश दे सकता है। कर्मचारी वर्ग इन निर्देशो का पालन करने को बाध्य होता है। यदि कोई कर्मचारी निर्देशो का जान बूझ कर पालन न करे तो उससे स्पष्टीकरण माँगा जाता है और आवश्यकतानुसार उसे दण्ड भी दिया जाता है। पद सोपानात्मक सगठन का कार्य यह भी देखना है कि वे पदाधिकारी जिन्हे स्वविवेकीय शक्तियाँ प्रदान की गई हैं वे अपने स्वविवेक का सही तरीके से

प्रयोग कर रहे है या नही। यदि नही कर रहे हो तो इन शक्तियो के उचित उपयोग के लिए भी निर्देश दिये जाते है। संक्षेप मे, यह कह सकते हैं कि प्रशासकीय नियन्त्रण प्रशासन को चलाने के लिए बडा ही आवश्यक है। प्रशासन एक बार बिना अन्य किसी नियन्त्रण यथा ससदीय नियन्त्रण, न्यायालयो के नियन्त्रण आदि के भी चल सकता है परन्तु प्रशासकीय नियन्त्रण के बिना प्रशासन के चलने का कोई प्रश्न ही नही उठता।

संसद का नियन्त्रण

ससदीय शासन-प्रणाली वाले देशो मे संसद प्रशासन सम्बन्धी नीतियो को निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था मे मन्त्रि-मण्डल सैद्धान्तिक रूप मे वास्तव मे ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। चौथे आम चुनाव के बाद हरियाणा और उत्तर प्रदेश मे काग्रेसी सरकारो का पतन इसलिए हो गया कि विधानसभा मे उनके दल का बहुमत समाप्त हो गया। यदि किसी भी समय मन्त्रिमण्डल का ससद मे बहुमत न रहे तो उसे त्यागपत्र देना पडता है।

ससद का मन्त्रिमण्डल को हटाने के अतिरिक्त अन्य तरीको से भी प्रशासन पर नियन्त्रण रहता है।

१ प्रश्नो का समाधान मांगना—ससद और राज्य के विधानसभाओ मे दिन की कार्यवाही प्रश्नोत्तर काल से ही प्रारम्भ होती है। ससद या विधानसभा का कोई भी सदस्य प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विषय से सम्बन्धित प्रश्न पूछ सकता है। राजकीय अधिकारी एव मन्त्रीगण सदैव ही इस बात से भयभीत रहते है कि कही ऐसी कोई बात न हो जाए जिससे ससद मे कोई प्रश्न उठ खडा हो। यदि कोई मन्त्री चाहे तो किसी प्रश्न का उत्तर देने से जनहित मे मना कर सकता है। पर यदि बार बार ऐसा किया जाय तो संसद और जनता के मन मे सन्देह उत्पन्न हो सकता है।

२. कामरोको प्रस्ताव—इस प्रस्ताव का उद्देश्य यह होता है कि ससद अपना पूर्व निर्धारित कार्यक्रम स्थगित कर दे और अन्य कोई समस्या, जिसका विवरण उपयुक्त प्रस्ताव मे हो उस पर विचार किया जाय।

३. बजट पर बहस—बजट पर सामान्य बहस मे सरकार की नीतियो की आलोचना की जाती है। विभागीय मन्त्री बहस की समाप्ति पर आलोचनाओ का उत्तर देता है।

४. बजट मे कटौती का प्रस्ताव—यदि ससद बजट मे एक रुपये की भी कटौती का प्रस्ताव पास करदे तो यह मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव ही समझा जाता है। ऐसी स्थिति मे मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र दे देता है।

५ निन्दा प्रस्ताव—किसी एक मन्त्री के कार्यों का विरोध निन्दा प्रस्ताव द्वारा किया जाता है। यह नीति की आलोचना न होकर उसके कार्यान्वित करने की आलोचना है।

६ अविश्वास का प्रस्ताव—ससद नियमो के अनुसार मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध

अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकती है। यदि सदन मे ऐसा प्रस्ताव पास हो जाता है तो मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र दे देना पडता है।

७. समितियों आदि के द्वारा— ससद और विधान मण्डलो की दो समितियां, अनुमान समिति और लोक-लेखा समिति का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों समितियां सार्वजनिक व्यय से सम्बन्धित हैं। अनुमान समिति व्यय से पहले और लोक-लेखा समिति व्यय के बाद जाँच पड़ताल करती है। इन दोनो समितियो के प्रतिवेदनो पर ससद मे विचार विमर्श होता है।

विगत कुछ वर्षों में हमारे देश मे ससद द्वारा नियंत्रण काफी शक्तिहीन पड गया है। इसका कारण यह है कि सदस्यो पर दलीय नियत्रण बहुत अधिक बढ गया है। दल के सदस्यो को अपने दल के आदेशानुसार वोट देना ही पडता है। ऐसा न करने वालो के विरुद्ध दल अनुशासनिक कार्यवाही करता है। यद्यपि सविधान द्वारा सभी सदस्यो को भाषण एव वोट की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, और इसके लिए किसी प्रकार की अदालती कार्यवाही नही की जा सकती, पर दल अपने सदस्यो के प्रति कार्यवाही करने को स्वतन्त्र है।

पिछले कुछ दिनो से 'ओम्बड्समैन' (Ombudsman) की बड़ी चर्चा चल रही है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी लोकपाल और लोकआयुक्त आदि की नियुक्ति की सिफारिश की है। ये वास्तव मे ओम्बड्समैन के ही रूप हैं। ओम्बड्समैन ससद के प्रतिनिधि के रूप मे यह देखती है कि प्रशासन का कार्य संसद द्वारा बनाये गये नियमो के अनुसार चल रहा है या नही। यह उसी प्रकार की संस्था है जिस प्रकार महा-लेखापाल है। अन्तर केवल यही है कि महालेखापाल वित्तीय प्रशासन के ऊपर नियन्त्रण रखता है और ओम्बड्समैन सामान्य प्रशासन के ऊपर नियन्त्रण रखता है। जब ससद और प्रशासन विभिन्न हाथो मे थे तब ससदीय नियत्रण की संस्थाएं ठीक तरह से काम करती थी क्योंकि यदि प्रशासनिक अनियमितता की रिपोर्ट संसद का प्रतिनिधि ससद मे रखता तो ससद प्रशासन से जवाब तलब कर सकती थी, और प्रशासन को इस दोष का सतोषपूर्ण ढग से निराकरण करने के लिए बाध्य कर सकती थी। पर अब परिस्थितियां बदल गई हैं। प्रशासन और संसद का नेतृत्व एक ही हाथो—कैबिनेट—मे केन्द्रित हो गया है। आज यदि महालेखापाल या ओम्बड्समैन ससद में प्रशासनिक अनियमितता की शिकायत करें तो ससद मे उनकी ओर से आवाज उठाने वाला विरोधी दल ही होगा जो अल्पमत मे है। बहुमत सदैव कैबिनेट के आदेशानुसार ही मतदान देगा। यही कारण है कि जब लोक-लेखा समिति ने बार-बार अपने वार्षिक प्रति वेदनो मे 'जीप अपवाद' (Jeep Scandal) की चर्चा की तो तत्कालीन गृहमन्त्री प० गोविन्दवल्लभ पत ने कहा कि जहाँ तक हमारा प्रश्न है, हम इस मामले को बद हुआ समझते हैं, फिर भी यदि ससद चाहे तो हमें अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा हटा दे। गृहमन्त्री महोदय ऐसा बयान इसलिए दे सके कि उन्हे विश्वास था कि उनके दल का इतना बहुमत है कि उन्हें अविश्वास प्रस्ताव द्वारा हटाने का

सवाल ही नही उठता । आज के संदर्भ में लोकपाल, लोक आयुक्त और ओम्बड्समैन की सफलता संदेहपूर्ण है । इनकी सफलता के लिए आवश्यक है कि संसद का बहुमत इनका साथ दे और आवश्यकता पड़ने पर कैबिनेट पर दबाव डाले । संसद का बहुमत शायद ही अपने नेताओ का साथ छोड़कर ओम्बड्समैन का साथ दे ।

न्यायालयों का नियंत्रण

किसी भी प्रशासकीय आज्ञा या निर्णय को न्यायालय मे निम्न कारणो मे से किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है ।

१. क्योंकि आज्ञा या निर्णय असवैधानिक है ।

२. क्योकि आज्ञा या निर्णय लेने का अधिकार प्रशासनिक अधिकारी को नही था ।

३ क्योकि जिस कानून के अन्तर्गत ये आज्ञाये या निर्णय लिए गये हैं उसका कथित तात्पर्य नही है ।

यदि किसी आज्ञा अथवा निर्णय से किसी व्यक्ति को आपत्ति है तो यह व्यक्ति की जिम्मेवारी है कि मामले को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करवाये । जैसे यदि कालेज के प्रिंसिपल महोदय किसी विद्यार्थी को उपस्थिति कम होने के आधार पर परीक्षा मे बैठने से रोकें तथा विद्यार्थी प्रिंसिपल के निर्णय को गलत माने तो यह उस विद्यार्थी का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह न्यायालय मे मामले को ले जाय और निषेधाज्ञा (Injunction) प्राप्त करे । प्रिंसिपल महोदय की आज्ञायें तबतक जारी रहेगी जबतक कि न्यायालय द्वारा 'स्थगन आदेश' (Stay Order) न दे दिया जाय ।

न्यायालयो द्वारा नियंत्रण की कुछ सीमाये हैं ।

१. न्यायालय केवल यही देखता है कि कानून का अक्षरशः पालन हुआ या नही । यदि कानून का अक्षरशः पालन नही हुआ तो वे इसे अवैध घोषित कर देते हैं चाहे अधिकारी ने जनहित को ध्यान मे रख कर ही क्यो न काम किया हो ।

२ इस प्रकार का नियत्रण अत्यन्त ही मन्द गति से चलता है । न्यायालयो मे निर्णय होने मे कई बार तो वर्षो का समय लग जाता है ।

३. यह नियत्रण व्यय-साध्य भी है । न्यायालय के शुल्क, वकील बैरिस्टरो के शुल्क मे बहुत अधिक धन व्यय हो जाता है । यदि आप न्यायालय मे कोई अभियोग ले जाना चाहे तो इस प्रकार के व्यय के लिए तैयार रहना चाहिए ।

४ आधुनिक युग मे प्रशासकीय कार्य इतने अधिक बढ गए हैं कि न्यायालयो के लिए यह सभव नही कि उनमे से तीन चार प्रतिशत पर भी विचार कर सकें । इतने अधिक अभियोग न्यायालय के सम्मुख आ जायेंगे कि न्यायालयो के लिए कुछ कर सकना सम्भव न होगा ।

५. न्यायालय का नियत्रण साधारणतः उन्हीं दशाओ मे कारगर होता है

जहाँ आपका कोई अधिकार हो और उस अधिकार का हनन हुआ हो। अमेरिका में न्यायालयों ने यह फैसला दिया कि सरकारी नौकरी का अधिकार जनता को नहीं है। अतः सरकार द्वारा निष्ठा जाँच कार्यक्रम (Loyalty Checking Programme) पर न्यायालय नियंत्रण नहीं लगा सकता।

न्यायालयों के नियंत्रण से लाभ

१. इस प्रकार के नियंत्रण से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा होती है। प्रशासन कई बार लोगों के व्यक्तिगत अधिकारों पर कुठाराघात करता है। हमारे देश में अनेक बार न्यायालयों ने सरकारी आदेशों को रद्द कर दिया है क्योंकि वे आदेश मौलिक अधिकारों का हनन करते थे।

२ यह तो ठीक है कि न्यायालयों ने कुछ ही अभियोग जाते हैं। अनेक मामले ऐसे हैं जो न्यायालयों तक कदापि नहीं पहुँचते। पर सरकारी विभागों, कर्मचारियों और अधिकारियों को यह भय सदैव ही बना रहता है कि कहीं मामला न्यायालय तक न चला जाय। अतः वे सावधानी से काम करते हैं।

३. जनता को विश्वास रहता है कि उसके अधिकार सुरक्षित हैं। चाहे वह इन अधिकार का प्रयोग न करे, पर उसे अधिकार प्राप्त है और यदि आवश्यकता हो तो वह इन अधिकार का उपयोग कर सकती है।

४. यदि न्यायालयों द्वारा नियंत्रण नहीं हो तो सरकार मनमानी करने लगेगी। संविधान में दिये गए अधिकारों का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाएगा।

जनमत द्वारा नियंत्रण

उपरोक्त नियन्त्रणों के अतिरिक्त प्रजातन्त्रात्मक देशों में जनमत द्वारा भी सरकार और प्रशासकीय संस्थाओं पर नियंत्रण रहता है। यदि जनमत किसी कार्य के विपरीत हो तो उसको कार्यान्वित करने के लिए शक्ति का उपयोग आवश्यक हो जाता है। प्रजातन्त्रीय देशों में शक्ति से अधिक शासितों की सहमति पर बल दिया जाता है। वैसे भी यदि जनमत सरकारी नीतियों के विरुद्ध हो, तो चुनाव में सरकार का तख्ता पलट सकता है। अतः सरकारें इस प्रकार की नीतियाँ अपनाती हैं जिनमें कि जनता की अधिक से अधिक सहमति हो।

१ जनमत अत्यन्त प्रभावशाली होता है। जनता कुछ कार्यों को अच्छा समझती है, कुछ को खराब बताती है। सरकार इस प्रकार के काम कदापि नहीं कर सकती, जिन्हें लोग खराब समझते हों।

२. सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों में काम करने का एक तरीका विकसित हो जाता है। कर्मचारी कुछ बातों को अपना कर्त्तव्य और कुछ को अपना अधिकार मान कर काम करने लगते हैं। अधिकार और कर्त्तव्यों की इस सीमा को भंग करना सरकार के लिए कदापि सम्भव नहीं।

३. आजकल सरकार के हर क्षेत्र में विशेषज्ञों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

विशेषज्ञो के विचारो की अवहेलना सरकार कदापि नही कर सकती।

४ आर्थिक और राजनैतिक विचारधारा का भी प्रभाव सरकार पर पड़ता है। यदि सरकार इन प्रचलित विचारधाराओ के विरुद्ध काम करती है तो उसका विरोध अवश्यम्भावी है। यदि प्रचलित विचारधारा आर्थिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप न करने की है और सरकार द्वारा हस्तक्षेप होता है तो विरोध जरूर ही होगा।

प्रशासन पर चाहे वह सरकारी हो अथवा गैर-सरकारी नियत्रण अवश्य ही होना चाहिए। यदि नियंत्रण न हो तो प्रशासन मनमानी करेगा, और उत्तरदायी नहीं होगा। नियत्रण न तो इतना शिथिल हो कि प्रशासन पर कोई दबाव ही न हो, और न इतना कठोर ही हो कि प्रशासन नियंत्रण के भार से ही दब कर रह जाए। नियत्रण के लिए मध्यम मार्ग सबसे अधिक उपयुक्त है, जिससे प्रशासन जनता के प्रति उत्तरदायी बना रहे और साथ ही अच्छी तरह कार्यकुशलता से काम भी करता जाय।

विशेष अध्ययन के लिए

१. एम० पी० शर्मा : लोक-प्रशासन
२. वाइट : इट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

१५

कार्मिक प्रशासन

प्रशासकीय व्यवस्था में चाहे वह लोक-प्रशासन के क्षेत्र में हो, अथवा निजी प्रशासन के क्षेत्र में, कार्मिक वर्ग का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। बिना कार्मिक वर्ग के प्रशासन चल ही नहीं सकता। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जहां प्रशासन बिना विधानमंडल अथवा स्वतंत्र न्यायपालिका के चलाया गया है। उदाहरण के लिए, भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासन को लिया जा सकता है। उस समय न तो विधानमण्डल था और न अलग से न्यायपालिका ही थी। गवर्नर जनरल अपनी परामर्शदात्री समिति की सहायता से कानून बनाता था और कार्यपालिका के कर्मचारी इनको कार्यान्वित करते थे। वे ही कानून तोड़ने वालों को नियमानुसार दण्ड भी देते थे। परन्तु इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जहां बिना कार्मिक वर्ग के प्रशासन चलाया गया हो। यदि कार्मिक वर्ग न हो तो कौन तो विधानमंडल द्वारा बनाये गये नियमों को कार्यान्वित करेगा और कौन नियमों को भंग करने वालों को पकड़ेगा। अतः यह स्पष्ट है कि प्रशासकीय व्यवस्था को उचित रूप से चलाने के लिए कार्मिक वर्ग अपरिहार्य है।

प्रोफेसर हरमन फाइनर का कथन है कि "वास्तव में बिना इसके (नागरिक प्रशासन) सरकार का चलना असम्भव हो जायेगा"।[1] कार्मिक वर्ग में स्थायी प्रशिक्षित तथा वेतन भोगी कर्मचारी होते हैं। इनकी संख्या से सरकारों के कामों का कुछ आभास होता है। सभी देशों में सरकार के कार्मिकों की संख्या बढ़ रही है एवं सम्भवतया आगे आने वाले वर्षों में उनकी संख्या में वृद्धि ही होगी।

कार्मिक वर्ग की अपरिहार्यता के अतिरिक्त एक और भी बात ध्यानस्थ है। किसी भी प्रशासकीय व्यवस्था का गुणात्मक स्तर इसके कार्मिक वर्ग के गुणात्मक स्तर के समान ही होता है। जिस प्रकार बाजार में किसी वस्तु का विक्रय मूल्य बहुत अधिक समय तक उसके उत्पादन मूल्य से ज्यादा कम या अधिक नहीं हो सकता उसी

१. Herman Finer : Theory & Practice of Modern Government Chapter 27, PP. 709

२. वही, पृष्ठ ७०६

प्रकार किसी भी प्रशासकीय व्यवस्था का गुणात्मक स्तर कार्मिक वर्ग के गुणात्मक स्तर से ज्यादा अधिक ऊपर या नीचे नही हो सकता। अकार्यकुशल कार्मिक वर्ग से कार्यकुशल प्रशासन की आशा करना चील के घोंसले मे मांस की आशा करने के समान ही है। चूँकि आज प्रशासन ने हर कही अपने ऊपर बहुत सारा काम ले रखा है, और राष्ट्र का कल्याण बहुत कुछ कार्यकुशल प्रशासन पर ही निर्भर करता है, अत कार्यकुशल कार्मिक वर्ग की आवश्यकता सर्वविदित है।

आज "प्रबन्ध व्यवस्था का सब से महत्वपूर्ण अग कार्मिक वर्ग है। इसके ही कुशल प्रशासन पर प्रबन्ध व्यवस्था की सफलता व असफलता निर्भर करती है। चूँकि आज राष्ट्र का कल्याण सरकार की कार्यकुशलता पर निर्भर करता है, और यह कार्यकुशलता कार्मिक वर्ग पर निर्भर करती है। अतः कार्मिक वर्ग का प्रशासन अध्ययन एव मनन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र कहा जा सकता है।"[1]

भरती

यद्यपि अग्रेजी के (Recruitment) शब्द का हिन्दी अनुवाद भरती है। और अग्रेजी मे भी कई बार इस शब्द का उपयोग भरती के अर्थ मे भी किया जाता है, पर प्रशासकीय शब्दावली के अनुसार यह ठीक नही है। इसके अनुसार Recruitment का अर्थ सही प्रकार के प्रत्याशियो से नियुक्ति के हेतु विचारार्थ आवेदन दिलवाना है। भारत जैसे देशो मे जहा कि बहुत बडी सख्या मे लोग बेकार हैं और काम की तलाश मे घूमते-फिरते रहते है, वहाँ पर प्रत्याशियो से आवेदन दिलवाना कदापि कठिन नही। पर उन देशो मे जहाँ पूर्ण वृत्तिरूपता (Full Employment) है, वहा उचित प्रकार के प्रत्याशियो को ढूढ कर उनसे आवेदन दिलवाना कठिनाई का काम है।

प्रत्याशियो को रिक्त स्थानो की सूचना देने के लिए हमारे देश मे साधारणत समाचार पत्रो मे विज्ञापन दिए जाते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इडिया, तथा अन्य राष्ट्रीय समाचार पत्रो मे देगे जा सकते हैं। कई बार इनकी सूचना राजपत्रो मे प्रकाशित की जाती है। यदि अविलम्बनीय हो तो आकाशवाणी से सूचनाओ के रूप मे इनका स्मरण करवाया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्यालयो मे स्थित सूचनापट्टो पर भी विज्ञापनो की प्रतियाँ लगा दी जाती है। सेवा-योजना कार्यालय भी बेरोजगारो को रिक्त स्थानो के बारे मे सूचना देते रहते है।

इस प्रकार के प्रयासो को ऋणात्मक भरती कहते हैं। ऋणात्मक भरती से ऐसी परिस्थितियो मे जबकि देश मे लोग बेरोजगार हो काम चल जाता है क्योकि लोग काम प्राप्त करने के लिए चिंतित रहते हैं और इस दिशा मे सदैव प्रयत्नशील

---

१ राजस्थान विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर पत्राचार अध्ययन, निबंध ४. १०, कार्मिक प्रशासन कुछ समस्याये एव सम्भावनायें, प्रो० एम० सिन्हा पृ० १

रहते हैं। पर पूर्ण वृत्तिरूपता की स्थिति मे ऋणात्मक भरती से काम नही चलता है। उस समय मालिको मे आपस मे योग्य कर्मचारियो को प्राप्त करने की होड-सी लगी रहती है। सरकार निजी क्षेत्र के उद्योगपतियो से होड करती है। अतः सरकार तथा उद्योगपति दोनो ही धनात्मक भरती का मार्ग अपनाते हैं। दोनो ही अपनी सेवाओ के विशेष लाभो को पोस्टरो, फोल्डरो तथा चित्रित विज्ञापनों द्वारा सम्भावित प्रत्याशियो तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। अमेरिका मे प्रायः लोकसेवा आयोगो के सदस्य हाईस्कूलो तथा कालेजो मे जाते हैं तथा उन विद्यार्थियो से सम्पर्क स्थापित करते हैं जोकि अपनी शिक्षा समाप्त करने वाले है। वे उन्हे सेवाओ के बारे मे सूचना देते हैं तथा आग्रह करते हैं कि गर्मी की छुट्टियों या अन्य अवकाश के काल मे वे सरकारी कार्यालयो मे कुछ समय तक काम करके देखें कि उन्हे यह काम कैसा लगता है। भारत मे भी उच्च पदो के लिए जहाँ विशेष योग्यता वाले व्यक्तियो की आवश्यकता होती है, विश्वविद्यालय तथा अन्य नियोक्ता सरकारी भरती के मार्ग को ही अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी विश्वविद्यालय मे किसी विशेष योग्यता वाले प्रोफेसर की आवश्यकता है और वैसी योग्यता वाले व्यक्ति साधारणतः कम मिलते हैं तो विश्वविद्यालय प्रशासन उन व्यक्तियो से सम्पर्क स्थापित करता है। वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तों के बारे मे बातचीत करता है। कई बार अधिक वेतन देकर उन्हे विश्वविद्यालय की सेवा मे लाने का प्रयास किया जाता है। ऐसे प्रयासो को धनात्मक भरती कहेंगे।

भरती के प्रयासो की सफलता कई बातों पर निर्भर करती है। नियोक्ता की नियोक्ता के रूप मे कैसी प्रतिष्ठा है इस बात पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि नियोक्ता ईमानदार है, उसकी कार्मिक नीतियाँ सतोषजनक एवं न्याययुक्त हैं तो भरती के प्रयासो की सफलता की सभावना अधिक है। इसके विपरीत यदि नियोक्ता के बारे मे लोगो का यह विचार है कि उसकी कार्मिक नीतियाँ ठीक नही हैं तो भरती के प्रयासो की सफलता की सभावना कम हो जाती है। भारत मे सरकारी नौकरियों की सामाजिक प्रतिष्ठा गैरसरकारी नौकरियो की सामाजिक प्रतिष्ठा से साधारणतः अधिक है। लोगों का ऐसा विचार है कि सरकारी नौकरी से कोई भी व्यक्ति आसानी से हटाया नही जा सकता। सेवा से अवकाश प्राप्त करने पर उसे पेंशन मिलती है। सेवाकाल मे सेवा की शर्तें सन्तोषप्रद हैं। फलतः लोग सरकारी सेवाओ मे प्रवेश पाने के लिए उत्सुक रहते हैं। यह बात गैरसरकारी क्षेत्र के नियोक्ताओ के बारे मे नही कही जा सकती है। फलत भारत मे साधारणत गैरसरकारी नियोक्ताओ के भरती के प्रयासो की अपेक्षा सरकार के भरती के प्रयास अधिक सफल होते हैं। इसके विपरीत अमेरिका मे सरकारी सेवाओ की सामाजिक प्रतिष्ठा गैरसरकारी सेवाओ की सामाजिक प्रतिष्ठा मे कम है। कालेजो एव विश्वविद्यालयो के शिक्षक अपने अच्छे विद्यार्थियो को गैरसरकारी प्रतिष्ठानों मे जाने का परामर्श देते हैं। वहाँ ऐसा समझा जाता रहा है कि सरकारी सेवा मे वही व्यक्ति आते हैं जो गैरसरकारी

सेवाम्रो मे प्रवेश नही पा सकते । यद्यपि इन परिस्थितियो मे अब परिवर्तन आया है,[1] फिर भी वहाँ पर सरकारी नियोक्ताओ को गैरसरकारी नियोक्ताओ से भरती के क्षेत्र मे अन्य देशो की अपेक्षा अधिक कठोर प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है।

किसी भी नियोक्ता के लिए भरती के दो रास्ते होने हैं।

(अ) सीधी भरती (Direct Recruitment) इसमे कोई भी व्यक्ति जोकि आवश्यक योग्यतायें एव अनुभव रखता है, आवेदन दे सकता है। इसमे यह कोई शर्त नही होती कि प्रत्याशी नियोक्ता की सेवा मे हो। भारत मे केन्द्रीय लोकसेवा आयोग अखिल भारतीय एव अन्य केन्द्रीय सेवाम्रो के लिए खुली प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित करता है। राजस्थान लोकसेवा आयोग भी आर० ए० एस० तथा अन्य राजकीय सेवाम्रो के लिए खुली प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित करता है। विश्वविद्यालयो मे रीडर, प्रोफेसर तथा लेक्चरार की नियुक्ति के लिए भी समाचार पत्रो मे अक्सर विज्ञापन निकला करते हैं। यह सब सीधी भरती के उदाहरण हैं।

(ब) पदोन्नति द्वारा भरती—इसमे केवल वही प्रत्याशी आवेदन दे सकते है जो कि पहले से ही नियोक्ता की सेवा मे हैं। बाहर वालो को (जोकि उस नियोक्ता की सेवा मे नही हैं) आवेदन-पत्र देने का अधिकार नही है। भारत मे आई० ए० एस० तथा आई० पी० एस० मे १५% स्थान पदोन्नति द्वारा भरती के लिए सुरक्षित हैं। राजस्थान सवर्ग के आई० ए० एस० तथा आई० पी० एस० के पदो के १५% के लिए राजस्थान प्रशासकीय एव पुलिस सेवा के अधिकारियों मे से पदोन्नति द्वारा भरती की जाती है। इन पदो के लिए बाहर का कोई प्रत्याशी चाहे वह कितना भी योग्य क्यो न हो आवेदन-पत्र नही दे सकता। अखिल भारतीय एव केन्द्रीय सेवाम्रों के चयन पद-क्रम के लिए इन सेवाम्रो के सदस्य ही योग्य पात्रता रखते हैं। चाहे आई० ए० एस० या आई० पी० एस० का कोई अधिकारी सेलेक्शन ग्रेड न पा सके, पर जिस किसी को यह ग्रेड मिलेगा वह आई० ए० एस० अथवा आई० पी० एस० का अधिकारी ही होगा। यदि किसी विश्वविद्यालय मे किसी विषय मे रीडर का पद रिक्त होता है और विश्वविद्यालय बाहर के किसी व्यक्ति की अभ्यर्थिता पर विचार नही करता, तथा अपने ही व्याख्याताओ मे से किसी एक को इस पद पर नियुक्त करता है, तो यह पदोन्नति द्वारा भरती का उदाहरण होगा।

किसी भी सगठन मे किस सीमा तक सीधी भरती की जाये तथा कहाँ तक पदोन्नति द्वारा भरती की जाये सदैव से ही विवादास्पद विषय रहा है। जो लोग किसी नियोक्ता की सेवा मे हैं वे सदैव ही यह चाहते हैं कि सारे ऊचे पद पदोन्नति द्वारा ही भरे जायें। ऐसी स्थिति मे उन्हे पदोन्नति के अवसर अधिक प्राप्त होंगे। इसके

१. Dimock & Dimock: Public Administration, A career in Government Para 2. pp. 29

विपरीत नियोक्ता चाहते हैं कि उन्हें बाहर से भी भरती का मौका मिले ताकि ऊंचे पदों पर नियुक्ति के लिए उन्हें अपने कर्मचारियों तक ही सीमित न रहना पड़े। भारत में केन्द्रीय सरकार में अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओं की सीधी भरती के बाद ऊपर के सभी पद पदोन्नति द्वारा ही भरे जाते हैं। सैन्य सेवाओं के लिए भरती दो स्तरों पर होती है। एक तो सैनिक स्तर और दूसरा कमीशन स्तर। सैनिक स्तर में पदोन्नति द्वारा ही सभी कमीशन-पूर्व पदों पर नियुक्ति होती है। सूबेदार, हवलदार या सूबेदार मेजर के पद पर सीधी नियुक्ति कभी नहीं होती। कमीशन स्तर के पदों के लिए सेकेंड लेफ्टिनेंट या समकक्ष दर्जे के अधिकारियों से सीधी भरती होती हैं। ऊपर के सभी पद पदोन्नति द्वारा ही भरे जाते हैं। सेना में मेजर या कर्नल के पद के लिए सीधी भरती कभी नहीं होती। इसके विपरीत विश्वविद्यालयों में लेक्चरर, रीडर, प्रोफेसर के पदों पर सीधी भरती की ही प्रथा है।

चयन

प्रजातंत्रीय देशों में लोक सेवाओं के लिए चयन योग्यता के आधार पर होता है। योग्यता के आधार का तात्पर्य यह है कि प्रत्याशियों में से सबसे योग्य व्यक्ति को ही चुना जाना चाहिये। चयन में प्रत्याशी की सामाजिक स्थिति या उसके धार्मिक विश्वास का कोई ख्याल नहीं किया जाता है। कई देशों में स्त्री पुरुष समान रूप से सरकारी सेवाओं के लिए निर्वाच-योग्य माने जाते हैं। भारत के संविधान की धारा १६ में यह व्यवस्था है कि सभी नागरिकों को सरकारी नौकरियों के लिए समान अवसर दिया जाना चाहिए। किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म-स्थान आदि के आधार पर कोई भेदभाव असवैधानिक घोषित किया गया है। अप्रजातंत्रीय प्रशासकीय व्यवस्थाओं में प्रत्याशी की सामाजिक स्थिति भी चयन के समय ध्यान में रक्खी जाती है। अंग्रेजी शासन-काल में तथा देशी रजवाड़ों के शासन में सम्मानित परिवारों के लोगों को सरकारी सेवाओं में अधिमान दिया जाता था। रूस में समस्त उच्च पदों पर या तो पार्टी के सदस्य अथवा पार्टी से सहानुभूति रखने वाले लोग ही नियुक्त किए जाते हैं। यदि धर्म निरपेक्ष राज्य नहीं है, तो धार्मिक आधार पर भी भेदभाव किए जाते हैं। लिंग के आधार पर भेदभाव भी सरकारी सेवाओं में देखे जाते हैं। अंग्रेजी शासन काल में कोई भी महिला आई० सी० एस० या आई० पी० में नहीं थी।

योग्यता के आधार को कार्यान्वित करने में मुख्य रूप से दो प्रकार की असुविधायें सामने आती हैं। पहली असुविधा तो यह होती है कि योग्यता की परिभाषा क्या हो तथा इसकी ठीक-ठीक परख किस प्रकार की जाए। अनेक बार प्रत्याशी यह कहते देखे गये हैं कि चयन का आधार योग्यता न होकर राजनैतिक दबाव रहा है। यह बात उस समय और भी उभर कर सामने आती है जब चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर ही होता है। साक्षात्कार मण्डल कभी जानबूझ कर और

अनजाने कुछ प्रत्याशियो के हितो को आगे बढाता है। तथा कुछ के हितो को हानि पहुँचाता है। यदि ये आरोप सत्य हैं तो यह कदापि नही माना जा सकता कि चयन का आधार योग्यता रहा है। योग्यता के आधार को कार्यान्वित करने मे दूसरी दिक्कत देश के कानून, सविधान या परम्परा से उत्पन्न होती है। भारत मे यद्यपि सविधान मे सभी नागरिको को सरकारी सेवाओ मे प्रवेश पाने के लिए समान अवसर की घोषणा की गई है, पर साथ ही समाज के पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी सेवाओ के स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था भी है। किसी एक वर्ग विशेष के लिए स्थान सुरक्षित करना सामाजिक दृष्टि से चाहे जितना भी उचित क्यो न हो, योग्यता के आधार पर चयन के मार्ग मे बाधा अवश्य है। ठीक यही स्थिति अमेरिका मे वैटरन्स प्रिफरेंस (Veteran's preference) को लेकर उत्पन्न होती है। इसके अनुसार युद्ध मे घायल, अगक्षत अथवा मृत हो जाने वाले व्यक्तियो पर निर्भर लोगो को सरकारी सेवाओ मे प्रवेश के लिए कुछ सुविधाएं मिलती हैं।

इसके अतिरिक्त राजनैतिक नियुक्तियो तथा कुछ पदो को योग्यता प्रथा से अलग रखने से भी योग्यता के आधार पर चयन मे बाधा पहुँचती है।

नियुक्ति करने वाले अधिकारी का स्थान निरूपण

इस सम्बन्ध मे दो प्रकार की विचारधाराएं मिलती है। एक विचारधारा तो यह है कि सभी पदाधिकारियो का मतदान द्वारा चुनाव होना चाहिए। ये अधिकारी सीमित अवधि के लिए ही चुने जाने चाहिए जिससे कि सभी को अवसर मिल सके और किसी भी पदाधिकारी का निहित स्वार्थ उत्पन्न न हो सके। दूसरी विचारधारा यह है कि केवल वे ही पदाधिकारी चुने जाने चाहिएं जिन्हें नीति निर्माण करना है। अन्य पदाधिकारियो का योग्यता के आधार पर चयन किया जाना चाहिए। प्रजातंत्रीय देशो मे साधारणत यह काम लोक-सेवा आयोगो को दिया जाता है। औपचारिक रूप से नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है।

योग्यतायें

साधारणत सरकारी सेवाओ मे प्रवेश पाने के लिए निम्नलिखित योग्यतायें निर्धारित की जाती हैं—

१. नागरिकता—सरकारी नौकरियां साधारणतः नागरिको को ही दी जाती हैं।

२. लिंग—कुछ दिन पहले तक सरकारी नौकरियां साधारणत. पुरुषो को ही मिलती थी। भारत मे स्त्रियो एव पुरुषो को समान रूप से सरकारी नौकरियो मे प्रवेश पाने का अधिकार है।

३. आयु—विभिन्न पदो के लिए भिन्न-भिन्न आयु सीमायें निर्धारित की जाती हैं। साधारणतः भारत मे २४ वर्ष के बाद सरकारी सेवाओ मे प्रवेश नहीं दिया जाता है। पर विशेष योग्यता वाले पदो पर भरती के लिए आयु सीमा अधिक होती

है। अमेरिका में ६० या ६५ वर्षों की अधिकतम आयु सीमा निर्धारित कर दी गई है। उससे अधिक आयु का कोई व्यक्ति सरकारी सेवा मे प्रवेश नही पा सकता।

४. व्यक्तिगत योग्यतायें—इस श्रेणी मे ईमानदारी, स्वामीभक्ति, दूसरों के साथ मिलजुल कर काम करने आदि की योग्यता आती है।

५. शिक्षा—डिग्री या कोई अन्य शैक्षणिक योग्यता। भारत मे अधिकांश पदो के लिए विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त होना आवश्यक है।

६. अनुभव—जहाँ कम आयु मे ही सरकारी सेवाओ मे भर्ती की प्रथा है वहाँ पर अनुभव की आवश्यकता प्राय नही होती है। भारत मे आर० ए० एस० तथा आई० ए० एस० मे भरती के लिए किसी प्रकार का अनुभव आवश्यक नहीं है।

७. तकनीकी अनुभव—इस प्रकार के अनुभव की आवश्यकता अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इन्जीनियर, वकील, डाक्टर आदि के पदो पर नियुक्ति के लिए होती है।

योग्यता का निर्धारण

योग्यता के निर्धारण के लिए प्रोफेसर विलोबी ने निम्नलिखित चार तरीके बताये हैं:—

१. नियुक्ति करने वाले अधिकारी का व्यक्तिगत निर्णय
२. चरित्र एव योग्यता आदि का प्रमाण-पत्र
३. पूर्व अनुभव का रिकार्ड
   (अ) शैक्षणिक
   (ब) व्यावसायिक
४ परीक्षायें
   (अ) अप्रतियोगी परीक्षायें
   (ब) प्रतियोगी परीक्षायें

योग्यता के निर्धारण के लिए प्रजातन्त्रीय देशो मे एक स्वतन्त्र आयोग सिविल सर्विस कमीशन या पब्लिक सर्विस कमीशन के नाम पर बनाया जाता है। भारत, इगलैंड, अमेरिका आदि देशो मे इसी प्रकार की व्यवस्था है। भारत मे तो केन्द्रीय आयोग के अलावा प्रत्येक राज्य मे लोक-सेवा आयोग की व्यवस्था है। लोक-सेवा आयोग प्रत्याशियों की योग्यताओं तथा अनुभव आदि की जाँच पडताल करने के बाद यदि उन्हे नियुक्ति के योग्य समझता है तो सरकार के पास उनके नाम भेज देता है। नियुक्तियाँ सरकार के द्वारा की जाती है, आयोग के द्वारा नही। भारत मे आयोग निम्नलिखित तरीको से योग्यता निर्धारण करता है—

१. लिखित परीक्षा—साक्षात्कार के द्वारा। इस श्रेणी मे आई० ए० एस० तथा दूसरी सेवाओं के लिए प्रतियोगी परीक्षायें, आर० ए० एस० तथा दूसरी सेवाओं के लिए प्रतियोगी परीक्षायें आदि आती है।

२. केवल साक्षात्कार के द्वारा—तकनीकी पदो पर नियुक्ति के लिए चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर ही किया जाता है।

भारत मे कमीशन द्वारा भरती के अलावा निम्न श्रेणी के पदाधिकारियो के लिए सरकारी विभाग विभागीय परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रत्याशियो का चयन करते हैं। रेलवे अपने निम्न श्रेणी के कर्मचारियो का चयन देश के विभिन्न भागो मे स्थित रेलवे सर्विसेज सेलेक्शन बोर्ड के द्वारा करता है।

पदोन्नति—Promotion

हर कर्मचारी चाहता है कि वह आगे बढे। उसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया जाये, उसका दर्जा बढ़े और उसकी आय मे भी वृद्धि हो। यह पदोन्नति से ही सभव है।

किसी भी सगठन मे कार्मिक वर्ग की आवश्यकता होती है। कार्मिक वर्ग की भरती तो करनी ही है। यदि सगठन मे ही ऐसे योग्य व्यक्ति हो जिन्हे पदोन्नति से आगे बढाया जा सकता है, तो उन्हे अवसर दिया जाना चाहिए। जो लोग किसी संगठन मे काम कर रहे हैं, यदि वे योग्य हैं तो सगठन के उच्च पदो पर बाहर वालो से पहले उनका अधिकार होना चाहिए। भारत और इगलैंड जैसे देश मे जहाँ लोग सरकारी सेवाओ को जीवन वृत्ति बनाते हैं वहा यह आशा करना सर्वथा अनुचित होगा कि लोग जिस पद पर सरकारी सेवा मे प्रवेश करेंगे वही से उनकी सेवा निवृत्ति भी हो जायेगी। जो लोग आई० ए० एस० मे लिए जाते हैं उनसे यह आशा की जाती है कि वे राज्य के ऊंचे पदो को बाद मे सभालेंगे। यद्यपि सरकार यह गारन्टी नही करती कि सभी आई० ए० एस० अधिकारी सचिव या मुख्य सचिव के पद पर पहुँच ही जायेंगे, पर यह गारन्टी अवश्य करती है कि इन पदो पर केवल आई० ए० एस० के अधिकारी ही लिए जायेंगे।

किसी भी सगठन मे पदोन्नति की व्यवस्था निम्नलिखित कारणो से आवश्यक होती है।

१. पदोन्नति के कारण अधिक योग्य कर्मचारी नियुक्त किए जा सकते हैं। किसी भी सगठन मे केवल बाहर से भरती कर के ही सगठन को चलाना कदापि सभव नही। कुछ पद ऐसे अवश्य होते हैं कि जो सभी सगठनो मे एक से ही होते हैं, पर अधिकतर पदो के लिए सगठन विशेष का ज्ञान होना, उसकी नीतियो, कार्य-प्रणाली एव विशेषताओ का ज्ञान होना आवश्यक होता है। पदोन्नति से ऐसे लोगो को चुना जा सकता है, जिन्हे सगठन के बारे मे विशेष रूप से जानकारी है।

२. पदोन्नति द्वारा जिस व्यक्ति को चुनना है, वह व्यक्ति सगठन मे काम कर चुका है। सगठन उस व्यक्ति को जानता है। उसकी योग्यताओ एव कमजोरियों के बारे मे सगठन को पूरी जानकारी है। ऐसी स्थिति मे चुने जाने वाले व्यक्तियो के सम्बन्ध मे भूल होने की सम्भावना नही के बराबर ही होती है।

३. पदोन्नति अभिप्रेरणा का स्रोत है। कार्मिक वर्ग यह समझता है कि परिश्रम से काम करने से वह आगे बढ़ सकता है अतः वह अपने कार्य में पूरी तत्परता रखता है। यदि पदोन्नति की व्यवस्था न हो तो कर्मचारीगण अभिप्रेरणा की कमी के कारण अच्छी तरह काम नहीं कर सकेंगे। यदि ऊँचे पदों पर बाहर से लोगों को बुलाया जाए तो संगठन के लोगों के लिए कोई अभिप्रेरणा नहीं रह जाती।

४. पदोन्नति के कारण लोगों को सन्तोष रहता है। यदि पदोन्नति न हो तो लोग दूसरे संगठनों में जाने का प्रयास करने लगेंगे। संगठन छोड़ कर जाने वालों की संख्या में वृद्धि होगी। जबतक नये लोग इन स्थानों पर नियुक्त नहीं किए जाते, काम की हानि होगी। साथ ही भर्ती करने में भी संगठन को अधिक व्यय उठाना पड़ेगा। भारतीय विश्वविद्यालयों में सरकारी सेवाओं की अपेक्षा अधिक लोग नौकरी छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं। इसका एक कारण विश्वविद्यालयों में पदोन्नति का अवसर न होना ही है।

पदोन्नति क्या है ?

प्रायः इस बारे में भ्रम हो जाता है कि पदोन्नति क्या है ? कई लोग वार्षिक वेतन-वृद्धि को ही पदोन्नति मान लेते हैं। कई लोग पदोन्नति को स्थानान्तरण में सम्बन्धित मानते हैं। दोनों ही विचार असत्य हैं। वार्षिक वेतन वृद्धि पदोन्नति नहीं है। वार्षिक वेतन वृद्धि तो प्रत्येक कर्मचारी को अपने वेतनमान के अनुसार एक वर्ष या दो वर्ष पूरा करने पर मिलती है। पदोन्नति का तात्पर्य है कि कोई कर्मचारी अपने पद से ऊपर के पद पर नियुक्त किया जाए जहाँ उसका वेतनमान दूसरा हो। जैसे यदि कोई प्राध्यापक प्रवाचक हो जाए, अथवा प्रवाचक आचार्य हो जाए तो इसे पदोन्नति कहेंगे क्योंकि प्रवाचक, प्राध्यापक से ऊँचे दर्जे का पद है और प्रवाचक से ऊँचे दर्जे का पद आचार्य है। प्राध्यापक के वेतनमान से प्रवाचक का वेतनमान अधिक है, और प्रवाचक का वेतनमान से आचार्य का वेतनमान अधिक है। इस प्रकार पदोन्नति का स्थानान्तरण से भी कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। पदोन्नति बिना स्थानान्तरण अथवा स्थानान्तरण के साथ हो सकती है।

पदोन्नति के लिए यह आवश्यक है कि जनसाधारण में विज्ञापन देकर प्रत्याशियों को निमंत्रित न किया जाए। यदि जन साधारण में विज्ञापन देकर प्रत्याशियों को निमंत्रित किया जाता है, तो चाहे संगठन में काम करने वाला व्यक्ति ही क्यों न चुन लिया गया हो, इसे पदोन्नति नहीं कह सकते। यह कोई तर्क नहीं कि विज्ञापन के फलस्वरूप किसी प्रत्याशी ने आवेदन पत्र नहीं भेजा। केवल संगठन के लोगों ने ही आवेदन दिया था अतः यह पदोन्नति हो गया। पदोन्नति के लिए आवश्यक है कि संगठन में काम करने वालों को ही निमंत्रित किया जाए एवं चयन की प्रक्रिया उन्हीं तक सीमित रहे। चाहे उन्हें चुनने के लिए किसी भी प्रकार की व्यवस्था क्यों न अपनायी जाए, इससे पदोन्नति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उन्हें लिखित परीक्षा में

बैठा कर, अथवा साक्षात्कार के लिए बुलाकर चुना जा सकता है। संगठन के बाहर के प्रत्याशियो को न निमंत्रित करना पदोन्नति के लिए आवश्यक है। बाहर के प्रत्याशियो से आवेदन पत्र आमंत्रित किये गए अथवा नही इसी पर इस बात का निर्णय निर्भर करता है *कि यह पदोन्नति है या नही*। उदाहरण के लिए, यदि विश्वविद्यालय मे प्रवाचक का कोई पद रिक्त होता है और उसके लिए केवल इसी विश्वविद्यालय के प्राध्यापको मे से चयन होता है, बाहर के प्रत्याशियो को विज्ञापन द्वारा आमंत्रित नहीं किया गया है, तो यह पदोन्नति है। पर यदि बाहर के प्रत्याशियो को विज्ञापन द्वारा आमंत्रित किया गया है, चाहे किसी ने आवेदन-पत्र दिया हो, अथवा नही, तो यह *पदोन्नति नहीं है। चाहे इसी विश्वविद्यालय का कोई प्राध्यापक नियुक्त क्यो न* हो जाए।

पदोन्नति के आधार

पदोन्नति के साधारणत दो आधार माने जा सकते हैं। एक वरिष्ठता तथा दूसरा, योग्यता। वरिष्ठता का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति संगठन की सेवा मे पहले प्रवेश कर गया है वह उसी वेतनमान मे बाद मे प्रवेश पाने वाले व्यक्तियो से वरिष्ठ है। उदाहरण के लिए जो प्राध्यापक १६६२ मे विश्वविद्यालय मे लिए गये थे वे १६६२ के बाद के वर्षों मे लिए गये प्राध्यापको से वरिष्ठ हैं। पर विश्वविद्यालय के किसी भी प्राध्यापक से प्रवाचक वरिष्ठ होगा चाहे प्रवाचक के सेवा मे प्रवेश पाने की तिथि कोई भी क्यो न हो। क्योकि प्रवाचक प्राध्यापक की अपेक्षा उच्च वेतनमान का पद है। ऐसा भी हो सकता है कि कोई पुराना प्राध्यापक अपने वेतनमान मे प्रवाचक से अधिक वेतन पा रहा है और नया प्रवाचक अपने उच्च वेतनमान के उपरान्त भी प्राध्यापक से कम ही वेतन पा रहा हो। इस स्थिति मे भी प्रवाचक ही वरिष्ठ माना जायेगा। वरिष्ठता वेतनमान तथा कितने समय से उस वेतनमान मे कर्मचारी काम कर रहा है इन दोनो बातो पर निर्भर करती है। केवल लम्बे अर्से से काम करते रहने से *ही वरिष्ठता नही होती। वरिष्ठता के निर्णय मे वेतनमान* का बड़ा महत्वपूर्ण योग है। किसी एक वेतनमान मे काम करने वाले कर्मचारियो से, उनसे ऊँचे वेतन मे काम करने वाले सभी कर्मचारी वरिष्ठ होते हैं। साथ ही उनसे नीचे के वेतनमान मे काम करने वाले सभी कर्मचारी उनसे कनिष्ठ होते हैं। उसी वेतनमान मे कार्यकाल की लम्बाई से वरिष्ठता मानी जाती है। किसी संगठन मे वरिष्ठता सेवा मे प्रवेश पाने की तिथि से मानी जाती है तो किसी मे पुष्टिकरण की तिथि से।

योग्यता का आधार इस बात पर बल देता है कि जो सबसे अच्छा योग्य कर्मचारी या अधिकारी है उसकी पदोन्नति होनी चाहिए, चाहे संगठन मे उसका कार्यकाल कितना भी क्यो न हो। योग्यता के निर्णय के लिए बहुत से साधन हो सकते हैं। परीक्षा साक्षात्कार, पदोन्नति के प्रत्याशी के अधिकारियो की रिपोर्ट आदि से योग्यता निर्धारित की जाती है। पद रिक्त होने पर विभागीय पदोन्नति समिति

योग्यता के आधार पर पदोन्नति के लिए संस्तुति करती है।

पदोन्नति के आधार के रूप मे वरिष्ठता के गुण

१. वरिष्ठता का आधार प्रशासकीय दृष्टि से सरल है। वेतनमान एव कर्मचारी का सेवाकाल दोनो ही ऐसी चीजे हैं जिनमें मतभेद की संभावना ही नही है। ये कार्यालय अभिलेख के आधार पर प्रमाणित तथ्य हैं।

२. प्रत्येक कर्मचारी को यह सतोष रहता है कि समय आने पर उसको पदोन्नति होगी। इसलिए वह भागदौड में समय न बिता कर अपने कार्यालय का काम निष्ठापूर्वक करता है।

३. इसमे किसी कर्मचारी को यह शिकायत नही रहती कि अधिकारियों के द्वेष या सहयोगियो के षडयन्त्रो के कारण उसकी पदोन्नति मे बाधा हुई है। पहले से ही लोगो को पता रहता है कि कौन वरिष्ठ है, और इस बार पदोन्नति मे किसका नम्बर आने वाला है।

४. इसमे राजनैतिक प्रभाव आदि के आधार पर लाभ उठाना सम्भव नहीं।

५. इसमे कर्मचारियो मे आपसी द्वेष काफी कम हो जाता है। कार्यालय मे तनाव की स्थिति नहीं रहती।

पदोन्नति के आधार के रूप मे वरिष्ठता के दोष

१. इस प्रथा मे सबसे वरिष्ठ व्यक्ति चाहे वह योग्य हो अथवा नही पदोन्नति का अधिकारी समझा जाता है एव उसी की पदोन्नति की जाती है। कई बार ऐसा होता है कि अयोग्य व्यक्ति ऊँची जिम्मेवारी वाले पदो पर पहुँच जाते है। चूँकि वे अपने पद का कार्य-भार सँभालने मे असमर्थ होते हैं अत सारे सगठन के काम मे अव्यवस्था व्याप्त हो जाती है।

२. पदोन्नति का अभिप्रेरक के रूप मे प्रभाव समाप्त हो जाता है। किसी का यह प्रयास नही होता कि अच्छा काम करके पदोन्नति के लिए चेष्टा करे। काम अच्छा किया जाय या नही, पदोन्नति तो कालक्रम से स्वत ही होगी।

३ चूँकि सभी लोग जानते हैं कि पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर ही होगी, अत लोग विभागाध्यक्ष के अनुशासन के प्रति जागरूक नही रहते। विभागाध्यक्ष कर ही क्या सकते हैं? पदोन्नति अथवा वेतन वृद्धि के लिए उनकी सस्तुति का महत्त्व ही क्या है? पदोन्नति तो वरिष्ठता के आधार पर मिलनी है। इन भावनाओं के फलस्वरूप विभागीय अनुशासन को धक्का पहुँचता है।

४. कुछ ऐसे प्रतिभाशाली कर्मचारी भी होते है जो वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति तक सगठन में नहीं रह सकते। उनकी महत्त्वाकाँक्षा उन्हें छोटे पदों पर ठहरने नही देती। फिर ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए अन्यत्र नौकरी मिलने मे कठिनाई भी नहीं होती।

५. चूँकि वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति होती है, अतः यह सम्भव है

कि अनेक वर्षों तक संगठन को कोई प्रभावशाली नेतृत्व प्राप्त न हो सके। प्रभावशाली नेतृत्व के अभाव मे संगठन का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। संगठन अपने वर्तमान उत्तरदायित्वो को भी सफलतापूर्वक निभाने मे असमर्थ हो जाता है।

पदोन्नति के आधार के रूप मे योग्यता के गुण

१. इसमें सबसे योग्य व्यक्ति को पदोन्नति का अधिकारी समझा जाता है, फलतः योग्य व्यक्ति ही ऊँचे पदों पर पहुँच पाते हैं। योग्य व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वो को अच्छी तरह समझते हैं। अतः सारे संगठन का काम सुचारु रूप से चलता है।

२. पदोन्नति का अभिप्रेरक के रूप में प्रभाव बना रहता है। सभी कर्मचारी अपनी योग्यता प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। कर्मचारियो मे स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनी रहती है। कर्मचारी नये प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो मे जाते हैं और संगठन के लिए अपनी उपयोगिता बढाने का सतत प्रयास करते रहते हैं।

३. सभी लोग जानते है कि पदोन्नति योग्यता के आधार पर होगी और योग्यता के निर्धारित करने मे विभागाध्यक्ष की संस्तुति महत्वपूर्ण मानी जायेगी। अतः सभी लोग विभागाध्यक्ष की आज्ञाओ का पालन करते हैं। इससे विभागीय अनुशासन मे सहायता मिलती है।

४. प्रतिभाशाली कर्मचारियो के लिए योग्यता का आधार अत्यन्त ही उपयुक्त होता है। उन्हे पदोन्नति के लिए लम्बी अवधि तक प्रतीक्षा नही करनी पडती। अतः उन्हे संगठन को छोड कर जाने की आवश्यकता नही अनुभव होती। संगठन को उनकी प्रतिभा का पूरा-पूरा लाभ मिलता है।

५ संगठन को सदैव ही प्रभावशाली नेतृत्व प्राप्त होता है। प्रभावशाली नेतृत्व के फलस्वरूप संगठन का भविष्य उज्ज्वल होता है एवं संगठन वर्तमान उत्तरदायित्वो को निभाने मे सफल होता है।

पदोन्नति के आधार के रूप में योग्यता के दोष

१. योग्यता का सही मापदण्ड व्यावहारिक रूप से स्थापित करना काफी कठिनाई का काम है। वर्तमान पद पर काम करने की दक्षता अथवा भविष्य की सम्भाविता किसे योग्यता का मापदण्ड माना जाए?

२ प्राय. योग्यता के आधार पर पदोन्नति मे यह असुविधा होती है कि कार्मिक वर्ग को यह विश्वास नही होता कि वास्तव मे पदोन्नति योग्यता के आधार पर ही हुई है। वे समझते है कि यह पक्षपात के आधार पर हुआ है। चाहे उनकी यह धारणा गलत ही क्यो न हो, पर उनकी मनोदशा पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

३. यदि कर्मचारी यह समझने लगता है कि पदोन्नति का वास्तविक आधार योग्यता न होकर कुछ और ही है तो वह काम मे अपना ध्यान न लगा के इधर-उधर

दौड़ भाग कर विभागाध्यक्ष को प्रभावित करने की चेष्टा करने लगता है। उसे सदैव ही यह चिंता लगी रहती है कि विभागाध्यक्ष को किस प्रकार अपने प्रभाव मे लाया जाये। फलत वह सगठन के काम मे ध्यान नही दे पाता है।

४. कई बार कर्मचारियो को यह भी शिकायत होती है कि अधिकारियो के द्वेष एव सहयोगियो के षडयत्रो के फलस्वरूप, योग्यता होते हुए भी उन्हें पदोन्नति नही मिल सकी। ऐसी परिस्थिति मे अधिकारियो एवं कर्मचारियो मे वैमनस्य हो जाता है। असतुष्ट कर्मचारी अपना गुट बनाने का प्रयास करते हैं। इन कारणो से सगठन के काम में बाधा उत्पन्न होती है।

५. इस पद्धति मे विभागाध्यक्ष की स्थिति बडी नाजुक है। चूँकि उसी की सस्तुति पर अन्तत पदोन्नति निर्भर करती है, उस पर लोग तरह-तरह का दबाव डालते हैं। कई बार विभागाध्यक्ष दबाव को सहन करने मे असमर्थ हो जाता है।

उपरोक्त दोनो आधारो के अतिरिक्त पदोन्नति का एक और आधार भी है जिसे वरिष्ठता एव योग्यता का मिला-जुला आधार कहते हैं। इसमे वरिष्ठता एवं योग्यता दोनो को मिला कर पदोन्नति देने का प्रयास किया जाता है। यदि वरिष्ठो मे से कोई ऐसा कर्मचारी है जिसे विभाग योग्यता के आधार पर पदोन्नति नही देना चाहता तो उसका नाम पदोन्नति के लिए योग्य प्रत्याशियो की सूची से हटा दिया जाता है। जिन्हें योग्यता के आधार पर उपयुक्त माना जाता है, उनका नाम वरिष्ठता के आधार पर सूची मे लिखा जाता है। इस आधार का तात्पर्य यह है कि अयोग्य व्यक्तियों को पदोन्नति न दी जाये तथा योग्य व्यक्तियो मे से वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति दी जाये।

- यदि सिद्धान्त रूप से देखा जाए तो योग्यता पदोन्नति का उचित आधार होना चाहिए। पदोन्नति यदि योग्यता के आधार पर होती है तो उसमे सगठन का हित स्पष्ट है। सबसे योग्य व्यक्ति को पदोन्नति दी जाती है। फलत. कार्मिक वर्ग को प्रभावशाली नेतृत्व प्राप्त होता है। पर यह तभी संभव है जबकि पदोन्नति वास्तव मे योग्यता के आधार पर ही हो। अनेक बार ऐसा होता है कि नाम तो योग्यता का होता है, पर वास्तविक आधार योग्यता न होकर राजनैतिक प्रभाव, पक्षपात, जातिवाद, प्रदेशवाद, भाषावाद या अन्य कोई आधार होता है। ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न ही कहाँ उठता है कि योग्यता के आधार पर पदोन्नति द्वारा सगठन को मिलने वाले लाभ उसे उपलब्ध हो सकें। एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जहां न तो वरिष्ठता के आधार का लाभ मिल पाता है और न योग्यता के आधार का।

हमारे देश की परिस्थितियो को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर योग्यता के आधार पर पदोन्नति व्यावहारिक नहीं है। पाश्चात्य देशों मे जहाँ पर इस आधार को अपनाया गया है, वहाँ भारत जैसी बेरोजगारी व्याप्त नहीं है। वहाँ यदि किसी कर्मचारी को शिकायत है कि उसके साथ अन्याय हुआ है तो वह अन्यत्र नौकरी

ढूंढ सकने मे समर्थ है। भारत में जिस तरह जीवन वृत्ति के रूप में सरकारी सेवाओं मे लोग प्रवेश करते हैं वैसा अमेरिका मे नहीं है। फिर वृत्ति-पूर्णता के कारण अधिकारियो को भय बना रहता है कि यदि असंतुष्ट होकर उनके कर्मचारियो मे से कोई चला जायेगा तो उनके विभाग मे अव्यवस्था होगी। फिर उन विभागाध्यक्षो को अयोग्य भी समझा जाता है जहा पर कर्मचारियो के बदलाव की दर साधारण से अधिक है। यदि यह भी बात मान ली जाये कि आज अमेरिका की अर्थ-व्यवस्था मे वृत्ति पूर्णता नही है तो यह तथ्य विचारणीय तो है ही कि योग्यता के आधार का जन्म एव विकास उसी काल मे हुआ था जब वहा की अर्थ-व्यवस्था मे वृत्ति-पूर्णता थी।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि योग्यता के आधार पर पदोन्नति के लिए आवश्यक आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियाँ हमारे देश मे नही हैं। भारत मे सरकारी नौकरी जीवन वृत्ति के रूप मे है। यदि कोई सरकारी कर्मचारी नौकरी छोडना भी चाहता है तो पेंशन के नियमो तथा सर्वव्याप्त बेरोजगारी के कारण ऐसा करने मे सर्वथा असमर्थ है। दावे के साथ यह कहना सत्य नहीं होगा कि हमारा समाज राजनैतिक प्रभाव, पक्षपात, जातिवाद, प्रदेशवाद, भाषावाद तथा भाई-भतीजा-वाद आदि जिनकी चर्चा सामयिक पत्रो आदि मे होती रहती है, आदि से मुक्त है। ऐसी परिस्थितियो मे यदि योग्यता पदोन्नति के आधार के रूप मे उपयोगी नही रह पाती है तो आश्चर्य ही क्या है?

जब योग्यता के आधार पर पदोन्नति व्यावहारिक नही है तो वरिष्ठता के सिवाय दूसरा विकल्प ही कहाँ रह जाता है? एक बडे वरिष्ठ अधिकारी ने अपने भाषण के दौरान यह कहा कि वर्तमान परिस्थितियो म वरिष्ठता के आधार पर ही पदोन्नति देना अधिक उपयुक्त होगा। इससे कार्मिक वर्ग के मस्तिष्क से यह बात निकल जायेगी कि पदोन्नति मे पक्षपात होता है। यदि योग्यता को पदोन्नति का आधार बनाया जाए तो इसकी सफलता के लिए यह तो आवश्यक है ही कि यह वास्तव मे योग्यता पर ही आधारित हो, परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि कार्मिक वर्ग को योग्यता निर्धारित करने वाले मापदण्डो की निष्पक्षता एव प्रशासन की निष्पक्षता मे पूर्ण विश्वास हो। यदि ऐसा नही होता है, तो कर्मचारियों की मनोदशा पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडेगा।

पदोन्नति यदि योग्यता के आधार पर दी जा रही है और इसमे कोई गडबडी हो जाए और योग्यता सही रूप मे न आंकी जा सके तो इससे उत्पन्न हानियाँ प्रारम्भिक भरती के समय की भूल से कहीं अधिक हानिप्रद होगी। प्रारम्भिक भरती मे तो कर्मचारियो को पता ही नही चलता कि कौन लोग प्रत्याशी थे और किनको चुना गया। पर पदोन्नति के सम्बन्ध मे कर्मचारियों को पता रहता है कि कौन-कौन लोग पदोन्नति के लिए प्रत्याशी थे, और किनकी पदोन्नति की गई। प्रारम्भिक भरती मे

भूल का परिणाम इतना ही होगा कि संगठन एक योग्य कर्मचारी की सेवाओं का लाभ न उठा सका जबकि पदोन्नति के अवसर पर की गई गलती सारे कार्मिक-वर्ग की मनोदशा पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

प्रशिक्षण Training

प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रशिक्षण की आवश्यकता इसलिए होती है कि कर्मचारी अपना वर्तमान काम तथा भविष्य में आने वाले कामों को सुचारु रूप से पूरा करने की योग्यता प्राप्त कर सकें। अनेक बार कर्मचारियों की भरती उनकी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर होती है। उन्हें जिस पद पर नियुक्त किया जायेगा उसके उत्तरदायित्वों को निभाने की उनमें योग्यता नहीं होती। यह योग्यता उन्हें प्रशिक्षण द्वारा मिलती है। भारत में आई० ए० एस०, आई० पी० एस० तथा दूसरी अतकनीकी केन्द्रीय सेवाओं के लिए कालेजों के डिग्री प्राप्त युवकों को भर्ती किया जाता है। प्रशिक्षण के बिना वे अपने पद का काम संभाल ही नहीं सकते। इसके अतिरिक्त आज संसार में वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति इतनी तीव्रगति से हो रही है कि कर्मचारियों का ज्ञान तथा उनके काम करने के तरीके कुछ ही दिनों में पुराने पड़ जाते हैं। उन्हें नया ज्ञान देने तथा नये तरीके सिखाने के लिए भी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। जब कभी नियोक्ता नये प्रकार के उपकरण कार्यालयों तथा कारखानों में लगवाते हैं तो प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिसमें कि कर्मचारी नये उपकरणों का उपयोग उचित रूप से कर सकें। प्रशिक्षण के महत्व का कुछ अनुमान इस बात से लग सकता है कि अमेरिका का व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्र प्रशिक्षण पर अनुमानतः प्रतिवर्ष २५ करोड़ (२५ बिलियन) डालर खर्च करता है।

प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों की योग्यता बढ़ा कर उन्हें संगठन के लिए अधिक उपयोगी बनाना है। सन् १९४४ में इंगलैंड में नागरिक सेवक प्रशिक्षण समिति (कमेटी आन ट्रेनिंग ऑफ सिविल सर्वेंट्स) ने प्रशिक्षण के जो उद्देश्य बताये थे वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि उस समय थे जबकि कमेटी ने इनका प्रतिपादन किया था। इस कमेटी के विचार में किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाँच मुख्य उद्देश्य होने हैं।

१. अपने पद की जिम्मेवारियों को निभाने में सुनिश्चितता लाना।

२. कर्मचारियों के दृष्टिकोण को बदलते हुए परिस्थितियों के अनुरूप बनाना। इसी प्रकार, उनके काम करने के तरीकों को भी परिस्थितियों के अनुरूप बनाना।[1]

---

१. राजस्थान विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर पत्राचार अध्ययन राजनीति विज्ञान लोक-सेवा में भर्ती, प्रशिक्षण, अनुशासन एवं मनोबल बृजमोहन मिश्रा, पृष्ठ संख्या-७

३. कर्मचारियो का दृष्टिकोण विस्तृत करना, जिससे कि उनका दृष्टिकोण यान्त्रिक सा न हो जाए।

४. इस प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करना कि वे अपने वर्तमान पद तथा पदोन्नति से भविष्य मे प्राप्त होने वाले पदों के उत्तरदायित्वो को निभा सकें।

५. कर्मचारियो की मनोदशा अनुकूल बनाये रखने का प्रयास करना। उपरोक्त वर्णित उद्देश्यों के अतिरिक्त प्रशिक्षण के कुछ अन्य उद्देश्य भी बताये जा सकते हैं :—[1]

१. प्रशिक्षण द्वारा नये भरती किये गए कर्मचारियो की शिक्षा-दीक्षा मे जो कमी रह जाती है, वह पूरी की जाती है। प्रशिक्षण से नया कर्मचारी कुशल कार्यकर्ता बन जाता है।

२ कुछ ऐसे व्यवसाय भी सरकारी सेवाओ मे मिलते हैं जो सरकार के बाहर कही नहीं हैं। उनके लिए बाहर से अनुभव प्राप्त व्यक्ति कदापि नही मिल सकते। इनके लिए सरकार को स्वय ही प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी पड़ती है। जैसे पुलिस, सेना आदि के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था।

३. प्रशिक्षण का एक उद्देश्य यह भी होता है कि कर्मचारियो को उनके विशेषज्ञता क्षेत्रो मे नवीनतम अनुसंधानो तथा विकासमान ज्ञान के सम्पर्क मे लाया जाए। इसी उद्देश्य को सम्मुख रख कर सरकार अपने कर्मचारियो को उपनिषदो, सगोष्ठियो, सम्मेलनो आदि मे भेजती है।

४. प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों के दृष्टिकोण मे एकरूपता उत्पन्न करना भी है। इससे कर्मचारियो मे सघभाव (Espirit-de-corps) उत्पन्न होता है और वे एक होकर सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

५. प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियो का मनोबल बढाना तथा उनमे सही प्रकार के दृष्टिकोण का विकास करना भी होता है।

प्रशिक्षण के प्रकार

प्रशिक्षण कई प्रकार का हो सकता है। नीचे प्रशिक्षण के कुछ प्रमुख प्रकारो का वर्णन किया जाता है :

१. अनौपचारिक तथा औपचारिक प्रशिक्षण—अनौपचारिक प्रशिक्षण कर्मचारी स्वय काम करने की प्रक्रिया मे प्राप्त करता है। भारत मे आई० सी० एस० के अधिकारी प्रारम्भ मे कलक्टर के साथ रह कर अनौपचारिक रूप से प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था पहले से की जाती है। प्रशिक्षण का काम विशेषज्ञो को सौंपा जाता है। प्रशिक्षण समाप्त करने पर प्रमाणपत्र दिया

१. Awasthi & Maheshwari : Public Administration Chapter 16 pp. 324-325.

जाता है।

अनौपचारिक तथा औपचारिक प्रशिक्षण में परस्पर कोई विरोध नहीं है। दोनों एक-दूसरे के पूरक के रूप में हैं। कुछ चीजें अनौपचारिक रूप से काम करके ही सीखी जा सकती हैं जबकि अन्य कुछ ऐसी बातें हैं जो कि औपचारिक रूप से पाठ्य-क्रम लेकर व्याख्यान, सगोष्ठि, कक्षा में परिसवाद के माध्यम से अधिक सुगमता से सीखी जा सकती हैं।

२. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन प्रशिक्षण

अल्पकालीन प्रशिक्षण में अल्प अवधि में ही प्रशिक्षण का काम पूरा करने का प्रयास किया जाता है। युद्धकाल में नये रगरूटों को अल्पकालीन प्रशिक्षण के बाद युद्ध क्षेत्र में भेज दिया जाता है। दीर्घकालीन प्रशिक्षण में प्रशिक्षण का कार्य अधिक समय तक ज्यादा सुचारु रूप से चलता है।

अल्प एव दीर्घकालीन प्रशिक्षण में प्रशिक्षण काल में ही अन्तर होता है। एक सप्ताह या दो सप्ताह का प्रशिक्षण अल्पकालीन प्रशिक्षण है जबकि साल भर या ६ महीने का प्रशिक्षण दीर्घकालीन प्रशिक्षण है।

३. सेवा में प्रवेश से पूर्व तथा प्रवेश के बाद प्रशिक्षण

सरकारी सेवाओं में प्रवेश से पूर्व तकनीकी तथा व्यावसायिक विद्यालयों में प्राप्त प्रशिक्षण, प्रवेश से पूर्व प्रशिक्षण कहा जाता है। इन विद्यालयों से प्रशिक्षण प्राप्त युवक एवं युवतियाँ तत्काल ही सेवा में भरती कर लिये जा सकते हैं।

भरती के बाद जो प्रशिक्षण कर्मचारियों को दिया जाता है प्रवेश के बाद का प्रशिक्षण कहा जाता है। मसूरी में आई० ए० एस० तथा अन्य केन्द्रीय सेवाओं के सदस्यों का प्रशिक्षण, राजस्थान में हरिश्चन्द्र माथुर स्टेट इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के विभिन्न प्रकार के अधिकारियों के लिए आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रवेश के बाद के प्रशिक्षण के उदाहरण हैं।

४ नैपुण्य प्रशिक्षण तथा अभिवृद्धि प्रशिक्षण

नैपुण्य प्रशिक्षण में व्यावसायिक ज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाता है। टेलीफोन आपरेटर को स्विच बोर्ड का काम सिखाना, लिपिक को आशुलिपि सिखाना आदि नैपुण्य प्रशिक्षण के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

अभिवृद्धि प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारी की बहुमुखी प्रतिभा को जाग्रत करना होता है। अभिवृद्धि प्रशिक्षण के फलस्वरूप एक अधिकारी का मानसिक विकास होता है। वह अपने काम के राजनैतिक प्रशासकीय तथा आर्थिक पहलुओं को ज्यादा अच्छी तरह समझने लगता है। अभिवृद्धि प्रशिक्षण में किसी व्यवसाय विशेष में ज्ञान बढ़ाने का प्रयास नहीं किया जाता।

५. विभागीय तथा केन्द्रीय प्रशिक्षण

जब किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम का सचालन विभाग द्वारा किया जाए तो यह

विभागीय प्रशिक्षण कहा जाता है। जैसे भेड़ व ऊन विभाग अपने कर्मचारियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये।

जब राज्य द्वारा कई विभागो के अधिकारियो के लिए सम्मिलित रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाए तो यह केन्द्रीय प्रशिक्षण कहा जायेगा। हरिश्चन्द्र माथुर स्टेट इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन मे विभिन्न विभागो के मध्यवर्गीय अधिकारियो के प्रशिक्षण का कार्यक्रम केन्द्रीय प्रशिक्षण का उदाहरण कहा जा सकता है।

६. अग्रिम प्रशिक्षण

अग्रिम प्रशिक्षण व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक दोनो प्रकार का हो सकता है। इसका उद्देश्य कर्मचारियो को अपने क्षेत्र के भीतर या बाहर अपनी योग्यतायें बढाने का अवसर देना है।

७ गतिशीलता के लिए प्रशिक्षण

इस प्रकार का प्रशिक्षण इसलिए दिया जाता है जिससे कि कर्मचारी कई प्रकार के काम करने की योग्यता प्राप्त करले। यदि कोई कर्मचारी अपने विभाग के प्रत्येक अनुभाग मे काम कर सकता है तो इससे विभाग के लिए उसकी उपयोगिता बढ जाती है।

८. काम पर प्रशिक्षण, तथा काम से अलग प्रशिक्षण

जब कर्मचारियो को काम पर लगा दिया जाता है, एव प्रशिक्षित कर्मचारी उन्हे काम की बारीकियाँ समझाते हैं तो यह काम पर प्रशिक्षण का उदाहरण होता है। आई० ए० एस० के अधिकारी मसूरी मे प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद विभिन्न पदो पर प्रशिक्षित कर्मचारियो की देख-रेख मे काम करते हैं। कामों से अलग प्रशिक्षण किसी प्रशिक्षण केन्द्र मे दिया जाता है। नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन मसूरी तथा हरिश्चन्द्र माथुर स्टेट इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जयपुर मे दिया प्रशिक्षण काम से अलग प्रशिक्षण का उदाहरण है।

प्रशिक्षण देने की विधियाँ GIO

साधारणतया प्रशिक्षण निम्नलिखित विधियो मे दिया जाता है।

१ व्याख्यान —प्राचीन काल से ही व्याख्यान प्रशिक्षण देने का एक प्रमुख साधन रहा है। नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन मसूरी तथा अन्य प्रशिक्षण केन्द्रो मे व्याख्यान द्वारा ही मुख्यतः प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रशिक्षण के साधन के रूप मे व्याख्यान पद्धति की बडी कटु आलोचना की जाती है। इसमे शिक्षक एव विद्यार्थी मे विचारो का आदान-प्रदान सम्भव नही होता। यदि कक्षा मे ५० या ६० विद्यार्थी हो तो शायद व्याख्याता सभी को पहचानता भी न हो। विद्यार्थी ने व्याख्याता के भाषण का कितना अश समझा यह भी कहना मुश्किल होता है। पर इन सब आलोचनाओ के बावजूद भी व्याख्यान प्रशि-

क्षण के प्रमुख साधन के रूप में बना हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसमें खर्च कम होता है। भारतीय विश्वविद्यालयों में तो ६० विद्यार्थियों पर एक शिक्षक रक्खा जाता है। एक प्रशिक्षक २५–३० विद्यार्थियों को तो इस माध्यम से आसानी से प्रशिक्षण दे ही सकता है।

२. प्रशिक्षित अधिकारियों द्वारा व्यक्तिगत शिक्षण—इसमें एक प्रशिक्षक एक विद्यार्थी या विद्यार्थियों के छोटे समूह को प्रशिक्षण देता है। इसमें विद्यार्थी को जहां दिक्कत हो, प्रशिक्षक को रोक कर अपनी शंका दूर कर सकता है। व्याख्यान में यह कदापि सम्भव नहीं।

३ परिसंवाद कक्षाएं—परिसंवाद कक्षाओं में एक निर्धारित विषयों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार-विमर्श किया जाता है। इसमें विद्यार्थी तथा प्रशिक्षक दोनों ही भाग लेते हैं। परिसंवाद कक्षाओं में कई बार एक से अधिक प्रशिक्षक उपस्थित रहते हैं। इसमें विद्यार्थियों एवं प्रशिक्षकों को अपने विचारों का आदान-प्रदान करने का पूरा अवसर मिलता है।

४. सम्मेलन, विचार गोष्ठी आदि—सम्मेलन, विचार गोष्ठी आदि उस वर्ग के अधिकारियों के लिए उपयोगी होते हैं जिन्हें कक्षा में बैठा कर भाषण द्वारा प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता है। व्याख्यान द्वारा कनिष्ठ अधिकारियों को तो प्रशिक्षण दिया जा सकता है, पर वरिष्ठ अधिकारियों के लिए यह उपयुक्त नहीं समझा जाता। अतः उनके प्रशिक्षण के लिए सम्मेलन, विचार गोष्ठी आदि पर अधिक जोर दिया जाता है।

५ अनुभव द्वारा प्रशिक्षण—इसमें कर्मचारी को सीधे काम पर लगा दिया जाता है। कुछ प्रारम्भिक बातें उसे विभागाध्यक्ष बता देता है। इसके आधार पर कर्मचारी काम शुरू करता है। काम करते समय जो कठिनाइयां आती हैं उसे सहयोगियों आदि की सहायता से समझने का प्रयास किया जाता है। अंग्रेजी शासन काल में भारत में आई० सी० एस० का प्रशिक्षण इसी प्रकार होता था।

६. केस पद्धति—इस पद्धति में किसी एक निर्णय की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी राज्य में एक नये विश्वविद्यालय की स्थापना को एक केस तैयार करने के लिए लिया जा सकता है। किन आधारों पर कोई निर्णय लिया गया, इसके पक्ष एवं विपक्ष में क्या तर्क थे इसका पूर्ण रूप से विवेचन किया जाता है। केस पद्धति से शिक्षार्थी प्रशासन की वास्तविक समस्याओं को ज्यादा अच्छी तरह स्पष्ट रूप से समझने लगता है।

७. अधिसभा पद्धति (Syndicate Method)—इस पद्धति से प्रशिक्षण देने के लिए कक्षा को छोटे-छोटे दलों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक दल का एक अध्यक्ष होता है। दल को अध्ययन के लिए एक समस्या देदी जाती है। अध्यक्ष अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श करके समस्या पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। यह प्रतिवेदन सारी कक्षा के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। यदि अन्य सदस्य कोई

आपत्ति उठाते हैं तो अधिसभा के सदस्य अपने दल का समर्थन करते हैं।

८. प्रशैक्षणिक भ्रमण—सिनेमा, अनुभवी प्रशिक्षकों की देख-रेख में स्वाध्याय आदि भी प्रशिक्षण के साधन हैं।

प्रशिक्षण के विभिन्न तरीके परस्पर विरोधी नहीं हैं। एक ही पाठ्यक्रम में विभिन्न तरीकों से प्रशिक्षण दिया जा सकता है। किस माध्यम को कब अपनाया जाये यह तो शिक्षार्थियों की आवश्यकता तथा संगठन के साधनों पर निर्भर करता है।

प्रशिक्षण के मार्ग में बाधायें

प्रशिक्षण के कार्यक्रम के मार्ग में निम्नलिखित बाधायें आ सकती हैं—

१ प्रबन्ध व्यवस्था की प्रशिक्षण के प्रति उदासीनता—प्रबन्ध व्यवस्था प्रशिक्षण को कई बार आडम्बर मानता है। चूंकि अन्यत्र प्रशिक्षण व्यवस्था है इसलिए उनके यहां भी प्रशिक्षण की व्यवस्था बनाये रखी जानी चाहिए। प्रशिक्षण को कई बार विभागीय क्रियाशक्ति के अधिकारीगण (लाइन एजेन्सी) अपने नियमित कामों में व्यवधान समझते हैं। यदि खर्च में कटौती का प्रश्न आता है तो इसका प्रभाव सबसे पहले प्रशिक्षण के मदों पर पड़ता है।

२. कभी शिक्षार्थी भी प्रशिक्षक के काम में सहयोग नहीं देते। यह पुरानी कहावत है कि आप घोड़े को तालाब के किनारे तो ले जा सकते हैं, किन्तु आप उसे पानी पिला नहीं सकते। जब शिक्षार्थी सहयोग नहीं देते ऐसी अवस्था में प्रशिक्षण के कार्यक्रमों से कोई लाभ नहीं हो पाता। शिक्षार्थी तो यह समझते हैं कि चलो कार्यालय में काम करने से छुट्टी मिली। यहां थोड़ा आराम कर लें।

३ कई बार प्रशिक्षक भी बिना किसी पूर्व तैयारी के ही प्रशिक्षण देने के लिए जा पहुँचते हैं। उन्हें पता ही नहीं होता आज उन्हें किस विषय में क्या बताना है ? जो उनके सामने पड़ जाता है उस सम्बन्ध में बात-चीत करके अपना काम किसी तरह समाप्त करते हैं।

४. सामान्य प्रशासकों के प्रशिक्षण में यह भी कठिनाई है कि हमें यह नहीं पता कि एक अच्छे सामान्य प्रशासक को किस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए। अच्छे सैनिक अधिकारी के लिए कहा जा सकता है कि उसे इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। हम यह जानते हैं कि किस प्रकार एक अच्छा आशुलिपिक या टाईपिस्ट प्रशिक्षण द्वारा तैयार किया जा सकता है। अतः सामान्य प्रशासक के प्रशिक्षण काल में बहुत सी ऐसी चीजें की जाती हैं जो उनका मानसिक विकास तो करती हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे व्यावसायिक दृष्टि से बहुत अधिक उपयोगी हैं।

५. कई बार प्रशिक्षण केन्द्रों तथा पाठ्य-विवरणों आदि में प्रशिक्षण व्यावहारिक ~~न होकर सैद्धान्तिक~~ होता है। शिक्षार्थी यह समझते हैं कि ये कोरी किताबी बातें हैं तथा इस प्रशिक्षण का व्यावहारिक प्रशासकीय परिस्थितियों में कोई लाभ नहीं है।

६. जिन अधिकारियो को प्रशिक्षण केन्द्रो मे भेजा जाता है उन्हे स्वतः प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस नही होती। चूंकि वे अपनी ओर से आवश्यकता अनुभव नही करते अतः वे प्रशिक्षण के कार्यक्रमो मे गंभीर होकर ध्यान नहीं देते।

७. वरिष्ठ अधिकारियों को प्रशिक्षण देना तथा उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाना अपने-आप मे एक समस्या है। वरिष्ठ अधिकारी चाहते हुए भी प्रशिक्षण केन्द्र के अनुशासन मे अपने-आपको समायोजित नही कर पाते। आयु के साथ-साथ विचारो मे परिवर्तनशीलता की सभावना कम होती जाती है। वे समझते हैं कि उनके काम करने का तरीका ही सबसे ठीक है। कई वरिष्ठ अधिकारियो ने प्रशिक्षण के बाद यह महसूस किया कि चाहे सैद्धान्तिक रूप से जो बाते कही गई हैं वे ठीक भी हो, पर वास्तविक प्रशासकीय परिस्थितियो मे अनपयुक्त हैं।[1]

विशेष अध्ययन के लिए

१. फाइनर . दी थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ मॉडर्न गवर्नमेंट
२. एम० सी० राय . दी इण्डियन सिविल सर्विस
३. एम० पी० शर्मा . लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार
४. पी० सरन : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
५. अवस्थी एव माहेश्वरी: लोक प्रशासन
६ डाइमक एव डाइमक : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन

---

१. देखिये राजस्थान विश्वविद्यालयः स्नातकोत्तर पत्राचार अध्ययन राजनीति विज्ञान निबन्ध IV (II) लोक सेवा मे भर्ती, प्रशिक्षण, अनुशासन एवं मनोबल, ब्रजमोहन सिन्हा पृ० १३

१६

वित्तीय प्रशासन

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने निजी जीवन में बिना पैसे के काम नही चला सकता उसी प्रकार सरकार को भी अपने कार्यों के लिए वित्त की आवश्यकता पडती है। प्रत्येक प्रशासकीय कार्य का वित्तीय पहलू होता है। यदि सरकार अगला देश के शरणार्थियो को सहायता करना चाहती है, या किसी पडौसी देश से युद्ध करना चाहती है तो इसके लिए धन की आवश्यकता स्पष्ट है। अत: हम यह कह सकते हैं कि वित्त एव प्रशासन को अलग करना कदापि सभव नही। लायड जॉर्ज ने एक बार कहा था कि सरकार वित्त का ही नाम है।[1] प्रोफेसर एम० पी० शर्मा ने कहा है कि वित्त लोक-प्रशासन के इ जन का ईधन है।[2]

पुरातनकाल से ही वित्त की महत्ता स्वीकार की गई है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे राजकोष को राज्य का एक अभिन्न अग माना है तथा उसे भरापूरा रखने के लिए अनेक उपाय बताये हैं। चाहे किसी प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था क्यो न हो, राज्य मे वित्तीय व्यवस्था बनाये रखना उसका उत्तरदायित्व होता है। भारत मे स्वतत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा वर्तमान समय मे केन्द्र एव राज्य सरकारो का वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व प्राय. एक-सा ही है। दोनो कालो मे कर लगाने, इसे वसूल करने, सरकारी धन को सुरक्षा से रखने, उनका लेखा एवं जाँच की व्यवस्था मिलती है। राज्य को अपने कार्यक्रमो के लिए धन जुटाना ही होगा। अच्छी से अच्छी नीतियाँ तथा योजनाएँ हो फिर भी धनाभाव की स्थिति मे किस प्रकार कार्यान्वित की जा सकती हैं ?

लोक कल्याणकारी राज्य ने अनेक प्रकार के कामो का दायित्व अपने कधो पर ले रखा है। फलत राज्यो की वित्तीय आवश्यकतायें पहले से कही अधिक बढ गई हैं। राज्य नागरिको की आय का एक बहुत बडा भाग अपने खर्चे के लिए ले लेता है। अतः यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि इतनी बडी धनराशि का समुचित रूप से प्रबन्ध किया जाए। जब राज्य की आय और व्यय इतने बडे स्तर पर नही थे, उस समय की अपेक्षा आज वित्तीय प्रशासन कही अधिक जटिल हो गया है। आज अनेक

१ Quoted by M. P. Sharma in 'Public Administration in Theory & Practice', Chapter 12, pp. 320

२. वही पृष्ठ ३२०

प्रकार के दबाव गुट्ट बन गये हैं जो सतत प्रयत्न मे रहते है कि उन्हें कर के रूप मे कम से कम देना पड़े और राज्य के व्यय का अधिकतम लाभ उन्हे मिले।

प्रजातंत्रीय देशो में वित्तीय प्रशासन के प्रमुख लक्षरण

प्रजातन्त्रीय देशो मे वित्तीय प्रशासन के प्रमुख लक्षरण निम्नलिखित कहे जा सकते हैं।

१. संसद का प्राय एव व्यय पर नियंत्रण—प्रजातन्त्रीय देशो मे संसद की सहमति से ही कर लगाये जाते हैं तथा उनकी सहमति से ही करो द्वारा अर्जित धनराशि का व्यय किया जा सकता है। ससद मे के दोनो सदनो को अलग-अलग इस सम्बन्ध में कितना अधिकार प्राप्त होगा यह तो विभिन्न देशो के सविधान पर निर्भर करता है। भारत तथा इंग्लैंड में तो वित्तीय प्रशासन निम्न सदन के हाथ मे पूरी तरह रहता है। निम्न सदन से धन विधेयक स्वीकृत होकर ऊपरी सदन में पन्द्रह दिनो के लिए भेजे जाते हैं। यदि इस काल मे ऊपरी सदन कोई परामर्श दे तो निम्न सदन यदि चाहे तो उस पर विचार कर सकता है। पर इन प्रस्तावों पर विचार करना, अथवा उन्हे स्वीकार करना निम्न सदन के लिए आवश्यक नही। पन्द्रह दिनो के पश्चात् निम्न सदन ने जिस रूप मे इसे पास किया है उसी रूप मे ये पास मान लिये जाते हैं। इसके विपरीत अमेरिका मे निम्न तथा ऊपरी सदन को धन विधेयको मे समान अधिकार प्राप्त हैं।

२. प्रजातन्त्रीय देशो मे बजट प्राय. एक ही वर्ष के लिए एक बार मे स्वीकार किया जाता है। चाहे वे ही प्राय एव व्यय की मदें आगामी वर्ष मे भी क्यो न हो, पर नये वर्ष मे संसद से नये रूप मे स्वीकृति भी जानी आवश्यक है। प्रत्येक देश मे वित्तीय वर्ष अलग-अलग होता है। भारत तथा इंग्लैंड मे वित्तीय वर्ष १ अप्रेल से प्रारभ होकर अगले वर्ष ३१ मार्च तक चलता है। उदाहरण के लिए, वित्तीय वर्ष १९७२–७३ १ अप्रेल, १९७२ को प्रारंभ हुआ और यह वित्तीय वर्ष ३१ मार्च, १९७३ तक चलेगा। अमेरिका मे वित्तीय वर्ष १ जलाई से प्रारभ होकर अगले वर्ष ३० जून तक चलता है।

३. चूँकि सरकार बिना ससद की अनुमति के न तो धन व्यय करने मे सक्षम है और न करो द्वारा धन एकत्रित ही कर सकती है अत यह आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पहले ही संसद का अधिवेशन बुलाया जाए जिससे कि ससद या तो बजट पास करे या आगामी वर्ष के कुछ समय के लिए करो की वसूली तथा धन के व्यय की अनुमति दे। अभी पिछले चुनावो (१९७२) के समय केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने फरवरी मार्च के महीनो में बजट प्रस्तुत नही किया। सरकार के आग्रह पर विधान सभाओ तथा ससद ने सरकार को अन्तरिम काल मे कर वसूल करने तथा धन व्यय करने का अधिकार दे दिया था।

४ बजट के काम मे कार्यपालिका ही पहल करती है। कार्यपालिका को ही प्रशासन का सारा काम सभालना होता है। शासन को सुचारु रूप से चलाने का

उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर ही होता है। कार्यपालिका इस स्थिति मे होती है कि यह बता सके कि प्रशासन को सही ढंग से चलाने के लिए उसे कितनी धनराशि की आवश्यकता है। भारतवर्ष मे विभिन्न प्रशासकीय विभाग अपना बजट वित्त मंत्रालय मे प्रस्तुत करते हैं। वित्त मंत्रालय मे सभी विभागो के बजटो को मिला कर भारत सरकार के लिए बजट तैयार किया जाता है। मन्त्रिमण्डल की अनुमति के बाद यही बजट ससद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

५. कोई भी गैरसरकारी सदस्य ससद को कर लगाने का प्रस्ताव नही रख सकता। यह प्रस्ताव राष्ट्र या राज्य के प्रधान की अनुमति से ही संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। भारत मे वित्त मन्त्री सदन मे बजट प्रस्तुत करते समय इस आशय का प्रमाण-पत्र भी प्रस्तुत करता है कि इस बजट को सदन के सम्मुख रखने की अनुमति राष्ट्रपति से प्राप्त कर ली गई है। राज्यों के वित्त मन्त्री इसी आशय का प्रमाण-पत्र राज्यपाल से प्राप्त कर विधान सभा मे बजट पेश करते समय प्रस्तुत करते हैं।

६. बजट सदैव निम्न सदन मे ही प्रस्तुत किया जाता है। भारत मे केन्द्र सरकार लोक सभा मे तथा राज्य सरकारें विधान सभा मे बजट प्रस्तुत करती हैं। इंग्लैंड मे बजट हाउस ऑफ कामन्स मे पेश किया जाता है। अमेरिका मे भी, जहाँ धन विधेयको मे दोनो सदनो को समान अधिकार प्राप्त हैं, बजट निम्न सदन—हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स मे ही प्रस्तुत किया जाता है।

७ उन देशो मे जहाँ ब्रिटिश वित्तीय परम्परा है, न तो पार्लियामेंट अपनी इच्छा से किसी नये करो का प्रस्ताव रखती है, और न किसी नये खर्च को ही प्रस्तावित करती है। इस परम्परा का कारण यह है कि प्राचीन काल मे पार्लियामेंट जनता की प्रतिनिधि होने के कारण सदैव यह चेष्टा करती रहती थी कि जनता पर करो का भार कम से कम रहे। ऐसी परिस्थिति मे नये करो का प्रस्ताव रखने या खर्चों की मदो मे वृद्धि या नये खर्चों के लिए परामर्श देने का प्रश्न ही नही उठता था। यह काम राजा तथा उसके मन्त्रिमण्डल का था। यद्यपि राजनैतिक परिस्थितियो मे मूलभूत परिवर्तन हो चुका है पर परम्परायें उसी रूप मे बनी आ रही हैं। आज भी करो तथा खर्चों के प्रस्ताव पर मन्त्रिमण्डल का एकाधिकार बना हुआ है।

८. सैद्धान्तिक रूप मे पार्लियामेंट यदि चाहे तो मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित खर्चों तथा करो मे कटौती कर सकती है। कटौती के ये प्रस्ताव दलीय अनुशासन के कारण सदैव ही अस्वीकृत हो जाते हैं। क्योंकि पार्लियामेंटरी परम्परा के अनुसार यदि कटौती के ये प्रस्ताव मन्त्रिमण्डल की बिना सहमति के पास हो जायें तो इन्हे मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास माना जाता है। भारत मे केन्द्रीय ससद तथा राज्यो की विधान सभाओ मे कटौती के प्रस्ताव तभी पास हो सकते हैं जबकि मन्त्रिमण्डल इससे सहमत हो जाए। कुछ वर्ष पहले रेल मन्त्री ने रेल बजट मे शायिकाओ के उपयोग के लिए प्रति रात्रि पाँच रुपये का दर प्रस्तावित किया था। बाद मे रेल मन्त्री

ने विरोधी दलों तथा पार्टी के सदस्यों के दबाव के कारण दूसरी तथा बाद की रात्रियों के लिए एक रुपया प्रति रात्रि की दर स्वीकार कर ली।

बजट

बजट वित्तीय प्रशासन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है। सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी संस्थाओं में बजट बनाए जाते हैं। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद, राज्य सरकार तथा इसके विभिन्न विभाग, आपके कालेज की यूनियन सभी बजट बनाते हैं। यहां तक कि परिवार तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने निज के खर्च के लिए दी गई धनराशि भी एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार ही खर्च करते हैं। सभी जगह बजट बनाने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि धनराशि तो सीमित होती है तथा आवश्यकताएं असीमित होती हैं। ऐसी परिस्थिति में पहले से सोच समझ कर यह निर्णय करना आवश्यक हो जाता है कि किन मदों पर पैसा खर्च किया जाए और इन पर कितनी-कितनी धनराशि खर्च की जाए।

वित्तीय प्रशासन को सुचारु रूप से चलाना सरकार का स्थायी दायित्व है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। सबसे पहले सरकार अपने अनुमानित आय एवं व्यय के आंकड़े एकत्रित करती है। इन आंकड़ों के आधार पर बजट बनाकर संसद से कर लगाने तथा धनराशि को प्रस्तावित व्यय की मदों पर खर्च करने की अनुमति प्राप्त की जाती है। सरकार का तीसरा उत्तरदायित्व आय एवं व्यय का पूरा-पूरा हिसाब रखना है। चौथे स्थान पर लेखा जाँच का कार्य आता है। लेखा जाँच का उद्देश्य यह है कि यह देखा जाए कि सरकार ने बजट में प्रस्तावित तरीके से ही कर वसूल किया है तथा धनराशि का व्यय किया है। लेखा जाँच की रिपोर्ट अपनी टिप्पणियों के साथ कार्यपालिका पार्लियामेंट में प्रस्तुत करती है।

सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासकीय व्यवस्था में बजट का केन्द्रीय स्थान है। बजट केवल आय एवं व्यय का अनुमान मात्र ही नहीं है। यह एक साथ ही एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव भी है।[1] बजट के माध्यम से सरकार विधान-मण्डल को पिछले वर्ष की वित्तीय गतिविधियों से अवगत कराती है। इसमें चार वर्ष की वित्तीय स्थिति का विवरण होता है, चालू वर्ष के संशोधित अनुमान तथा आगामी वित्तीय वर्ष के लिए आय एवं व्यय के प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते हैं। सरकार १९७३-७४ वित्तीय वर्ष का बजट प्रस्तुत करते समय निम्न तालिका में दिए गए शीर्षकों के अन्तर्गत विधान मण्डल के सम्मुख वित्त सम्बन्धी आंकड़े सूचित करेगी—[2]

---

१. Willoughby . Principles of Public Administration Chapter 29 PP. 399.

२. राजस्थान विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर पत्राचार अध्ययन पेपर ४.१३ राजनीति विज्ञान, बजट एवं वित्तीय प्रशासन — व्रजमोहन सिन्हा पृष्ठ संख्या–१

खर्चे की मदें	१९७१-७२ वास्तविक आंकड़े	१९७२-७३ अनुमानित आंकड़े	१९७३ उपलब्ध वास्तविक आंकड़े	१९७३-७४ अनुमानित आंकड़े

यदि इंगलैंड के संवैधानिक इतिहास पर एक दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि बजट पर नियन्त्रण पूरे सरकार की नीति पर नियन्त्रण है । चूँकि राजा स्वत. नये कर नही लगा सकता था, इसके लिए पार्लियामेंट की सहमति आवश्यक थी अतः पार्लियामेंट नये करो के लिए सहमति देने से पहले प्रशासकीय नीतियों का पुनरावलोकन करती थी और इनमे संशोधन की मांग करती थी । संशोधन की मांग स्वीकृत होने पर ही पार्लियामेंट नये करो के लिए स्वीकृति देती थी । इस तरह पार्लियामेंट पूरे प्रशासन की नीति पर नियन्त्रण रख सकती थी।

संसदात्मक प्रशासन वाले देशो मे दलीय अनुशासन के कारण अब पार्लियामेंट बजट के द्वारा सरकार पर नियन्त्रण रखने मे प्राय. असफल हो गई है । दलीय अनुशासन के कारण सरकार द्वारा प्रस्तावित बजट स्वीकृत हो जाता है। अत. सरकार मनमानी कर सकती है । परन्तु, अमेरिका मे अभी भी कांग्रेस बजट द्वारा कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है । कांग्रेस यदि किसी मद मे कटौती करती है तो वे कार्यक्रम बंद हो जाते हैं। कई बार कांग्रेस यह प्रावधान कर देती है कि स्वीकृत धनराशि का कोई भी भाग कुछ विशेष कार्यों के लिए व्यय नही किया जा सकेगा ।

बजट सरकार के लिए एक कार्यक्रम का काम करता है । बजट के अनुसार ही सरकार धनराशि व्यय कर सकती है । कोई कार्यक्रम चाहे कितना ही आवश्यक क्यो न हो यदि बजट मे धनराशि स्वीकृत न हो तो वैधानिक तरीके से इस पर पैसा खर्च नही किया जा सकता । अत्यधिक आवश्यकता की स्थिति मे भारत मे राष्ट्रपति अध्यादेश जारी करके नये कर लगा सकता है तथा नये खर्चों की स्वीकृति दे सकता है । यदि समय हो तो संसद का अधिवेशन बुला कर पूरक बजट पास करवाया जा सकता है । पर बिना प्राधिकृति (Authorisation) के सरकारी कोष से पैसा खर्च नहीं किया जा सकता ।

१. उत्पादन बढाना—बजट मे उत्पादकों की सहायता के लिए बिना ब्याज के ऋण या कम ब्याज की दर पर ऋण की व्यवस्था की जा सकती है । प्रारम्भ के वर्षों मे कर मे छूट दी जा सकती है । उत्पादन के लिए आवश्यक मशीन आदि पर आयात कर में छूट दी जा सकती है ।

२. सरकार जिन वस्तुओं का उपयोग कम करवाना चाहती है उन पर बहुत ऊँची दर पर कर लगाया जाता है । शराब पर उत्पादन-कर इसका उदाहरण कहा जा सकता है । विदेशो से उपयोग मे लाई हुई मोटरें लाने पर भी सरकार बहुत ऊँची दर पर आयात-कर लगाती है । विलासिता की वस्तुओं पर ऊँचे दर पर कर लगाया जाता है ।

३. समाज मे आर्थिक समानता लाने के लिए भी बजट का उपयोग किया जा सकता है। बिना श्रम के आय के स्रोतो पर ऊँची दरो से कर लगा कर तथा समाज के सम्पन्न वर्गों से अधिक कर वसूल कर समाज के विपन्न वर्गों पर यह पैसा खर्च किया जा सकता है।

४. अकाल, बेरोजगारी आदि के समय सरकार लोगो को भुखमरी से बचाने के लिए नये काम जैसे, सड़कें चौड़ी करवाना, बाँध बनवाना आदि प्रारम्भ कर देती है।

५. मुद्रास्फीति को रोकने के लिए भी बजट से सहायता ली जाती है। जिन वर्गों के पास अधिक पैसा है उनसे अधिक दरो पर विभिन्न प्रकार के टैक्स जैसे सम्पत्ति कर, दान कर, व्यय कर आदि वसूल कर सरकार उनकी क्रय शक्ति (Purchasing Power) पर नियन्त्रण करने का प्रयास करती है।

भारतवर्ष मे समग्र सरकार का एक ही बजट नही बनाया जाता। केन्द्रीय सरकार रेल मन्त्रालय को छोड कर अन्य सभी विभागो के लिए एकीकृत बजट बनाती है। रेल मन्त्रालय रेलवे बजट अलग से प्रस्तुत करता है। सभी राज्य सरकारें अपने-अपने विधान-मण्डलो के सम्मुख अपना बजट प्रस्तुत करती हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी निगम आदि अपना बजट अलग-अलग बनाते हैं। इन प्रतिष्ठानो के बजटो पर पालियामेंट अथवा विधान सभाओ का कोई अधिकार नही होता।

बजट निर्माण

बजट निर्माण का उत्तरदायित्व मुख्यत सरकार के वित्त मन्त्रालय पर होता है। वित्त मन्त्रालय के अतिरिक्त प्रशासकीय मन्त्रालय, योजना आयोग तथा नियन्त्रक एव महा लेखापाल भी इसमे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। नये वित्त वर्ष के प्रारम्भ के छ या आठ महीने पहले से ही बजट निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो जाता है जबकि वित्त मन्त्रालय सभी विभागो एव मन्त्रालयो को पत्र भेजकर आगामी वर्ष के आय-व्यय का ब्यौरा तैयार करने का आग्रह करता है। ये ब्यौरे वित्त मन्त्रालय द्वारा भेजे गये प्रपत्रो मे तैयार किये जाते हैं। मन्त्रालय अपने अधीनस्थ विभागो तथा कार्यालयो को इसी प्रकार का निर्देश देता है। जब किसी मन्त्रालय मे सभी सम्बन्धित कार्यालयो से आय एव व्यय के आंकड़े प्राप्त हो जाते हैं तो मन्त्रालय इसके आधार पर पूरे मन्त्रालय का बजट तैयार करता है। कार्यालयो द्वारा भेजी गई माँग की मदो में कुछ सीमा तक तो मन्त्रालय के स्तर पर ही कटौती हो जाती है। विभिन्न मन्त्रालय अपने ब्यौरे वित्त विभाग मे भेज देते हैं। वित्त विभाग का बजट-सभाग इन पर फिर से विचार करता है। इस समय विचार खर्चे मे कमी करने तथा धन की उपलब्धि को ध्यान मे रख कर किया जाता है। नीति सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार-विमर्श नहीं किया जाता। साधारणत वित्त मन्त्रालय चालू खर्चे के मदो मे कटौती करने का आग्रह नहीं करता पर नये खर्चों की मदो की पूरी जाँच पड़ताल होती है। बिना वित्त

मन्त्रालय की सहमति के न तो कोई नये खर्च का मद बजट मे शामिल किया जा सकता है और न चालू खर्चों की धनराशि मे वृद्धि ही की जा सकती है। यदि वित्त मन्त्रालय किसी खर्चे की मांग को अस्वीकार कर देता है और प्रशासकीय मन्त्रालय अपनी मांग पर अड़ा ही रहता है तो ऐसी दशा मे इस विवाद का निर्णय मन्त्रिमण्डल द्वारा होता है। मन्त्रिमण्डल यदि उचित समझे तो वित्त मन्त्रालय के विरुद्ध भी निर्णय दे सकता है। पर साधारणत मन्त्रिमण्डल ऐसा नही करता।

बजट निर्माण की उपरोक्त प्रक्रिया भारतवर्ष की व्यवस्था पर आधारित है। इंग्लैंड मे ट्रेजरी तथा अमेरिका मे ब्यूरो ऑफ बजट का बजट निर्माण प्रक्रिया मे वही महत्व है जो भारत मे वित्त मन्त्रालय का है।

संसद में बजट पर विचार

निश्चित तिथि पर संसद मे रेल एवं वित्त मंत्री अपना-अपना बजट प्रस्तुत करते हैं। भारत मे साधारण बजट फरवरी के अन्तिम दिन प्रस्तुत किया जाता है। दोनो मन्त्री बजट भाषण देकर यह काम करते हैं। बजट भाषणो की जनता तथा व्यापारी वर्ग, दोनो को बडी तीव्र उत्कंठा रहती है क्योकि आगे आने वाले वित्तीय वर्ष का बहुत कुछ अन्दाज इन भाषणो से लगाया जा सकता है।

बजट पहले लोक सभा मे प्रस्तुत किया जाता है। लोक सभा मे प्रस्तुत हो जाने के तुरन्त ही बाद यह राज्य सभा मे भी प्रस्तुत कर दिया जाता है।

संसद मे बजट पर विचार दो बार होता है। एक तो बजट पर सामान्य वाद-विवाद और दूसरा विभिन्न मन्त्रालयो की मांगो पर वाद-विवाद। बजट पर *सामान्य वाद-विवाद सरकार की वित्तीय नीति एवं प्रशासन पर वाद-विवाद न होकर* सरकार की सामान्य नीति पर वाद-विवाद है। इस समय सरकार की नीतियो एवं प्रशासन की सामान्य रूप से आलोचना या प्रशंसा की जाती है।

बजट पर सामान्य वाद-विवाद की समाप्ति के बाद प्रत्येक मन्त्रालय की मांगो पर अलग-अलग विचार किया जाता है। इस अवसर पर वित्तीय प्रशासन एवं वित्तीय नीतियो पर भी विचार किया जाता है। सरकार के खर्चों मे कमी करने के लिए सांकेतिक कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते हैं। वाद-विवाद के बाद सारे कटौती के प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए जाते है। संसदीय प्रशासकीय व्यवस्था की परम्पराओ *के अनुसार बजट मे कटौती का प्रस्ताव पास होना सरकार के प्रति अविश्वास का* प्रस्ताव माना जाता है। अत यह कहा जा सकता है कि सरकार की इच्छा के विपरीत कोई भी कटौती का प्रस्ताव पास नही हो सकता। यदि सरकार के विरोध के बावजूद भी यह पास हो जाता है तो यह सरकार के प्रति अविश्वास माना जाता है और सरकार त्यागपत्र दे देती है।

भारत मे निम्न सदन के बजट पर विचार करने के लिए २६ दिनो की सीमा निर्धारित की गई है। इसके भीतर ही सारी मांगो पर विचार करके उन्हे पास कर

दिया जाना चाहिए। इस प्रकार की समय की सीमा का फल यह होता है कि अनेक बार ये माँगें बिना उचित विचार विमर्श के ही पास कर दी जाती हैं। कुल मिला कर सामान्य बजट मे १०३ असैनिक विभागो की माँगें तथा ६ रक्षा विभाग की माँगें होती हैं। रेल बजट मे २३ माँगें होती हैं।

सभी माँगो को एक साथ मिलाकर पर्यादान विधेयक (Appropriation Bill) बनाया जाता है। निम्न सदन (लोक सभा) द्वारा स्वीकृत होने के बाद अध्यक्ष द्वारा इसे धन विधेयक होने का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है। तथा यह ऊपरी सदन (राज्य सभा) मे भेज दिया जाता है। राज्य सभा इसमे कोई परिवर्तन करने मे सक्षम नही है। १४ दिनो के बाद यह राष्ट्रपति के सम्मुख सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। चूँकि राष्ट्रपति की आज्ञा से ही यह बिल सदन के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था, अत उसकी सहमति प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही होती।

बजट स्वीकृत होने के पश्चात् यह देखना वित्त मन्त्रालय का उत्तरदायित्व है कि वह विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालय बजट के अनुसार ही धन का व्यय करते है। बजट मे किसी धनराशि की स्वीकृति मात्र से किसी प्रशासकीय मन्त्रालय को धन व्यय करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। प्रत्येक नये खर्चे के लिए वित्त मन्त्रालय से प्रशासकीय आज्ञा लेनी आवश्यक होती है। किसी मन्त्रालय को धन व्यय करने की आज्ञा देने के पहले वित्त मन्त्रालय यह देखता है कि मन्त्रालय को धन की वास्तव मे आवश्यकता है तथा देश की संचित निधि (Consolidated Fund of India) मे धनराशि उपलब्ध है।

ऑडिट

वित्तीय प्रशासन पर संसद का नियन्त्रण बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण साधन ऑडिट (लेखा-परीक्षण) है। ऑडिट का यह उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि बिना संसद की अधिकृति के कोई धन-राशि व्यय न हो। ऑडिट के मुख्य उद्देश्य निम्न लिखित कहे जा सकते हैं:

१. यह देखना कि सरकारी धन का व्यय उचित रूप से बजट मे निर्धारित उद्देश्यो के लिए ही किया गया है।

२. यह देखना भी ऑडिट का काम है कि वित्तीय प्रशासन के नियमो एव वित्त मन्त्रालय के आदेशो के अनुसार ही सरकारी धन का व्यय हो।

३. सरकारी धन का व्यय अधिकृत अधिकारियो द्वारा किया गया हो।

४. बजट मे स्वीकृत धनराशि बिना अधिकृत के एक मद से दूसरे मद मे खर्च नही की गई है।

संविधान की धारा १४८ के अनुसार भारत मे नियन्त्रक एव महालेखा परीक्षक *(Comptroller & Auditor General)* की व्यवस्था की गई है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उसका वेतन तथा सेवा की शर्तें संसद द्वारा

संसद की वित्तीय समितियाँ आज के सन्दर्भ मे उचित रूप मे काम नही कर पातीं। दलीय अनुशासन के कारण पार्टी के सदस्य सदैव ही मन्त्रिमण्डल के साथ ही मतदान करते हैं। *उन्हे सदैव ही भय बना रहता है कि ऐसा न करने से मन्त्रिमण्डल* का पतन हो जाएगा। जन लेखा समिति चाहे जो भी प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, और सदस्यगण उस पर वाद-विवाद के समय चाहे जो भी मत व्यक्त कर लें, पर मतदान का अवसर आने पर वे अपने पार्टी के आदेश (Whip) के अनुसार ही मतदान करते हैं। सरकार ने चाहे धन का खुलेआम दुरुपयोग हो क्यो न किया हो, संसद सरकार का ही समर्थन करती है।

विशेष अध्ययन के लिए

१. डाइमक एण्ड डाइमक . पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
२. व्हाइट : इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
३. विलोबी · प्रिंसिपिल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
४. एम०पी०शर्मा लोक-प्रशासन: सिद्धान्त एव व्यवहार
५. अवस्थी एव माहेश्वरी . लोक-प्रशासन

१७

भारतीय प्रशासन: एक प्रारूप

भारत की वर्तमान प्रशासकीय व्यवस्था का प्रारम्भ अंग्रेजो के भारत आगमन के समय से कहा जा सकता है। अंग्रेज भारत मे सदैव प्रशासक के रूप मे ही नहीं रहे हैं। प्रारम्भ मे अंग्रेज यहाँ पर व्यापारी के रूप मे आये थे। सन् १६०० ईस्वी मे ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना लदन मे हुई थी। ब्रिटिश सम्राट् द्वारा इसे अधिपत्र प्रदान किया गया था और इसका उद्देश्य भारत से व्यापार करना था। उन दिनो ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रतिनिधि भारतीय राजाओ के दरबार मे उपस्थित होते थे और नियमानुसार भेंट व उपहार इत्यादि प्रदान कर व्यापारिक सुविधाओ की प्रार्थना करते थे। जब भारत मे मुगल सम्राटो की शक्ति का ह्रास होने लगा और छोटे-बड़े राजे-रजवाडे परस्पर लडने-भिडने लगे तो कम्पनी ने इस अवसर का लाभ उठाया। अंग्रेजो ने कभी इसकी सहायता की तो कभी किसी दूसरे की, और मौका पाकर देश के बहुत बड़े भाग के स्वामी बन बैठे।

भारत मे अंग्रेजी शासन के काल को प्रमुखतया दो भागो मे बाँटा जा सकता है:

१. कम्पनी का शासनकाल (१७६०—१८५७ ई०)

२. ब्रिटिश सम्राट् का शासनकाल (१८५८—१९४७ ई०)

सन् १७६० ई० के पहले कम्पनी देश का शासन हथियाना नही चाहती थी। वे शायद ऐसा कर भी नही सकते थे। उस समय तक उनका उद्देश्य ऐसी स्थिति बनाए रखना था कि उनका व्यापार सुचारु रूप मे चल सके और भारतीय प्रशासक उनके मित्र बने रहे ताकि वे अपने प्रतियोगी फ्रेंच एव उच्च कम्पनियो से होड कर सकें। इस काल मे उन्होने कलकत्ता, मद्रास एव बम्बई मे अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कीं। कलकत्ता और मद्रास मे अंग्रेज कम्पनी ने अपने उपनिवेश स्थापित किए। बम्बई का उपनिवेश चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाल की राजकुमारी कैथराइन से विवाह के अवसर पर दहेज के रूप मे मिला था। सम्राट ने इसे १० पौ० के वार्षिक मालगुजारी पर अंग्रेज कम्पनी को दे दिया था। अपने औपनिवेशिक क्षेत्र मे कम्पनी म्युनिसिपल प्रशासन और न्याय प्रशासन की व्यवस्था करती थी। चूँकि इन क्षेत्रो मे अंग्रेजो का ही आधिपत्य था अतः वहाँ पर इग्लैंड की सस्थाओ के आधार पर ही सस्थायें बनी। मेयर (महापौर) और एल्डरमैन (धर्मसंघ अधिकारी) की सवारी उसी प्रकार इन क्षेत्रो मे निकला करती थी, जैसेकि लदन मे। इग्लैंड के मेयर की भांति

उपनिवेशो के मेयर भी रजत जटित राजदण्ड (Mace) रखा करते थे।

इस काल मे यद्यपि कम्पनी यदा-कदा भारतीय प्रशासको से लड-भिड जाती थी पर उनका उद्देश्य राज्य स्थापित करना नही था। इन लडाइयो का उद्देश्य भी व्यापार के क्षेत्र को विस्तृत करना ही था। "उसकी (कम्पनी की) आकाक्षाएँ इससे अधिक बलवती नही थी कि सीमा-शुल्क दिये बिना ही उसे व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो जाये।"[१] इन लडाइयो मे उन्हे अधिक सफलता भी शायद नही मिली। एक बार उन्होने मुगल सम्राट् की शक्ति को चुनौती दी पर वे बुरी तरह पराजित हुए। १६२४ मे मुगल सम्राट् की आज्ञा से सूरत एव अन्य स्थानो मे स्थित कम्पनी के सभी कर्मचारी पकड लिए गए और उन्हे जेल मे डाल दिया गया। इस प्रकार की छिट-फुट घटनाओ के अतिरिक्त कम्पनी का रवैया प्राय शातिपूर्ण ही रहा।

१७६० ई० मे कम्पनी को पहली बार प्रशासन का अवसर मिला। प्लासी की लडाई के पश्चात् नवाब मीरकासिम अली खाँ ने बर्दमान मिदनापुर और चटगाँव के जिले कम्पनी को दे दिए जिससे कि उनकी आय से कम्पनी बगाल की रक्षा का व्यय-भार सभाल सके। सन् १७६५ मे मुगल सम्राट् शाह आलम ने कम्पनी को बगाल की दीवानी दे दी। अर्थात् सम्पत्ति सम्बन्धी अभियोगो मे न्याय करने का अधिकार कम्पनी को मिल गया। दीवानी का अर्थ यह था कि पूरे बगाल मे राजस्व वसूल करने की जिम्मेवारी कम्पनी को दे दी गई। न्याय एव सामान्य प्रशासन सम्राट् के हाथ मे बना रहा।

जैसे-जैसे मुगल सम्राट् कमजोर होते गये और छोटे छोटे राजा नवाब आदि आपस मे लडने भिडने लगे, कम्पनी ने धीरे-धीरे अपना क्षेत्रीय विस्तार किया और अपनी स्थिति मजबूत की। लार्ड वेलेजली ने युद्ध एव सन्धि के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार किया। सहायक सधि (Subsidiary Alliance) के माध्यम से कमजोर नवाब एव राजाओ को यह विकल्प दिया गया कि वे कम्पनी को कुछ इलाका दे दें और इसके प्रतिफल के रूप मे कम्पनी ने उनकी रक्षा का वचन दिया। यथा, निजाम ने बरार का इलाका कम्पनी को देकर अपनी सुरक्षा खरीदी। मराठो और टीपू सुल्तान को युद्ध मे हराकर वेलेजली ने कम्पनी की राज्य सीमा का विस्तार किया। इस तरह देश के बहुत बडे भाग पर कम्पनी का अधिकार हो गया।

यद्यपि देश के बहुत बडे भाग पर कम्पनी का अधिकार हो गया था, पर दिल्ली उसकी अधिकार सीमा के बाहर था। १८५७ के सिपाही विद्रोह के दौरान मुगल सम्राट् बहादुरशाह द्वितीय को कैद कर रगून भेज दिया गया और उनके वशजो को मार डाला गया। भारतीय परम्परा के अनुसार दिल्ली का शासक सारे देश का शासक माना जाता है। अब कम्पनी का सारे देश पर एकछत्र अधिकार हो

---

१ D Melley, The Indian Civil Service, Frank cass & Co Ltd 1965 pp 7

गया। वैसे तो पहले भी कम्पनी की शक्ति को चुनौती देने वाला कोई नहीं था, पर मुगलों के वंश का अन्त होने से यह भय जाता रहा कि कभी उसके नेतृत्व में कोई विद्रोह भड़क सके।

सन् १८५८ ई० में कम्पनी के शासन का अंत हो गया और शासन का भार सम्राट ने सीधे अपने हाथों में ले लिया। शासन व्यवस्था तो पहले की भाँति ही बनी रही पर अब परिवर्तन यह आया कि प्रशासन का काम कम्पनी के नाम पर न चलाया जा कर सम्राट के नाम पर चलाया जाने लगा। इंग्लैण्ड के सम्राट् भारत के भी सवैधानिक शासक हो गए। भारतीय प्रशासन पर नियंत्रण रखने के लिए इंग्लैण्ड के कैबिनेट में भारत सचिव की नियुक्ति की गई। भारत सचिव को प्रशासकीय कामों में सहायता पहुँचाने के लिए १५ सदस्यों की एक समिति नियुक्त कर दी गई। भारत सचिव की नियुक्ति के बाद कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स तथा बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को समाप्त कर दिया गया। इसका काम भारत सचिव को दे दिया गया। इस काल में भारत सरकार के कामों में अत्यधिक वृद्धि हुई। सन् १८५८ ई० में जब सम्राट् ने शासन का काम अपने हाथ में लिया था उस समय भारत सरकार के निम्नलिखित ५ विभाग थे :

१. गृह विभाग
२ वैदेशिक विभाग
३. वित्त विभाग
४ सैनिक विभाग
५. लोक-निर्माण विभाग

सम्राट् के शासन-भार सभालने के ६० वर्षों के भीतर ही विभागों की सख्या बढ़ कर १० हो गई। नये विभागों में न्याय विभाग, राजस्व विभाग, उद्योग एवं वाणिज्य विभाग, रेलवे तथा शिक्षा विभाग आते हैं।

भारत सरकार अधिनियम १९१९ के अन्तर्गत पहली बार वैधानिक तरीके से राज्यों तथा केन्द्र के बीच प्रशासनिक विषयों का बँटवारा किया गया। पर इस अधिनियम का भारत सरकार के प्रशासकीय ढाँचे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

भारत सरकार अधिनियम १९३५ के अन्तर्गत भारत में सघीय शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम में प्रशासकीय विषयों को तीन सूचियों में बाँट दिया गया। केन्द्रीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची। यद्यपि प्रान्तों में सन् १९३७ में इस अधिनियम के अनुसार सरकारें सगठित की गईं पर केन्द्रीय सरकार में इस अधिनियम को लागू नहीं किया जा सका। केन्द्रीय सरकार में इसके लागू होने के लिए आवश्यक था कि एक पूर्व निर्धारित संख्या में भारतीय नरेश सघीय शासन में शामिल हों। अभी भारत सरकार नरेन्द्र मण्डल (Chamber of Princes) से विचार-विमर्श ही कर रही थी कि द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। फलतः भारत सरकार अधिनियम १९३५ का केन्द्रीय भाग कभी लागू ही नहीं हो सका। सन्

१९४७ तक केन्द्रीय सरकार भारत सरकार अधिनियम १९१९ के अनुसार ही बनी रही।

भारत सरकार के विभागो का पुनर्गठन सन् १९२३ मे किया गया। सन् १९२१ मे विभागो की सख्या बढ कर ११ हो गई थी। पुनर्गठन के पश्चात् इनकी सख्या घट कर ९ हो गई। सन् १९३७ तक भारत सरकार मे ९ ही विभाग रहे। विश्व युद्ध के दौरान अनेक नये विभाग खोले गये। स्वतत्रता प्राप्ति के समय भारत सरकार मे १८ विभाग थे।

वर्तमान समय में केन्द्रीय सरकार मे निम्नलिखित मत्रालय तथा विभाग हैं :–

१. वैदेशिक मामलो का मत्रालय
२. रक्षा मत्रालय
३. वित्त मंत्रालय
    (अ) माल तथा बीमा विभाग
    (ब) व्यय विभाग
    (स) आर्थिक मामलो का विभाग
    (द) बैंकिंग विभाग
४. [illegible] मत्रालय
५. विधि मत्रालय
    (अ) कानूनी मामलो का विभाग (Department of Legal Affairs)
    (ब) विधि विभाग (Legislative Department)
६. विदेशी व्यापार एव पूर्ति मत्रालय
    (अ) विदेशी व्यापार विभाग
    (ब) पूर्ति विभाग
७. औद्योगिक विकास, आन्तरिक व्यापार तथा कम्पनी के मामलो का मत्रालय
    (अ) औद्योगिक विकास विभाग
    (ब) आन्तरिक व्यापार विभाग
    (स) कम्पनी के मामलो का विभाग
८. इस्पात तथा भारी इंजीनियरिंग उद्योग मंत्रालय
९. पैट्रोलियम, रसायन, खान एव खनिज मंत्रालय
    (अ) पैट्रोलियम विभाग
    (ब) रसायन विभाग
    (स) खान एव खनिज विभाग
१० रेल मत्रालय
११ जहाजरानी एव परिवहन मत्रालय
१२ पर्यटन एवं नागरिक उड्डयन मंत्रालय

१३ श्रम एवं रोजगार विभाग
  (अ) श्रम एव रोजगार विभाग
  (ब) पुनर्वास विभाग
१४ खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास एव सहकारिता मत्रालय
  (अ) कृषि विभाग
  (ब) खाद्य विभाग
  (स) सामुदायिक विकास विभाग
  (द) सहकारिता विभाग
१५ सिंचाई एव विद्युत मन्त्रालय
१६ शिक्षा एव युवा सेवा (Youth Services) मत्रालय
१७. स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, निर्माण, तथा आवास एवं शहरी विकास मत्रालय
  (अ) स्वास्थ्य विभाग
  (ब) परिवार नियोजन विभाग
  (स) निर्माण, आवास एव शहरी विकास विभाग
१८ सूचना एव प्रसारण मंत्रालय
१९. ससदीय मामलो का विभाग
२० अणुशक्ति विभाग
२१ सचार विभाग
२२ समाज-कल्याण विभाग

भारतीय सविधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार की कार्यकारिणी की शक्ति राष्ट्रपति मे निहित है। राष्ट्रपति की सहायता के लिए सविधान मे मन्त्रि-परिषद् की व्यवस्था की गई है। मन्त्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

भारत मे भी इंग्लैंड की भाँति ही ससदात्मक शासन प्रणाली है। राष्ट्रपति का पद तो नामधारी प्रधान का है। वह राज्य का प्रधान है। शासन का नहीं। शासन का सारा काम प्रधानमन्त्री और उसके सहयोगियो के हाथ मे है। प्रधानमन्त्री मन्त्रि-परिषद् का प्रधान होता है। लोक सभा मे बहुमत वाले दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री बनने के लिए आमन्त्रित करता है। प्रधान मन्त्री के परामर्श से ही अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति की जाती है।

भारत मे प्रशासन की धुरी प्रधानमन्त्री है। वह अपने सहयोगियो की सहायता से सरकार के दोनो भागो कार्यपालिका एव ससद का नेतृत्व करता है। यदि ससद में उसका काफी बहुमत है तो वह अपनी इच्छानुसार सविधान मे परिवर्तन भी करवा सकता है। अनेक बार जब उच्चतम न्यायालय ने सरकार के विरुद्ध निर्णय दिये हैं, सरकार ने सविधान मे संशोधन करके उन्हें, निरस्त कर दिया है। यदि वास्तव मे प्रधानमन्त्री के सहयोगी उसके साथ हों और ससद मे काफी बहुमत हो तो वह

अमेरिकी राष्ट्रपति से भी शक्तिशाली शासक के रूप में उभर कर सामने आ सकता है।

भारतवर्ष में मन्त्रिपरिषद् में तीन प्रकार के मन्त्री होते हैं—

(अ) कैबिनेट स्तर के मन्त्री—ये मन्त्री साधारणत. प्रमुख विभागों के प्रधान होते हैं। कैबिनेट के मंत्री ही सम्मिलित रूप से शासन की प्रमुख प्रशासकीय नीतियों को निर्धारित करते हैं।

(ब) राज्य मंत्री—ऐसे मन्त्री या तो स्वतन्त्र रूप से कम महत्त्वपूर्ण मन्त्रालयों को सम्भालते हैं या कैबिनेट के मन्त्रियों को सहायता करते हैं। बड़े-बड़े विभागों में कई राज्य मन्त्री होते हैं।

(स) उप मन्त्री—ऐसे मन्त्री मन्त्रालयों को स्वतन्त्र रूप से नहीं सम्भालते। साधारणत ये कैबिनेट मन्त्रियों की अधीनता में काम करते हैं।

कैबिनेट प्रधानमंत्री एवं अन्य कैबिनेट स्तर के मन्त्रियों को मिला कर बनता है। राज्य मन्त्रियों को जब उनके मन्त्रालयों से सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श हो रहा हो तो विशेष रूप से कैबिनेट की मीटिंगों में आमन्त्रित किया जाता है। नीति निर्माण के क्षेत्र में कैबिनेट सबसे ऊँची तथा शक्तिशाली संस्था है। वास्तविक रूप से यदि देखा जाये तो सारी कार्यकारिणी शक्ति कैबिनेट के हाथ में ही निहित है।

कैबिनेट की सहायता के लिए अनेक कैबिनेट समितियाँ हैं। कुछ समितियाँ तो स्थायी हैं तथा कुछ आवश्यकतानुसार नियुक्त की जाती हैं। वर्तमान समय में कैबिनेट की निम्नलिखित ९ स्थायी समितियाँ हैं।

१. सुरक्षा समिति
२. आन्तरिक मामलों की समिति
३. मूल्य उत्पादन एवं निर्यात समिति
४. परिवार नियोजन समिति
५. खाद्य एवं कृषि समिति
६. वैदेशिक मामलों की समिति
७. पर्यटन एवं यातायात समिति
८. राष्ट्रीय मामलों की समिति
९. नियुक्ति समिति

भारत सरकार का प्रशासकीय काम मन्त्रालयों एवं विभागों में विभक्त है। मन्त्रालयों में एक या एक से अधिक विभाग होते हैं। मन्त्रालय तथा विभाग अपने कार्यक्षेत्र के भीतर उचित प्रशासकीय व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये अपने विभाग के लिए नीति निर्धारित करते हैं तथा उसे कार्यान्वित करते हैं। मन्त्रालयों तथा विभागों से सम्बद्ध संलग्न कार्यालय तथा अधीनस्थ कार्यालय भी होते हैं।

साधारणत: मन्त्रालय का प्रशासकीय प्रधान सचिव होता है। वह मन्त्री महोदय को नीति तथा प्रशासन के सभी मामलों पर परामर्श देता है। इसके अतिरिक्त वह विभागीय प्रशासन में कार्यकुशलता बनाये रखने के लिए भी उत्तरदायी है। यदि

विभाग इतना बड़ा है कि एक सचिव उसको नही सम्भाल सकता तो मंत्रालय को कई कक्षो (Wings) मे विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक कक्ष के लिए संयुक्त सचिव नियुक्त कर दिया जाता है। संयुक्त सचिव यद्यपि सामान्य रूप से सचिव के नीचे काम करता है पर ऐसी चेष्टा की जाती है कि उसे अधिक स्वतन्त्रता पूर्वक काम करने का अवसर मिले। कुछ मंत्रालयो मे विशेष सचिव, प्रमुख सचिव, सामान्य सचिव आदि भी होते है। कुछ मत्रालयो मे अतिरिक्त सचिव का भी पद होता है।

भारत में लोक-प्रशासन के विशिष्ट लक्षण

१. भारत मे लोक-प्रशासन कानून पर आधारित है। सारे काम कानून की अधिकार सीमा के भीतर ही होने चाहिए। न्यायालय इस बात को देखता है कि प्रशासन कही कानून का उल्लघन तो नही कर रहा है। कानून का उल्लघन करने वाली कार्यवाहियो को न्यायालय अवैध घोषित कर सकता है।

२. भारत मे ससद इग्लैंड की पार्लियामेंट की भांति सार्वभौम सत्ताधारी सस्था नही है। फलत इसके कानून बनाने की अधिकार सीमा पर सवैधानिक नियन्त्रण है। सविधान की सीमा रेखा मे ही ससद कानून बनाने को सक्षम है। यदि ससद चाहे तो एक विशिष्ट प्रक्रिया से सविधान मे सशोधन तो कर सकती है, पर सविधान की धाराओ का उल्लघन नही कर सकती। यदि कभी ससद ऐसा करती है तो उसे उच्च अथवा उच्चतम न्यायालय असवैधानिक घोषित कर सकता है।

३. लोक-प्रशासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। लोक सभा तथा राज्य सभा मे जनता के प्रतिनिधियो के सामने सरकार को अपनी नीति के सम्बन्ध मे सफाई प्रस्तुत करनी होती है।

४. प्रशासन की व्यवस्था सघात्मक है। भारत संघ राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशो को मिला कर बना है। राज्यो तथा केन्द्र के बीच प्रशासनिक विषयो के बँटवारे के लिए सविधान मे तीन सूचियो–यथा केन्द्र–सूची, राज्य–सूची, तथा समवर्ती सूची की व्यवस्था की गई है। यहाँ शक्ति का बँटवारा इस प्रकार है कि केन्द्र अत्यधिक शक्तिशाली बन गया है।

५ लोक-प्रशासन सरचना कर्मचारी-वर्ग एव स्वभाव की दृष्टि से असैनिक है। सैनिक एवं असैनिक प्रशासन अलग-अलग रक्खा जाता है। सेना के अधिकारी असैनिक विभागो मे नहीं रक्खे जाते।

६. यहा प्रशासन का आधार विधि का शासन है। सभी के लिए एक ही न्यायाधिकरण तथा एक ही दण्ड विधान है। जिन देशों मे प्रशासनिक सविधि की प्रथा होती है वहाँ प्रशासक वर्ग के लिए अलग न्यायाधिकरण तथा कानून व्यवस्था होती है।

■ यहाँ कुछ अखिल भारतीय सेवाओ का निर्माण किया गया है जैसे भारतीय प्रशासकीय सेवा (Indian Administrative Service) भारतीय पुलिस सेवा (Indian Police Service) इन सेवाओ के सदस्यों का चयन केन्द्रीय लोक-सेवा

आयोग करती है। इनकी सेवा की शर्तें केन्द्रीय सरकार निर्धारित करती है। भारतीय प्रशासकीय सेवा के सदस्यो का राज्य के सभी उच्च पदों पर एकाधिकार होता है। यद्यपि ये अधिकारी राज्यो मे काम करते है पर राज्य सरकार इनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नही कर सकती। यदि इनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी हो तो यह केन्द्रीय सरकार द्वारा लोकसेवा आयोग के परामर्श से ही की जा सकती है।

८ लोक-प्रशासन अब विशेषज्ञो का क्षेत्र बनता जा रहा है। राजकीय सेवाओ मे जिन व्यक्तियो को लिया जाता है वे आजीवन वहाँ रहते हैं। आज शायद ही कोई ऐसा व्यवसाय है जिसके विशेषज्ञो की सरकार मे आवश्यकता न हो।

९ प्रशासकीय व्यवस्था मे सिद्धान्त एवं व्यवहार मे अन्तर है। सिद्धान्त रूप से तो राष्ट्रपति मे सारी कार्यपालिका शक्तियाँ निहित हैं। मन्त्रिमण्डल का कार्य सहायता एव परामर्श देना है। *वस्तुत स्थिति यह है कि राष्ट्रपति नाम मात्र का* प्रधान है। कार्यपालिका शक्तियाँ मंत्रिमण्डल तथा, प्रधानमन्त्री के हाथो मे निहित हैं। कानूनी दृष्टि से विभागीय प्रशासन मे प्रत्येक निर्णय मन्त्री महोदय का ही होता है। पर वास्तविकता यह है कि मन्त्रियो के नाम से उच्च पदाधिकारी निर्णय लेते हैं। कई बार तो मन्त्रियो को इन निर्णयो का पता तब चलता है जबकि ससद मे प्रश्न पूछे जाते है या समाचार-पत्रो मे आलोचना होती है।

१० लोक प्रशासन व्यापक स्तर पर चलाया जाता है। प्रजातत्र के विकसित होने एव सरकार द्वारा नई जिम्मेवारियो को अपने ऊपर ले लेने के कारण प्रशासन का काम बहुत अधिक हो गया है।

विशेष अध्ययन के लिए

१ अशोक चदा	:	इडियन एडमिनिस्ट्रेशन
२ इडियन इस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन	·	दी ऑरगेनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया
३ सचदेव एव दुग्गा	:	स्टडीज इन इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन
४ माहेश्वरी	.	इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन

राष्ट्रीय प्रशासनः कार्यकारिणी

राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति

भारत १६ राज्यो का सघ है। सविधान के अनुसार सघ की कार्यकारिणी शक्ति राष्ट्रपति मे निहित है।[१] राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियो द्वारा सविधान की व्यवस्था के अनुसार करता है।[२]

राष्ट्रपति के अतिरिक्त सविधान मे उपराष्ट्रपति के पद की भी व्यवस्था है।[३] यदि राष्ट्रपति के त्याग-पत्र देने, हटा दिये जाने, मृत्यु अथवा अन्य किसी कारण से राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाये, तो नये राष्ट्रपति के निर्वाचन तक उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के पद पर काम करता है।[४] श्रद्धेय डाक्टर जाकिरहुसैन की मई १९६९ मे मृत्यु के तुरत बाद डॉ॰ वी॰ वी॰ गिरी, उपराष्ट्रपति, ने राष्ट्रपति का पद-भार सभाल लिया। भारत मे यह पहला अवसर है, जब राष्ट्रपति के कार्य-काल मे मृत्यु हो जाने से उपराष्ट्रपति को यह कार्यभार सभालना पड़ा। इसी प्रकार, यदि राष्ट्रपति अनुपस्थिति, अस्वस्थता, या अन्य किसी कारणवश अपना कार्यभार सभालने मे असमर्थ हो तो राष्ट्रपति के पुन· कार्यभार सभाल सकने तक उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के कार्य-भार को सभालता है।[५]

जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के पद पर काम करता है, अथवा उसके पद की जिम्मेवारियाँ सभालता है तो उसे वही अधिकार एव शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो विधिवत चुने गये राष्ट्रपति को प्राप्त होती है। इस काल मे उसे राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता, एव अन्य सुविधायें दी जाती हैं।[६]

राष्ट्रपति का पद

भारतीय सघ का प्रधान राष्ट्रपति कहा जाता है। सविधान के अनुसार समस्त कार्यकारिणी शक्तियाँ राष्ट्रपति मे निहित हैं। राष्ट्रपति देश की सेना का

१.	भारतीय सविधान	धारा		५३ (१)
२.	"	"	"	५३ (१)
३.	"	"	"	६३
४.	"	"	"	६५ (१)
५.	"	"	"	६५ (२)
६.	"	"	"	६५ (३)

सर्वोच्च सेनापति है और उसे क्षमादान तथा सजा कम करने का अधिकार प्राप्त है।[1] भारत सरकार के सभी कार्यकारिणी सम्बन्धी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किए जाते हैं।[2] सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियां जैसे प्रधानमंत्री,[3] केन्द्रीय सरकार के अन्य मंत्री, लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों[4], राज्यों के राज्यपाल[5], सर्वोच्च न्यायालय[6] और उच्च न्यायालय[7] के मुख्य न्यायाधीश एवं न्यायाधीश, महाभिकर्ता (एटर्नी जनरल),[8] मुख्य चुनाव अधिकारी (चीफ इलेक्शन कमिश्नर) आदि की राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है। चुनाव आयोग, वित्त आयोग, सरकारी भाषा आयोग आदि की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है।

आपत्तिकाल की घोषणा के बाद राष्ट्रपति के अधिकार अत्यन्त ही विस्तृत हो जाते हैं। वह जनता के मूल अधिकारों पर रोक लगा सकता है। सरकारी अधिकारियों के वेतन कम कर सकता है। राज्य सरकारों को प्रशासकीय निर्देश दे सकता है और आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकार के मंत्रिमण्डल एवं विधानसभाओं को भंग कर सकता है।

कोई विधेयक तबतक कानून नहीं बन सकता जबतक कि राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर न कर दे। वह संसद द्वारा पारित विधेयकों को पुनर्विचार के लिए भेज सकता है। यदि संसद का सत्र नहीं चल रहा है तो अध्यादेश जारी कर सकता है। वह लोक सभा को भंग कर नये चुनाव के लिए आदेश दे सकता है। वह संसद के सदनों की सम्मिलित बैठक बुला सकता है और दोनों अथवा एक सदन को सदेश भेज सकता है। वित्तीय विधेयक को वह संसद द्वारा पास किये जाने पर वापस तो नहीं कर सकता, पर कोई भी वित्त सम्बन्धी विधेयक बिना उसकी सहमति के संसद के सम्मुख प्रस्तुत नहीं जा सकता। यदि राज्यपाल उचित समझे तो राज्य विधानसभा द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ भेज सकता है। राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित कुछ विधेयक जैसे हाई कोर्ट की शक्तियों पर प्रभाव डालने वाले विधेयक या सम्पत्ति को जबरदस्ती प्राप्त (Acquire) करने से सम्बन्धित विधेयक बिना राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के कानून नहीं बन सकते।

---

१ भारतीय संविधान धारा ७२
२. ,, ,, ,, ७३
३ ,, ,, ,, ७५
४ ,, ,, ,, ३१६
५. ,, ,, ,, १५५
६ ,, ,, ,, १२४ (२)
७. ,, ,, ,, २१७
८ ,, ,, ,, ७६ (१)

राष्ट्रपति के पद के लिए योग्यतायें

राष्ट्रपति के पद के उम्मीदवार के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—[१]

१ भारतीय नागरिक

२. पैंतीस वर्ष की आयु

३. ससद के लोक सभा के सदस्य चुने जाने की योग्यता

सविधान की धारा १०२ के अनुसार संसद के सदस्यों के लिए निम्नलिखित अयोग्यतायें निर्धारित की गई हैं। चूँकि राष्ट्रपति के पद के उम्मीदवार को लोक सभा के सदस्य चुने जाने के योग्य होना चाहिए अत उसे इन अयोग्यताओं से मुक्त होना चाहिए।

(अ) केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार मे किसी वेतनभोगी पद पर नही होना चाहिए।

(ब) पागल नही होना चाहिए।

(स) दिवालिया नही होना चाहिए।

(द) किसी ऐसे व्यक्ति को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन का अधिकार नही है। जो भारत का नागरिक न हो, या स्वेच्छा से भारतीय नागरिकता छोड चुका हो या अन्य देश के प्रति भक्ति रखता हो।

(इ) ससद द्वारा बनाये गए किसी नियम के अन्तर्गत अयोग्य नही होना चाहिए।

(४) *कोई ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित नही हो सकता जो* राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार के अधीन किसी वेतनभोगी पद पर हो। यह अयोग्यता सविधान मे दो बार वर्णित है।[२] राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल, राज्य या केन्द्र सरकार मे मन्त्री आदि सविधान की इस धारा के अर्थ मे वेतनभोगी पद नहीं हैं।

निर्वाचन

राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचक मडल द्वारा किया जाता है। इस निर्वाचक मडल मे दो प्रकार के सदस्य होते हैं—

(१) राज्यो की विधान सभाओं के चुने हुए सदस्य

(२) ससद के दोनो सदनो के चुने हुए सदस्य।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि राष्ट्रपति के चुनाव मे केवल निर्वाचित सदस्य ही भाग ले सकते हैं। मनोनीत सदस्य चाहे वे राज्यो की विधान सभाओं के

---

१ *भारतीय सविधान धारा ५८*

१. देखिये सविधान की धारा ५८ (२), १०२

हो अथवा ससद के दोनो सदनो के सदस्य हो, राष्ट्रपति के चुनाव मे भाग नही ले सकते। राज्य सभा के १२ मनोनीत सदस्य एवं लोक सभा के मनोनीत सदस्य राष्ट्र-पति के चुनाव मे भाग नहीं ले सकते। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जबकि ससद के दोनो सदनो के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन मे भाग लेते हैं, राज्यों की केवल विधान सभाग्रो के सदस्य ही भाग लेते हैं। राज्यो की विधान परिषदो के सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग नही लेते।

राष्ट्रपति के निर्वाचन मे निर्वाचक मडल के दोनो प्रकार के सदस्य समान संख्या मे मत डालते हैं। यह इस प्रकार किया जाता है।

राज्य की विधान सभा के एक चुने हुए सदस्य की मत सख्या

$$\frac{\text{राज्य की जनसख्या}}{\text{विधान सभा मे चुने हुए सदस्यो की सख्या} \times १०००} = \text{विधान सभा एक चुने सदस्य की मत सख्या}$$

मान लीजिये कि राजस्थान राज्य की विधान सभा मे चुने हुए सदस्यो की संख्या १८३ है और यहा की जन सख्या १८, ३,०००,००० है। अब इस राज्य की विधान सभा के चुने हुए सदस्य की मत सख्या इस प्रकार निर्धारित की जाएगी :

$$\frac{१८,३०,००,०००}{१८३ \times १०००} = १०००$$

राजस्थान विधान सभा का एक निर्वाचित सदस्य १००० मत देगा। राजस्थान विधान सभा के सभी निर्वाचित सदस्य मिलकर १८३ × १०००=१८३००० मत देगे।

ससद के दोनो सदनो के एक चुने हुए सदस्य की मत सख्या —
सभी राज्यो के निर्वाचित सदस्यो द्वारा दिये गए मत

ससद मे दोनो सदनो के चुने हुए सदस्यो की सख्या=ससद के दोनो सदनो के एक चुने हुए सदस्य की मत सख्या।

जिस प्रकार ऊपर के उदाहरण मे राजस्थान राज्य के सभी निर्वाचित सदस्य मिल कर १८,३००० मत देते हैं। उसी प्रकार अन्य सभी राज्यों की विधान सभाग्रो के चुने हुए सदस्यो की मत सख्या निकाल कर, उनके योगफल को ससद के दोनो सदनो के चुने हुए सदस्य सख्या मे भाग देकर, संसद के दोनो सदनो के एक निर्वाचित सदस्य की मत सख्या प्राप्त की जा सकती है। मान लीजिये कि ससद के दोनो सदनो मे निर्वाचित सदस्यो की सख्या ७३४ है। और राज्यो की विधान सभाग्रो के निर्वाचित सदस्यो द्वारा दिये गए मतो की सख्या ३,६७,००० होनी है तो समद के दोनो सदनो का एक निर्वाचित सदस्य $\frac{३,६७,०००}{७३४}$ = ५०० मत देगा।

राष्ट्रपति का चुनाव एकल सक्रमणीय पद्धति (Single Transferable vote) से होता है। यह इस प्रकार होता है :—

सबसे पहले निम्नलिखित समीकरण के अनुसार निर्वाचकीय भजनफल प्राप्त कर लिया जाता है।

$$\frac{\text{वैध रूप से डाले गये मतो की की सख्या}}{\text{स्थानो की सख्या जोकि} + १} + १ = \text{निर्वाचकीय भजनफल}$$

निर्वाचन से भरे जाने हैं।

मान लीजिए कि वैध रूप से डाले गये मतो की सख्या १०,००० और निर्वाचन के फलस्वरूप एक ही स्थान भरा जाना है तो

$$\frac{१०\,०००}{१ + १} + १ \quad = ५००१ \text{ निर्वाचकीय भजनफल}$$

(Electoral quotient) हुआ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस चुनाव मे विजयी होने के लिए प्रत्याशी को कम से कम ५००१ मत प्राप्त होने चाहिये।

एकल सक्रमणीय पद्धति मे मतदान निम्न रूप से होता है। साधारणतया मतदान मे यह होता है कि मतदाता भिन्न-भिन्न बक्सो मे से किसी मे अपनी स्वेच्छा से मतपत्र डाल देता है। ऐसी दशा मे मतपत्र के ऊपर किसी प्रकार का निशान आदि नही लगाना पडता। कई बार मतपत्र एक ही बक्से मे डालने की व्यवस्था होती है। ऐसी दशा मे मतदाता मतपत्र पर अपने पसन्द के अनुसार एक प्रत्याशी के नाम के सामने निशान लगा देता है। पर एकल संक्रमणीय पद्धति मे मतदाता प्रत्येक प्रत्याशी को वोट दे सकता है। मतदाता मतपत्र मे अपना अधिमान (Preference) बताता है। जैसे मान लीजिए अ, ब, स, द चार व्यक्ति राष्ट्रपति के पद के लिए प्रत्याशी है। मतदाता इनमे से किसी एक को अपना प्रथम अधिमान मत (First Preference Vote) द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ अधिमान दे सकता है। उदाहरण के लिए, वह इस प्रकार मत देता है।

अ	—	द्वितीय अधिमान
ब	—	प्रथम अधिमान
स	—	तृतीय अधिमान
द	—	चतुर्थ अधिमान

इस मतदान प्रथा की विशेषता यह है कि प्रत्येक मतदाता को उतने मत प्राप्त होते हैं जितने कि प्रत्याशी चुनाव मे खडे हो रहे हैं। मतदाता अधिमान अंकित कर देता है।

सबसे पहले प्रथम अधिमान मतो की गणना की जाती है। उपरोक्त उदाहरण में मान लीजिये कि प्रथम अधिमान मतो की गणना के बाद यह स्थिति होती है।

अ	—	३,५००
ब	—	३,२००

स	—	१,८००
द	—	१,५००

चूँकि राष्ट्रपति चुने जाने के लिए ५००१ मतो जोकि निर्वाचकीय भागफल की आवश्यकता है अत. प्रथम अधिमान मतो की गणना के फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति नही चुना जा सका। ऐसी स्थिति मे उस व्यक्ति को जिसेकि सबसे कम प्रथम अधिमान मत मिले हैं उसे चुनाव की दौड से अलग कर दिया जाता है और उसके मतो के द्वितीय अधिमान की गणना की जाती है। उपरोक्त उदाहरण मे 'द' को सबसे कम प्रथम अधिमान मत मिले हैं अत 'द' को चुनाव की दौड से अलग कर दिया जाएगा और उसके १५०० मतो के द्वितीय अधिमान की गणना की जाएगी।

द्वितीय अधिमान मतो की गणना के बाद यह स्थिति होगी है :

		प्रथम अधिमान		द्वितीय अधिमान		योगफल
अ	—	३५००	+	२००	=	३७००
ब	—	३२००	+	७००	=	३६००
स	—	१८००	+	६००	=	२४००

द्वितीय अधिमान की गणना के फलस्वरूप भी कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित नही हो सका क्योकि किसी भी प्रत्याशी को ५००१ मत प्राप्त नही हो सके हैं। अब तृतीय अधिमान मतो की गणना का नम्बर आता है। चूँकि प्रथम और द्वितीय अधिमानो को मिला कर 'स' को सबसे कम मत मिले हैं इसलिए 'स' को चुनाव के मैदान मे अलग कर दिया जाएगा और उसके २४०० मतो की तृतीय अधिमान की गणना की जावेगी।

तृतीय अधिमान मतो की गणना के बाद यह स्थिति सामने आती है।

	प्रथम अधिमान	द्वितीय अधिमान	तृतीय अधिमान	योगफल
अ	३,५००	२००	१,१००	४८००
ब	३,२००	७००	१,३००	५,२००

तृतीय अधिमान मतो की गणना के बाद 'ब' को विजयी घोषित कर दिया जाएगा क्योकि उसने ५००१ मे अधिक मत प्राप्त कर लिए हैं।

राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध मे प्रायः यह पूछा जाता है कि राष्ट्रपति को अप्रत्यक्ष रूप से क्यो चुना जाता है। प्रमुख रूप से इसके दो कारण बताये जा सकते हैं।

१. सविधान निर्माताओ का विचार ससदात्मक शासन प्रणाली अपनाने का था। ससदात्मक शासन प्रणाली मे एक नामधारी प्रधान की आवश्यकता होती है। यदि राष्ट्रपति प्रत्यक्ष चुनाव मे सारे देश की जनता के बहुमत से चुना गया होता तो वह प्रधानमन्त्री एव ससद को अपने सामने न गिनता। किसी भी अवसर पर वह यह आग्रह कर सकता था कि वह सारे राष्ट्र द्वारा निर्वाचित अधिकारी है और उसकी बात मानी जानी चाहिए। ससदात्मक शासन प्रणाली की आवश्यकताओ के

कारण अप्रत्यक्ष चुनाव आवश्यक हो गया है। अप्रत्यक्ष रूप से चुना गया राष्ट्रपति ही नामधारी प्रधान के रूप में काम कर सकता था। प्रत्यक्ष चुनाव के पश्चात् उसे वास्तविक अधिकार देना आवश्यक हो जाता।

२. प्रत्यक्ष निर्वाचन से समय, धन एवं प्रयत्नों का बड़ा ही अपव्यय होता है। प्राय २० करोड मतदाताओं से मतदान करवाना कोई हँसी खेल नहीं है। एक और प्रश्न इस सम्बन्ध में यह पूछा जा सकता है कि राष्ट्रपति के चुनाव में राज्यों की विधान सभाओं और संसद सदस्यो, दोनों, को निर्वाचक मण्डल में क्यों रखा गया जबकि उपराष्ट्रपति के चुनाव में केवल संसद ही भाग लेती है।

यह शायद इस भावना को सामने रख कर किया गया है कि लोग समझें कि राष्ट्रपति सारे देश के राज्यों एवं केन्द्र सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाता है। यदि केवल संसद के सदस्य ही इसमें भाग ले सकते तो राज्यों को यह आपत्ति हो सकती थी कि राष्ट्रपति के चुनाव में उन्हें हिस्सा लेने का अवसर नहीं दिया जाता। उपराष्ट्रपति एवं राष्ट्रपति में चूँकि राष्ट्रपति का पद अधिक महत्वपूर्ण है इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि उसके निर्वाचन में राज्यों के प्रतिनिधियों को भी हिस्सा दिया जाए।

कार्यकाल

राष्ट्रपति जिस दिन से अपने पद का कार्यभार सभालता है, उस दिन से पाँच वर्ष तक अपने पद पर रहता है। अपना कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी राष्ट्रपति तब तक अपने पद पर बना रहता है, जबतक कि उसका उत्तराधिकारी विधिवत अपने पद पर नहीं आ जाता।[1] अपने समय से पहले यदि राष्ट्रपति चाहे तो त्यागपत्र देकर पद मुक्त हो सकता है। त्यागपत्र उपराष्ट्रपति के नाम भेजा जाता है। वह इसकी सूचना लोक सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) को देता है। उस पर महाभियोग का अपराध लगा कर ससद उसे अपने पद से हटा भी सकती है।[2]

राष्ट्रपति दुबारा अपने पद के चुनाव के लिए खड़ा हो सकता है।[3] सविधान में इस बात की कोई चर्चा नहीं है कि वह कितनी बार अपने पद पर चुना जा सकता है। जिस प्रकार अमेरिकी सविधान में व्यवस्था है कि कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति के पद के लिए चुना नहीं जा सकता, इस प्रकार की व्यवस्था हमारे सविधान में नहीं है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति दो बार अपने पद पर चुने गए थे। द्वितीय राष्ट्रपति ने अपने कार्यकाल की समाप्ति के पहले ही यह घोषणा कर दी कि वे अगली बार राष्ट्रपति के पद के लिए प्रत्याशी बनना पसन्द नहीं करेंगे। भारत के तृतीय राष्ट्रपति का देहावसान कार्यकाल में ही हो गया। अब तक इस सम्बन्ध में

---

१. भारतीय सविधान धारा ५६
२. „ „ „ ५६ (२), ६१
३. „ „ „ ५७

कोई निश्चित परम्परा भी नही पनप सकी है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि शायद ही कोई व्यक्ति दो बार से अधिक इस पद के लिए चुना जा सके, क्योंकि लोकमत शायद ही इस बात को पसंद करे कि एक ही व्यक्ति बार बार राष्ट्रपति बनाया जाय। पर इस सम्बन्ध मे ध्यान रखने की बात है कि न तो सविधान मे इस सम्बन्ध मे कोई प्रावधान है, और न परम्पराओ के आधार पर ऐसी कोई बात कही जा सकती है।

वेतन, भत्ते, एवं सेवा की अन्य शर्ते

संविधान द्वारा राष्ट्रपति का वेतन १०,००० रुपये प्रतिमाह निर्धारित किया गया है।[1] इस वेतन की राशि पर राष्ट्रपति आयकर देता है। वेतन के अतिरिक्त राष्ट्रपति निःशुल्क राष्ट्रपति भवन मे निवास करता है और अनेक प्रकार के भत्ते एव सुविधायें उसे दी जाती है। वेतन भत्ते, सुविधायें आदि ससद निर्धारित करती है। और जबतक ससद निर्धारित नही करती तबतक उसे वे सब भत्ते एव सुविधायें देय हैं जोकि स्वतत्रता के तुरन्त पूर्व गवर्नर जनरल को प्राप्त थे। यद्यपि ससद वेतन, भत्ते आदि के सम्बन्ध मे नियम बना सकती है, पर किसी भी राष्ट्रपति के कार्यकाल मे उसके वेतन और भत्ते आदि घटाये नही जा सकते।[2] कार्यकाल समाप्त होने पर पदमुक्ति के बाद राष्ट्रपति को पेंशन देने की भी व्यवस्था है। पेंशन के अलावा सचिव के खर्च आदि के लिए भी कुछ धनराशि दी जाती है। प्रथम एव द्वितीय राष्ट्रपति को इस प्रकार पेंशन दी गई थी। तृतीय राष्ट्रपति का कार्यकाल मे ही देहान्त हो गया था। उसकी विधवा पत्नी एव परिवार के अन्य सदस्यो के भरण-पोषण के लिए सरकार ने पेंशन की व्यवस्था की है।

राष्ट्रपति अपने कार्यकाल मे ससद के किसी सदन का, या किसी राज्य के विधान मण्डल या विधान परिषद् का सदस्य नही हो सकता। यदि ऐसा कोई सदस्य राष्ट्रपति चुन लिया जाता है तो अपने पद ग्रहण करने के दिनाक से वह ससद, अथवा राज्य की विधान सभा या परिषद् का सदस्य नही रह सकता। राष्ट्रपति अपने कार्यकाल मे अन्य कोई भी वेतनभोगी पद स्वीकार नही कर सकता।

राष्ट्रपति की शक्तियो के सम्बन्ध मे अनेक बार यह विवाद उठ खडा होता है कि क्या राष्ट्रपति को अपने स्वविवेक से सविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियो का उपयोग करना चाहिए अथवा मत्रिमण्डल की सलाह पर। यदि सविधान की धाराओ के आधार पर ही बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि सविधान मे कही इस बात का वर्णन नही है कि राष्ट्रपति सदैव मत्रिमण्डल के परामर्श से ही काम करेगा। पर ससदात्मक शासन प्रणाली की परम्परायें ऐसी हैं जहाँ सवैधानिक प्रधान को कोई शक्ति नही रहती। जैसे, इग्लैंड का सम्राट्।

सविधान की सम्बद्ध धारायें इस प्रकार हैं

---

१. भारतीय संविधान, अनुसूची २

२. भारतीय सविधान, धारा, ५९

धारा ७४ (१) राष्ट्रपति के कार्यों में सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा।

(२) कोई भी न्यायालय यह प्रश्न नहीं पूछ सकेगा कि मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई परामर्श दिया था, अथवा क्या परामर्श दिया था। धारा ७५ (१) प्रधान मंत्री राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा। अन्य मंत्री प्रधानमंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जायेंगे। ७५ (३) मंत्रि परिषद् सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी होगी।

इस सम्बन्ध में भारतीय संविधान में स्थिति पूर्णतया स्पष्ट है कि कोई भी न्यायालय राष्ट्रपति की किसी आज्ञा को इस कारण अवैध घोषित नहीं कर सकता कि राष्ट्रपति ने अपने स्वविवेक से बिना मन्त्रिमण्डल के परामर्श के कोई आदेश जारी किया है। न्यायालय न तो यह पूछ सकता है कि परामर्श दिया गया या नहीं और न यह पूछ सकती है कि क्या परामर्श दिया गया। अतः यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यदि किसी अवसर पर राष्ट्रपति बिना मन्त्रिमण्डल के परामर्श, अथवा परामर्श के विपरीत, अपने स्वविवेक से कोई कार्य करता है तो उसके मार्ग में कोई कानूनी रुकावट नहीं है।

राष्ट्रपति के स्वविवेक से कार्य करने के मार्ग में जो बाधायें हैं वे राजनैतिक हैं। साधारणतः दो बातें मान कर इस पर विचार किया जाना चाहिए। पहली तो यह कि परामर्श पूरे मन्त्रि-परिषद् द्वारा दिया गया है न कि किसी मंत्री विशेष द्वारा और दूसरी यह कि दिए गये परामर्श से लोकसभा सहमत है। यदि किसी एक मंत्री विशेष ने परामर्श दिया है तो संविधान की धारा ७८ (सी) के अन्तर्गत राष्ट्रपति इसे मन्त्रिपरिषद् के पुनः विचारार्थ भेज सकता है दूसरी मान्यता इस कारण है कि संविधान की धारा ७५ (३) के अनुसार मंत्रि परिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी कैसे हो सकती है जबकि वह राष्ट्रपति को ऐसे परामर्श देती है जिससे कि लोकसभा की सहमति नहीं है।

जो लोग ऐसा कहते हैं कि राष्ट्रपति परम्परा के अनुसार भी मन्त्रिपरिषद् की राय मानने को बाध्य नहीं है, वे अपने विचार की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं—

(१) हमारा संविधान लिखित है। इसमें अंग्रेजी संविधान की कुछ परम्परायें लिखित रूप से शामिल कर ली गई हैं। जैसे, राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा। अन्य मंत्री प्रधानमंत्री की सलाह से नियुक्त किए जायेंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि जो परम्परायें संविधान में शामिल नहीं की गई हैं, वे संविधान निर्माताओं ने जानबूझ कर छोड़ दी हैं।

कुछ संविधानों में इस प्रकार की व्यवस्था की गई है कि यह स्पष्ट तौर से लिख दिया गया है कि राष्ट्रपति कोई भी शक्ति बिना मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के उपयोग में नहीं ला सकेगा। जहाँ राष्ट्रपति को स्वविवेकिनी शक्तियाँ दी गई हैं वहाँ

यह कह दिया गया है कि ये स्वविवेकिनी शक्तियाँ हैं। उदाहरण के लिए, आयरलैंड का संविधान देखा जा सकता है। भारतीय संविधान मे इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही है। संविधान निर्मातामो को इस प्रकार की व्यवस्था का ज्ञान है। अत यह कहा जा सकता है कि जानबूझ कर इस व्यवस्था को संविधान का अंग नही बनाया गया है।

(२) संविधान की धारा १११ मे यह व्यवस्था की गई है कि दोनो सदनो मे पास होने के बाद विधेयक राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत किया जायेगा। राष्ट्रपति इस पर अपनी सहमति दे सकता है। असहमति प्रकट कर सकता है और यदि चाहे तो संसद मे पुन. विचारार्थ भेज सकता है। यदि संसद दुबारा इसे स्वीकृत कर दे तो इस पर राष्ट्रपति को सहमति देनी ही पडती है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ऐसे विधेयक जोकि मन्त्रिमण्डल के नेतृत्व मे दोनो सदनो मे पास किए गए हैं, उन्ही को स्वीकृत के विरुद्ध मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति को परामर्श देगा ? ऐसी धारणा शायद ठीक न हो। ऐसी दशा मे जब राष्ट्रपति असहमति प्रकट करता है, अथवा संसद मे पुन विचारार्थ भेजता है तो यह कहा जा सकता है कि वह अपनी स्वविवेकिनी शक्ति मे ऐसा करता है।

(३) यह कहा जाता है कि चूँकि इंग्लैंड मे सम्राट् सदैव ही मन्त्रिमण्डल के परामर्श से काम करता है अत यहाँ पर भी राष्ट्रपति को ऐसा ही करना चाहिए। पर इस सम्बन्ध मे यह बात विचारणीय है कि सम्राट् एव राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति मे बड़ा अन्तर है। सम्राट् का पद वशानुगत पद है। उसे चुनाव नही लडना पडता जबकि राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन की व्यवस्था है और राष्ट्रपति दुबारा अपने पद के लिए खडा हो सकता है। ऐसी स्थिति मे सम्राट् के समान ही राष्ट्रपति भी मंत्रिमण्डल के परामर्श से ही काम करे चाहे वह उसे गलत क्यो न समझता हो, अनुचित है।

दूसरी ओर जो लोग यह कहते है कि राष्ट्रपति को सदैव मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही काम करना चाहिए उनके तर्क इस प्रकार हैं

(अ) राष्ट्रपति के पद के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन होता है। यदि प्रत्यक्ष निर्वाचन होता तो राष्ट्रपति को वास्तविक शक्तियां देनी होती। अत अप्रत्यक्ष निर्वाचन का तात्पर्य यह हुआ कि प्रशासन को वास्तविक शक्तियाँ राष्ट्रपति के हाथ मे न होकर प्रधानमत्री एव मत्री-परिषद् के हाथ मे हैं।

(ब) संविधान के आलेख मे इस प्रकार की व्यवस्था थी कि 'संघ की सभी प्रशासकीय शक्तियो के प्रयोग मे राष्ट्रपति अपने प्राप्त अधिकारो का मत्रियों के परामर्श से उपयोग करेगा'[1] इसको अनावश्यक समझ कर हटा दिया गया, क्योंकि,

---

1 B N. Rau "India's Constitution in the Making" Orient Longman PP. 378

कानून मंत्री ने कहा कि यदि राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के परामर्श से काम नहीं करता तो, यह संविधान की अवहेलना होगी, और इसके लिए राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जा सकता है। उन्होंने संविधान निर्मात्री सभा को यह विश्वास दिलाया कि भारतीय संविधान में मंत्रिमण्डल के परामर्श पर चलने की परम्परा उसी प्रकार लागू होगी, जिस प्रकार इंग्लैंड में प्रचलित है।

(स) संविधान की धारा ७४ (१) में यह स्पष्ट है कि मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति को संघ की समस्त प्रशासकीय शक्तियों के उपयोग में परामर्श एवं सहायता देगा। राष्ट्रपति की स्वविवेकिनी शक्तियों के लिए इसमें स्थान ही नहीं है। जबकि धारा १६३ में राज्यपाल के सम्बन्ध में कुछ स्वविवेकिनी शक्तियों की व्यवस्था की गई है। जब मंत्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है और राष्ट्रपति अपनी स्वविवेकिनी शक्तियों, से मंत्रिमण्डल के परामर्श के विरुद्ध काम करता है, तो या तो मंत्रिमण्डल स्वयं ही त्यागपत्र दे देगा या लोकसभा उसे हटा देगी। यह इस मान्यता के आधार पर कहा जाता है कि मंत्रिमण्डल के परामर्श से लोकसभा की सहमति है। मंत्रिमण्डल लोकसभा के विचारों को कार्य रूप देने में असफलता के कारण त्यागपत्र दे सकता है या लोकसभा मंत्रिमण्डल की इस असफलता के कारण अप्रसन्न हो कर उसे हटा दे सकती है। ऐसी दशा में राष्ट्रपति के लिए नये मंत्रिमण्डल के निर्माण की समस्या उठ खड़ी होगी। ऐसी दशा में शायद ही कोई प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का निर्माण कर सके। यदि राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर नये चुनाव करवाता है और इसके फलस्वरूप उसके विरोधी ही फिर से चुन लिए जाते हैं तो राष्ट्रपति की स्थिति अत्यन्त ही मुश्किल हो जाएगी।

(द) यदि यह मान लिया जाए कि राष्ट्रपति और मंत्रिमण्डल के बीच झगड़े की स्थिति में अन्तिम निर्णय राष्ट्रपति का होगा तो उस सीमा तक संसद की अधिकार सीमा में कमी होती है। उस काम के लिए मंत्रिमण्डल संसद के सम्मुख एवं राष्ट्र के समक्ष कैसे उत्तरदायित्व ले सकता है जो उनके परामर्श के बिना अथवा परामर्श के विपरीत किया गया हो ?

उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चाहे कानूनी स्थिति जो भी हो राष्ट्रपति को अपनी स्थिति देखते हुए (अप्रत्यक्ष निर्वाचन) मंत्रिमण्डल से मिल जुल कर ही काम करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह मंत्रिमण्डल की हर माँग को मान ही ले। वह मंत्रिमण्डल को बुला कर उन्हें यह बता सकता है कि उनके परामर्श को मानने में क्या कठिनाई है। उन्हें समझा-बुझा कर सही रास्ते पर लाने का प्रयास कर सकता है। उसका मंत्रिमण्डल से ऐसा मतभेद नहीं होना चाहिए कि मंत्रिमण्डल ऊब कर त्यागपत्र दे दे या लोकसभा मंत्रिमण्डल को हटा दे। मंत्रिमण्डल में मतभेद जहाँ तक हो, जनता के सम्मुख न आए तो यह राष्ट्रपति एवं मंत्रिमण्डल दोनों ही के लिए अच्छा होगा। यदि राष्ट्रपति और मंत्रि मण्डल अपना मतभेद समाप्त नहीं कर लेते तो जनता को (नये चुनाव

के माध्यम से) यह मतभेद समाप्त करना होगा, और पता नही जनता किसके पक्ष मे अपना निर्णय दे बैठे।

कुछ ऐसी बाते हो सकती हैं जहाँ राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के परामर्श से काम न करे। जैसे नये प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के सम्बन्ध मे यह आवश्यक नही कि वह पुराने प्रधानमन्त्री के परामर्श से काम करे। इंग्लैंड मे भी इसी प्रकार की स्थिति है। सविधान की धारा १०३ के अनुसार, यदि यह प्रश्न खड़ा हो जाए कि ससद का सदस्य किसी अयोग्यता का शिकार हो गया है तो मामला चुनाव आयोग को परामर्श के लिए भेजा जाना चाहिए। आयोग की राय पर राष्ट्रपति निर्णय लेता है। ऐसी परिस्थिति मे मन्त्रिमण्डल के परामर्श का अवसर ही कहाँ आता है ? इस तरह की कतिपय परिस्थितियो को छोड़कर शेष म राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही चलना चाहिए। भारत मे परम्परा भी कुछ इसी प्रकार की है। राष्ट्रपति एव मन्त्रिमण्डल मे बराबर सहयोग बना रहा है। यदि मतभेद हुआ भी तो यह जनता के सामने नही आया। प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद व्यक्तिगत रूप से हिन्दू कोड बिल के विरोधी थे। पर उन्होंने प्रधानमन्त्री को यह आश्वासन दिया कि यदि संसद इसे विधेयक के रूप मे स्वीकार कर लेगी तो उनका व्यक्तिगत विरोध उस विधेयक को सहमति देने के मार्ग मे बाधक नही होगा।

चौथे आम चुनाव के बाद की बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियाँ राष्ट्रपति एव मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध मे एक नया अध्याय जोड सकती थी। अब तक सारे देश मे प्राय काग्रेस का ही एकछत्र राज्य था। अत यह प्रश्न नही उठता था कि केन्द्रीय सरकार किसी राज्य सरकार के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार कर रही है। गैर-काग्रेसी सरकारें गिनी-चुनी ही थी। उनकी ओर से यह शिकायत बार-बार होती थी कि केन्द्र सरकार ने अपनी पार्टी के लाभ के लिए उनके साथ अन्याय किया है। जैसे, केरल के मन्त्रिमण्डल एव विधान सभा को सन् १९५९ मे सविधान की धारा ३५६ के अन्तर्गत आपात्तिकालीन घोषणा कर के भग कर दिया गया। अब चूँकि गैर काग्रेसी सरकारे देश के कई राज्यो मे बन गई थी। अत यह समस्या अधिक उग्र रूप धारण कर सकती थी। गैर काग्रेसी राज्य सरकारें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से तो निष्पक्षता की आशा नही करती पर राष्ट्रपति से करती हैं। राजस्थान और मध्यप्रदेश मे जब मन्त्रिमण्डल के निर्माण सम्बन्धी राजनैतिक सकट आये तो विपक्ष ने राष्ट्रपति को अपील की। सविधान के सरक्षक के रूप मे राज्य सरकारे राष्ट्रपति को ही अपील करेगी। यह एक बडी सकटपूर्ण समस्या होगी जबकि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल दल-गत हित के कारण एक गैर काग्रेसी शासन वाले राज्य मे राष्ट्रपति शासन की घोषणा करना चाहता है जबकि राष्ट्रपति ऐसा करना सविधान की आत्मा के प्रतिकूल समझता है। केन्द्रीय एव राज्यो के परस्पर सम्बन्ध मे ऐसे अनेक अवसर आज की बदली हुई परिस्थितियो म आ सकते है जहाँ मन्त्रिमण्डल एव राष्ट्रपति मे मतभेद हो जाए। यह स्थिति उस समय और भी गभीर हो सकती है जबकि राष्ट्रपति और मन्त्रिमण्डल

विभिन्न दलो के हो, अथवा मिले-जुले दलो का मन्त्रिमण्डल हो, और किसी समस्या पर मन्त्रिमण्डल एकमत न होकर राष्ट्रपति को परस्पर विरोधी परामर्श दे रहा हो।

उपराष्ट्रपति

राष्ट्रपति के अतिरिक्त संविधान मे उपराष्ट्रपति के पद की भी व्यवस्था है। साधारणत. उपराष्ट्रपति कोई प्रशासकीय कार्य नही करता। उपराष्ट्रपति के पद की तुलना मोटरकार के अतिरिक्त पहिये (स्टेपनी) से की जा सकती है जिसकी आवश्यकता तभी पड़ती है जबकि कार का कोई पहिया किसी कारणवश बेकार हो जाता है। यदि राष्ट्रपति का पद किसी कारणवश रिक्त न हो और राष्ट्रपति अपने पद की जिम्मेवारियाँ निभाता जाये तो उपराष्ट्रपति के लिए कोई प्रशासनिक काम नही रहता है। यदि राष्ट्रपति के त्यागपत्र देने, हटा दिये जाने, मृत्यु अथवा अन्य किसी कारण मे राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाए तो नये राष्ट्रपति के निर्वाचन तक उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के पद पर काम करता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्रपति अनुपस्थिति, अस्वस्थता, या अन्य किसी कारणवश अपना कार्यभार सभालने मे असमर्थ हो तो राष्ट्रपति के पुन: कार्यभार सभालने तक उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के कार्यभार को सभालता है।

उपराष्ट्रपति के पद के लिए योग्यतायें —

उपराष्ट्रपति के पद के उम्मीदवार के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है.

१ भारतीय नागरिक

२ पैंतीस वर्ष की आयु

३ संसद के राज्य-सभा का सदस्य चुने जाने की योग्यतायें।

प्रथम दो योग्यतायें राष्ट्रपति एव उपराष्ट्रपति के पद के लिए एक-सी ही है। तृतीय योग्यता मे अन्तर है। राष्ट्रपति के लिए लोकसभा मे चुने जाने की योग्यतायें होनी चाहिए जबकि उपराष्ट्रपति के लिए राज्य-सभा मे चुने जाने की योग्यता होनी आवश्यक है।

संविधान की धारा १०२ के अनुसार संसद (दोनो सदन राज्य-सभा एव लोकसभा) के लिए निम्नलिखित अयोग्यतायें निर्धारित की गई हैं :

चूँकि उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए राज्य-सभा का सदस्य चुने जाने की योग्यता होनी चाहिए, अत: उसे इन अयोग्यताओं से मुक्त होना चाहिए।

(अ) केन्द्रीय सरकार एव राज्य सरकार मे किसी वेतनभोगी पद पर नहीं होना चाहिए।

(ब) पागल नही होना चाहिए।

(स) दिवालिया नहीं होना चाहिए।

---

१. भारतीय संविधान धारा ६६ (३)

(द) यह अयोग्यता होगी यदि भारत का नागरिक न हो, या स्वेच्छा से भारतीय नागरिकता छोड चुका हो, या अन्य देश के प्रति भक्ति रखता हो।

(न) ससद द्वारा बनाये गये किसी नियम के अन्तर्गत अयोग्य हो।

४ कोई भी ऐसा व्यक्ति उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित नही हो सकता जो राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार के अधीन किसी वेतनभोगी पद पर हो। यह अयोग्यता सविधान मे दो बार वर्णित है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल, राज्य या केन्द्र सरकार मे मन्त्री आदि सविधान की इस धारा के अर्थ मे वेतनभोगी पद नही हैं।

निर्वाचन

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाता है। इस निर्वाचक मण्डल मे ससद के दोनो सदनो के सभी सदस्य होते हैं। उपराष्ट्रपति का निर्वाचन राष्ट्रपति के निर्वाचन से इन बातो मे भिन्न है:

१ निर्वाचक मण्डल मे राज्यो के प्रतिनिधियो के लिए कोई स्थान नही है।

२ ससद के दोनो सदनो के सभी सदस्य निर्वाचित एव मनोनीत उपराष्ट्रपति के चुनाव मे भाग लेते हैं।

३ ससद के सदस्यो के मत निर्धारण के लिए राष्ट्रपति के चुनाव की तरह कोई समीकरण नही है।

दोनो सदनो की सम्मिलित बैठक मे उपराष्ट्रपति का निर्वाचन होता है। मतदान एकल सक्रमणीय पद्धति से होता है। यह वही पद्धति है जिसका विस्तृत विवरण राष्ट्रपति के निर्वाचन के अन्तर्गत दिया गया है। मतदान गुप्त होता है।

कार्यकाल

उपराष्ट्रपति जिस दिन अपने पद का कार्यभार सभालता है उस दिन से ५ वर्ष तक अपने पद पर रहता है। राष्ट्रपति की तरह, उपराष्ट्रपति भी अपना कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी तबतक अपने पद पर बना रहता है जबतक कि उसका उत्तराधिकारी विधिवत् अपने पद को ग्रहण नही कर लेता। अपने कार्यकाल मे पहले यदि उपराष्ट्रपति चाहे, तो त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकता है। त्यागपत्र राष्ट्रपति के नाम भेजा जाता है। यदि राज्य सभा अपनी समस्त सदस्य सख्या के बहुमत से उपराष्ट्रपति के हटाने का प्रस्ताव पारित कर दे और लोकसभा इसमे अपनी सहमति दे दे तो उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटाया जा सकता है। पर ऐसा कोई प्रस्ताव १४ दिन की पूर्व सूचना के बिना सदन के सम्मुख प्रस्तुत नही किया जा सकता।

वेतन, भत्ते एवं सेवा की अन्य शर्तें

उपराष्ट्रपति को राज्य सभा का सभापति होने के नाते वे वेतन और भत्ते मिलते हैं जो इस सविधान के लागू होने के तुरन्त पूर्व सविधान निर्मात्री सभा के

अध्यक्ष को मिला करते थे। जब उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति का पद भार—चाहे किसी भी कारण से सम्भाल लेता है, उस समय उसे राज्य सभा के सभापति होने के नाते कोई वेतन या भत्ता नही दिया जाता। इस काल मे वह राज्य सभा के सभापति की हैसियत से काम भी नही करता। इस काल मे उसे राष्ट्रपति के पद के वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधायें मिला करती हैं। ससद इस सम्बन्ध मे नियम बना कर वेतन, भत्ते, एवं सुविधायें निर्धारित कर सकती है। उपराष्ट्रपति अपने कार्यकाल मे अन्य कोई वेतनभोगी पद ग्रहण नही कर सकता।

विशेष अध्ययन के लिए

बसु डी० डी० : कमेन्ट्रीज ऑन दी कौंस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया भाग—१
सचदेव एव गुप्ता : स्टडीज इन इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन
पामर : दी इण्डियन पोलिटिकल सिस्टम
शर्मा, एम० पी० : दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डियन रिपब्लिक
पायली : दी कौंस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया



१९

प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद्

प्रधानमन्त्री

संविधान ने देश की प्रशासकीय व्यवस्था मे प्रधानमन्त्री को एक विशिष्ट पद प्रदान किया है। प्रधानमन्त्री को प्राय: बराबर वालो मे प्रथम (Primus Inter Pares) कहा गया है। किन्तु शायद प्रधानमन्त्री की स्थिति इस कथन से सही रूप मे अभिव्यक्त नही होती। अन्य मन्त्रियो से उसकी स्थिति भिन्न है। अन्य मन्त्री उसके परामर्श से ही नियुक्त होते है। यह बात अलग है कि कुछ ऐसे मन्त्री होते हैं जिन्हे न चाहते हुए भी प्रधानमन्त्री को मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित करना पडता है क्योकि उन्हे मन्त्रिमण्डल मे न रखने पर दल मे ही फूट पड जाने का भय रहता है और इससे स्वय प्रधानमन्त्री की स्थिति को सकट पैदा हो सकता है। उसका त्यागपत्र सारे मन्त्रिपरिषद् का त्यागपत्र होता है। अन्य मन्त्री समस्त सरकार का प्रतिनिधित्व करने का दावा नही कर सकते जबकि प्रधानमन्त्री समस्त सरकार का प्रतिनिधित्व करता है।

मन्त्रिपरिषद् का प्रधान होने के साथ ही, प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति का प्रमुख परामर्शदाता होता है। प्रधानमन्त्री का यह दायित्व है कि सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् एकमत होकर काम करे। विभिन्न मन्त्रियो एव विभागो के मतभेदो को दूर करना प्रधानमन्त्री का ही काम है। यदि ऐसा न हो तो मन्त्रिमण्डल के सम्मिलित उत्तरदायित्व का कोई महत्त्व ही नही रह जाता। प्रधानमंत्री यह भी देखता है कि सरकारी नीतियां राष्ट्र के हित मे पूरे विचार-विमर्श के बाद बनाई जाती हैं और उचित रूप से कार्यान्वित की जाती हैं।

केन्द्रीय सरकार मे प्रधानमन्त्री प्राय कार्यभार से दबा रहा है। प्रथम प्रधानमन्त्री ने अनेक विभाग भी, अपनी इन जिम्मेवारियो के अतिरिक्त सभाल रखे थे। अन्य प्रधानमन्त्रियो ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है। इसके अतिरिक्त प्रधानमन्त्री लोकसभा का नेता भी होता है। कई वर्षों तक पण्डित नेहरू काग्रेस अध्यक्ष और प्रधानमन्त्री के पदो पर एक साथ रहे। इंग्लैंड मे प्रधानमन्त्री ने इतने काम एक साथ कभी नहीं किये। वहा न तो प्रधानमंत्री कोई प्रशासकीय विभाग अपने हाथ मे रखता है और न हाउस ऑफ कॉमन्स का नेतृत्व करता है। फलत: उसका सारा समय सरकार एव मन्त्रिमण्डल को नेतृत्व देने मे ही बीतता है। भारत मे प्रधानमन्त्रियो ने नेतृत्व का काम समय की कमी के कारण प्राय: असन्तोषजनक ढग से किया है।

इस सम्बन्ध मे प्रशासकीय सुधार आयोग ने तीन महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं :

(अ) प्रधानमंत्री की सहायता के लिए उप प्रधानमंत्री होना चाहिए। अपना प्रशासकीय विभाग सभालने के अलावा उप प्रधानमंत्री को सरकार को सामान्य रूप मे सभालने मे प्रधानमन्त्री की सहायता करनी चाहिए।

सरकारी कामकाज चलाने के नियमो मे उप प्रधानमत्री के पद को मान्यता दी जानी चाहिए।

(ब) प्रधानमन्त्री को प्रमुख नियुक्तियो से सम्बन्धित होना चाहिए। उसे प्रमुख विभागो के सचिवो से महीने मे एक बार अलग-अलग अथवा एक साथ मिलना चाहिए।

(स) प्रधानमन्त्री को साधारणत: किसी मत्रालय का कार्यभार नही संभालना चाहिए। उसका समय समन्वय, देखभाल और मन्त्रियो को परामर्श देने मे बीतना चाहिए।

मन्त्रिमण्डल

सविधान मे राष्ट्रपति को कार्यकारिणी शक्तियो को उपयोग मे लाने, सहायता एव परामर्श देने के लिए मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था की गई है। मन्त्रिपरिषद् का प्रधान प्रधानमन्त्री होता है। नये चुनाव के बाद राष्ट्रपति उस दल के नेता को प्रधानमन्त्री बनने के लिए आमन्त्रित करता है जिसका लोकसभा मे बहुमत होता है। अन्य मन्त्री प्रधानमन्त्री के परामर्श से नियुक्त किये जाते हैं। मन्त्रियो के बीच विभागो का बँटवारा प्रधानमन्त्री के परामर्श स राष्ट्रपति करता है।

मन्त्रिपरिषद् मे कई प्रकार के मन्त्री होते हैं।

१. केबिनेट के सदस्य (Cabinet Ministers)

२. राज्य मन्त्री (Ministers of State)

३ उप मन्त्री (Deputy Ministers)

४. ससदीय सचिव (Parliamentary Secretary)

मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप स लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्रिपरिषद् तभी तक अपने पद पर रह सकती है जबतक कि उसे सदन का विश्वास प्राप्त हो। यदि प्रधानमन्त्री त्यागपत्र दे दे, अथवा उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव सदन मे पास हो जाए तो सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् त्यागपत्र दे देती है।

कैबिनेट स्तर के मन्त्री सरकारी नीतियो को निर्धारित करने मे सबसे महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। प्राय वे प्रशासन के बडे विभागो के अध्यक्ष होते हैं। हमारे देश मे रक्षा, गृह, वित्त, विदेशी मामलो का विभाग सदैव से ही कैबिनेट के सदस्यों के हाथों मे रहे है।

कैबिनेट का, जो मन्त्रिपरिषद् का अभ्यन्तर होता है, प्रशासकीय शृंखला मे सर्वोच्च स्थान है। नीति के प्रश्नो पर अंतिम एव निर्णयात्मक रूप से फैसला कैबिनेट

ही करती है। इसी पर सरकार के देख-रेख एवं विभिन्न विभागों में ताल-मेल बनाए रखने का दायित्व होता है। सरकार के सभी प्रशासकीय अंगों पर कैबिनेट का नियंत्रण रहता है। सरकार के विभिन्न अंगों की कार्यकुशलता इस बात पर निर्भर रहती है कि कैबिनेट और अन्य मंत्री किस प्रकार अपनी जिम्मेवारी निभाते हैं। प्रशासन की कार्य-कुशलता मंत्रियों के नेतृत्व एवं निर्देश पर ही निर्भर करती है। जनता का प्रशासन की निष्पक्षता एवं कार्यकुशलता में विश्वास बना रहे यह इस बात पर निर्भर करता है कि मंत्री कितने कार्य-कुशल और ईमानदार हैं।

मंत्रिपरिषद् के सुचारु रूप से काम करने पर ही प्रशासनिक तंत्र की कार्यकुशलता निर्भर करती है। ५६ सदस्यों के मंत्रिपरिषद् में भावनात्मक एकता एवं दृष्टिकोण की एकता की कमी महसूस होती है। प्रशासकीय चोटी पर लिए गए निर्णय पूरे तौर से सारे विचार के बाद लिए जाने चाहिए, पर निर्णय यथासंभव बिना किसी प्रकार की देरी के लिए जाने चाहिए। अन्य विभागों से परामर्श लेने की बात निर्णयों में देरी के लिए बहाने के रूप में प्रस्तुत नहीं की जानी चाहिए। कई बार एक ही विभाग में कई स्तर के मंत्री यथा कैबिनेट मन्त्री, उपमन्त्री, संसदीय सचिव आदि के होने से उनमें पारस्परिक सम्बन्ध की समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

यदि कैबिनेट और मंत्रिपरिषद् में सदस्यों की संख्या कम हो, और उनके सामने आने वाली समस्याओं पर पहले से विचार करके सारे दृष्टिकोण ढंग से इसके सम्मुख प्रस्तुत किये जायें तो निर्णय जल्दी लिए जा सकते हैं। चौथे आम चुनावों के पहले तक केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या १२ से १६ तक हुआ करती थी। चौथे आम चुनाव के बाद यह संख्या बढ़ कर १९ हो गई है। चौथे आम चुनावों से पहले राज्य मन्त्रियों की संख्या ११ से १८ के बीच हुआ करती थी। वर्तमान संख्या १७ है। उपमन्त्रियों की संख्या पहले १६ से २२ के बीच रहा करती थी। वर्तमान संख्या २० है। दूसरे और चौथे आम चुनावों के बीच मन्त्रिपरिषद् की संख्या ४६ से ५३ के बीच रहा करती थी। वर्तमान संख्या (नवम्बर, १९६७) ५६ है।

राज्य मन्त्री छोटे-छोटे प्रशासकीय विभागों को सम्भालते हैं जैसे सामुदायिक विकास, पंचायती राज आदि। कई बार ये बड़े विभागों में मन्त्रियों की सहायता के लिए भी रखे जाते हैं। राज्य मन्त्रियों के पद का विकास इस कारण हुआ कि वे वरिष्ठ मन्त्रियों को कार्य-सम्पादन में सहायता कर सकें। इससे कैबिनेट के सदस्यों की संख्या पर भी नियन्त्रण रखा जा सकता था क्योंकि कम महत्त्वपूर्ण विभाग राज्य मन्त्रियों को स्वतन्त्र रूप से दिये जा सकते थे। इन मन्त्रियों को समय-समय पर जब कैबिनेट उनके विभागों पर विचार करती है, कैबिनेट की बैठकों में निमंत्रित किया जाता है।

अभी हाल के वर्षों में ऐसे राज्य मन्त्रियों की संख्या में जो स्वतन्त्र रूप से विभाग सम्भाल रहे हैं काफी कमी हुई है। प्रधानमन्त्री शास्त्री के काल में १९६४-६६ में आठ ऐसे मन्त्री थे। अब इनकी संख्या घट कर केवल दो रह गई है।

राज्य मन्त्रियों को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने का अवसर दिया जाना चाहिए। केवल वे ही मामले कैबिनेट मन्त्रियों को भेजे जाने चाहिए जिनमें महत्त्वपूर्ण नीति सम्बन्धी समस्याएं निहित हों।

उपमन्त्री स्वतंत्र रूप से विभाग नहीं संभालते। वे किसी बड़े विभाग में कैबिनेट के मन्त्री के सहायक के रूप में काम करते हैं। बड़े विभागों में कई उपमन्त्री होते हैं।

संसदीय सचिव, कैबिनेट सदस्य, राज्य मन्त्री, उपमन्त्री की सहायता करते हैं। बड़े विभागों में कई संसदीय सचिव होते हैं।

उपमन्त्री और संसदीय सचिव के पद पार्टी के राजनीतिज्ञों को प्रशिक्षण देने के विचार से रखे जाते है। अनुभव होने पर कार्य-कुशलता तथा पार्टी में उनकी स्थिति के आधार पर उन्हें राज्य मन्त्री या कैबिनेट मन्त्री बनाया जाता है।

चौथे आम चुनावों के बाद संसद सचिवों की नियुक्ति नहीं की गई है। और न ऐसे कैबिनेट स्तर के मन्त्री ही है जो कैबिनेट के सदस्य न हों। अतः अब भारत सरकार में केवल तीन स्तर के ही मन्त्री है—कैबिनेट मन्त्री, राज्य मन्त्री एवं उपमन्त्री। ऐसा प्रतीत होता है कि अब उपमन्त्री का पद अपेक्षाकृत हो गया है, क्योंकि उनके कार्य को अब राज्यमन्त्रियों ने संभाल लिया है।

कई उपमन्त्रियों को इससे बड़ी निराशा-सी है कि उन्हें प्रशासन के कामों में हाथ बटाने का उचित अवसर नहीं मिल पाता। भारत सरकार में ऐसे कोई मार्गदर्शक सिद्धान्त नहीं है, जिनके अनुसार उपमन्त्रियों को प्रशासन में उचित स्थान प्राप्त हो सके और वे अपने स्तर के अनुसार उचित निर्णय ले सकें। उपमन्त्रियों का काम कैबिनेट सदस्यों की इच्छा पर निर्भर करता है। जुलाई १९६७ में किये गए एक अध्ययन से पता चलता है कि केवल आधे ही उपमन्त्री कोई जिम्मेवारी का काम कर रहे थे। २/५ उपमन्त्री अपने विभाग के कैबिनेट मन्त्रियों की सहायता मात्र कर रहे थे।

उप-मन्त्रियों के पद का उचित रूप से उपयोग हो इसके लिए यह आवश्यक है कि इसे राजनीतिज्ञों के लिए प्रशासकीय ट्रेनिंग का अवसर समझा जाए। उनकी सेवाओं का इस प्रकार उपयोग किया जाए कि वे भविष्य में राज्यमन्त्री और कैबिनेट मन्त्री का पद संभाल सकें। इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें—

(अ) प्रशासन में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों या नीति को कार्यान्वित करने का अवसर दिया जाए, अथवा

(ब) विभागीय प्रशासन का एक भाग उन्हें सौंप दिया जाए जहाँ वे निम्न-स्तर के नीति सम्बन्धी निर्णय ले सकें, अथवा

(स) विभाग से सम्बन्धित संसदीय कार्य करने का अवसर दिया जाए।

किसी मन्त्री को एक या एक से अधिक विभाग दिये जा सकते हैं। विभाग का कार्य सम्बन्धित मन्त्री, उपमन्त्री, संसदीय सचिव एवं अधीनस्थ अधिकारियों के जिम्मे

होता है। विभाग के सारे कार्यों के लिए मन्त्री जिम्मेदार होता है। आज के राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के संदर्भ मे यह जिम्मेदारी केवल कल्पित (Fictitious) होती है क्योंकि विभागो का कार्य इतना अधिक बढ गया है कि कोई भी मन्त्री विभाग के सभी मामलो की देखभाल नही सकता। मन्त्री के नाम पर विभाग के अधिकारीगण निर्णय लेते है। जबतक कि कोई ऐसी बात न हो जाए जिसमे संसद एवं समाचार-पत्रो मे विवाद खड़ा हो जाय, तो मन्त्री यही समझता है कि काम ठीक ढंग से हो रहा है। मन्त्रियो के पास न तो इतना समय होता है, न इतनी तकनीकी योग्यता ही होती है कि विभाग के सारे कामो को समझ सके और उस पर उचित निर्णय ले सके। पर संसदात्मक शासन प्रणाली की परम्परा के अनुसार चाहे निर्णय जो भी ले जिम्मेदारी मन्त्री की ही होती है। स्वस्थ परम्पराओ के अनुसार संसद मे वाद-विवाद के समय नागरिक सेवा के सदस्यो का नाम लेना अनुचित समझा जाता है। क्योंकि वे अपनी सफाई मे कुछ भी नही कह सकते। मूदड़ा काड मे के० एम० मुशी ने छागला आयोग के सामने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया था कि विभाग के अधिकारियो के कार्यों के लिए मन्त्री ही उत्तरदायी हैं। इसके फलस्वरूप श्री टी० टी० कृष्णमाचारी को मन्त्रीमण्डल से त्यागपत्र देना पड़ा था।

कैबिनेट समितियाँ

कैबिनेट की ९ स्थायी समितियाँ हैं।

आन्तरिक मामले

वैदेशिक मामले

सुरक्षा

मूल्य, उत्पादन एवं निर्यात

परिवार नियोजन

कृषि और खाद्य

पर्यटन एवं यातायात

संसदीय मामले

नियुक्तियाँ

मार्च १९६७ मे समितियो की संख्या १३ थी। कुछ समितियो की बैठकें नियमित रूप से नही होती। बहुत से महत्वपूर्ण विषय उपरोक्त समितियो के सीमा-क्षेत्र से बाहर रह जाते हैं। समितिया केवल उन्ही मामलो पर विचार कर सकती हैं जो कैबिनेट अथवा विभागीय मन्त्री से उनके सम्मुख विचारार्थ भेजी हो।

प्रशासकीय सुधार समिति के एक अध्ययन दल ने ११ समितियो की संस्तुति की और यह भी कहा कि कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न जैसे प्रशासन, केन्द्र-राज्य सम्बन्धी, विज्ञान और टैक्नोलॉजी, वाणिज्य, सचार आदि भी समितियो को अधिकार सीमा के भीतर लाये जाने चाहिए। अध्ययन दल ने यह भी कहा कि समितियो मे आठ से

अधिक सदस्य नहीं होने चाहिए।

प्रशासकीय सुधार आयोग ने अध्ययन दल की इन संस्तुतियों को मोटे तौर पर मान लिया। आयोग ने निम्नलिखित ११ कैबिनेट समितियों की सिफारिश की है।

१. सुरक्षा
२. वैदेशिक मामले
३ आर्थिक मामले
४. संसदीय मामले एव जन सम्पर्क
५. खाद्य एव ग्रामीण विकास
६. यातायात, पर्यटन एव सचार
७. सामाजिक सेवायें (समाज कल्याण एव परिवार नियोजन के साथ)
८ वाणिज्य उद्योग एव विज्ञान
९. आन्तरिक मामले (केन्द्र राज्य सम्बन्ध के साथ)
१०. प्रशासन
११ नियुक्तियाँ

प्रशासकीय सुधार आयोग ने यह भी सिफारिश की कि प्रत्येक कैबिनेट समिति के साथ एक सचिवों की समिति भी सहायता के लिए होनी चाहिए ताकि कैबिनेट समिति उन मामलों पर अपना समय नष्ट न करे जो सचिवों के स्तर पर तय किए जा सकते हैं।

सचिवों की सात समितियों की सिफारिश प्रशासकीय सुधार आयोग ने की है:

१. संसदीय मामले
२. यातायात, पर्यटन एवं उड्डयन
३ सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग
४ कृषि एव खाद्य
५ आर्थिक मामले
६ वैदेशिक मामले
■ आन्तरिक मामले

स्थायी समितियों के अलावा कैबिनेट की तदर्थ समितियाँ भी बनाई जाती हैं।

विशेष अध्ययन के लिए

बसु डी० डी०	:	कोमेन्ट्रीज ऑन दी कॉंसटीट्यूशन ऑफ इण्डिया भाग–१
पामर	:	दी इण्डियन पोलिटिकल सिस्टम
शर्मा एम० पी०	:	दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डियन रिपब्लिक

पायली	दी कौसटीट्यूशन ऑफ इण्डिया
शर्मा एस० ग्रार०	हाउ इण्डिया इज गवर्नड
वी० वेंकटराव	दी प्राइम मिनिस्टर

—

२०

कैबिनेट सचिवालय

अंग्रेजी शासन काल में सम्भाग प्रथा (Portfolio) के प्रारम्भ के पहले गवर्नर-जनरल और उनकी कौंसिल मिलकर प्रशासन का काम करते थे। कौंसिल परामर्शदात्री समिति के रूप में काम करती थी। जब सरकार का काम बहुत बढ़ गया तो विभिन्न विभाग अलग-अलग कौंसिल के सदस्यों को सौंप दिये गये। अब केवल अधिक महत्वपूर्ण मामले ही गवर्नर तथा कौंसिल के सम्मुख सम्मिलित रूप से विचारार्थ प्रस्तुत किए जाने लगे।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति के सचिवालय का प्रधान गवर्नर जनरल का निजी सचिव होता था। पर वह समिति की बैठकों में हिस्सा नहीं लेता था। लार्ड-विलिंगडन ने इन बैठकों में निजी सचिव को आमन्त्रित करना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे इस प्रथा की रूढ़ि बन गई और सन् १९३४ में उसे कार्यकारिणी समिति का पदेन सचिव बना दिया गया।

सन् १९४६ में अन्तरिम सरकार की स्थापना के समय कार्यकारिणी समिति के सचिवालय का नाम बदलकर कैबिनेट सचिवालय कर दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कैबिनेट सचिवालय को सचिवीय सहायता के अतिरिक्त विभिन्न मन्त्रालयों के कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करने का काम भी मिल गया। जब सन् १९४७ में मन्त्रिमण्डल में रक्षा समिति का निर्माण हुआ तो कैबिनेट सचिवालय में सैनिक कक्ष की स्थापना की गई, ताकि रक्षा समिति को सचिवीय सहायता प्राप्त हो सके। सन् १९५० में कैबिनेट सचिवालय में आर्थिक कक्ष की स्थापना पहले से ही की जा चुकी थी। सन् १९५४ में संगठन एवं पद्धति विभाग (Organisation & Methods Division) कैबिनेट सचिवालय की अधीनता में स्थापित किया गया। सन् १९६१ में कैबिनेट में सचिवालय में सांख्यिकी का विभाग खोला गया। सन् १९६५ में आसूचना कक्ष (Intelligence Wing) की स्थापना की गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से कैबिनेट सचिवालय का निरन्तर विकास होता गया है। इसके उत्तरदायित्व दिनों-दिन बढ़ते गये हैं। नये विभागों तथा कक्षों की स्थापना की गई है। यह बात दूसरी है कि कुछ काम जो प्रारम्भ में इस सचिवालय को दिये गये थे वे बाद में अन्य विभागों को दिये गये हैं। जैसे, आर्थिक कक्ष सन् १९५५ में मुख्य सचिवालय में मिला दिया गया। संगठन एवं पद्धति का विभाग १९६४ में गृह मंत्रालय को दे दिया गया।

सचिवालय के कार्य

यह सचिवालय निम्नलिखित कार्य करता है :

१. यह कैबिनेट की बैठक को सचिवीय सहायता पहुँचाता है। उनके बैठक की कार्यवाही का विवरण (Minutes) तैयार करता है।

२. कैबिनेट की स्थायी समितियों यथा रक्षा समिति, आन्तरिक मामलों की समिति, परिवार नियोजन समिति, वैदेशिक मामलों की समिति आदि को भी सचिवीय सहायता पहुँचाता है।

३. यह सचिवों की समितियों तथा कैबिनेट या किसी कैबिनेट कमेटी द्वारा नियुक्त समितियों एवं उप समितियों को भी सचिवीय सहायता पहुँचाता है।

४. सरकार की प्रमुख प्रशासकीय नीतियों एवं प्रोग्रामों में समन्वय स्थापित करता है। यह उन मामलों पर ध्यान देता है, जिनमें सारी कैबिनेट सम्मिलित रूप से तथा प्रधानमन्त्री विशेष रूप से रुचि रखते हों।

५. राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा अन्य मन्त्रियों को प्रमुख प्रशासकीय गतिविधियों से अवगत कराता है। इसके लिए मासिक तथा समय-समय पर विशेष विवरण तैयार करवाता है।

६. विभिन्न मन्त्रालयों एवं विभागों के बीच कार्य विभाजन भी इसी का उत्तरदायित्व है।

७. विभिन्न मन्त्रालयों के बीच मतभेदों को दूर करने का प्रयास करता है।

८. इस प्रकार की प्रशासकीय कार्यवाहियों पर ध्यान रखता है जो एक से अधिक विभागों या मन्त्रालयों पर असर डालती है।

९. सचिवालय का सांख्यिकी विभाग सांख्यिकी के एकत्रीकरण के सम्बन्ध में मानक स्थापित करता है।

१० कैबिनेट के निर्णय उचित रूप से कार्यान्वित हो रहे हैं या नहीं यह देखना भी इस सचिवालय का ही काम है। सचिवालय प्रति माह कैबिनेट के सम्मुख एक विवरण प्रस्तुत करता है, जिसमें यह बताया जाता है कि विभिन्न मन्त्रालयों ने कैबिनेट निर्णयों को कार्यान्वित करने में कितनी प्रगति की है।

११. इस सचिवालय में सन् १९६७ में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई है, जिसका उत्तरदायित्व यह है कि वह कैबिनेट निर्णयों को शीघ्रतापूर्वक कार्यान्वित करवायें। प्रारम्भ से ही इस पद पर संयुक्त सचिव के स्तर का अधिकारी नियुक्त किया गया है। जहां कहीं भी वह निर्णयों के कार्यान्वित होने में देर देखता है वह सम्बन्धित मन्त्रालय से सम्पर्क स्थापित करता है तथा देरों के कारणों को दूर करने का प्रयास करता है।

संगठन

कैबिनेट सचिवालय सीधे प्रधानमन्त्री की अधीनता में काम करता है। सचि-

वालय का प्रशासकीय प्रधान कैबिनेट सचिव होता है । कैबिनेट सचिवालय मे दो विभाग हैं ।

(अ) कैबिनेट सम्बन्धी मामलो का विभाग
(ब) सांख्यिकी विभाग

(अ) कैबिनेट सम्बन्धी मामलों का विभाग

इस विभाग मे तीन कक्ष हैं ।

१. नागरिक कक्ष
२. सैनिक कक्ष
३. प्रासूचना कक्ष

इन कक्षो मे प्रमुख अधिकारी निम्नलिखित है ।

१. सिविल विंग —

सचिव	१
अतिरिक्त सचिव	१
महा निदेशक	१
सयुक्त सचिव	२
प्रति सचिव	४
अवर सचिव	२
अनुभाग अधिकारी	८

२ सैनिक कक्ष:—

प्रति सचिव	१
निदेशक	१
स्टाफ अधिकारी (लेफ्टिनेंट कर्नल के पद के)	६
वैज्ञानिक अधिकारी	१
स्टाफ अधिकारी (मेजर के पद पर)	७

३. प्रासूचना कक्ष:—

प्रति सचिव	१
स्टाफ अधिकारी	३

(ब) सांख्यिकी विभाग

इस विभाग मे निम्नलिखित प्रमुख अधिकारी हैं —

सचिव	१
निदेशक	१
प्रति सचिव	१
अवर सचिव	१
अनुभाग अधिकारी	६

इस विभाग मे दो संलग्न कार्यालय भी हैं।

१. केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन— नई दिल्ली (Central Statistical Organisation, New Delhi) इसकी स्थापना सन् १९४७ मे की गई थी। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं।

(अ) नियोजन, कृषि आदि से सम्बन्धित सांख्यिकी एकत्रित करना
(ब) राष्ट्रीय आय का अनुमान
(स) सांख्यिकी के कार्य के लिए कार्यकर्ताओ का प्रशिक्षण
(द) राज्यों एव केन्द्र सरकारों द्वारा एकत्रित सांख्यिकी आंकडो का समन्वय
(इ) सांख्यिकी प्रकाशन

इस कार्यालय का प्रधान निदेशक है जो पदेन संयुक्त सचिव भी होता है।

२ कम्प्यूटर सेन्टर—नई दिल्ली (Computer Centre, New Delhi) इसकी स्थापना १९६६ मे की गई थी इसका कर्तव्य सरकारी सगठनो को आंकडो का रिकार्ड तैयार करने मे सहायता पहुँचाना है। इसके अलावा सरकारी क्षेत्र मे स्थित उद्योगो को भी आंकडों का रिकार्ड तैयार करने मे मदद देता है।

सांख्यिकी विभाग मे एक अधीनस्थ अधिकारी भी है। इसका नाम राष्ट्रीय चयन सर्वेक्षण का निदेशक (Directorate of National Sample Survey) है। यह नई दिल्ली मे स्थित है। यह योजना तथा अन्य सरकारी विभागो के उपयोग के लिए यादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर सांख्यिकी आंकडे एकत्रित करता है। इस निदेशालय का प्रधान महा निदेशक (Chief Director) होता है।

विशेष अध्ययन के लिए

इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन	दी आरगेनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया
सचदेव एण्ड दुआ	स्टडीज इन इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन

२१

सचिवालय

भारत सरकार के मुख्य कार्यालय को केन्द्रीय सचिवालय कहा जाता है। ब्रिटिश शासनकाल मे इसे इम्पीरियल सेक्रेटेरियट कहा जाता था। यह नई दिल्ली मे स्थित है। राष्ट्रपति भवन के उत्तर और दक्षिण में नार्थ एव साउथ ब्लाक नामक दो विशाल भवनो मे मुख्य रूप से स्थित है।

सचिवालय मन्त्रालयो मे बँटा हुआ है। जैसे गृह मन्त्रालय, रेल मन्त्रालय आदि। मन्त्रालय एक मन्त्री के अधीन होता है। एक मन्त्रालय मे एक या एक से अधिक विभाग होते हैं। रेल, गृह आदि एक विभाग वाले मन्त्रालय हैं। खाद्य एवं कृषि, सूचना और प्रसारण दो विभागो वाले मन्त्रालय है। खाद्य एव कृषि मन्त्रालय में एक खाद्य विभाग और दूसरा कृषि विभाग है। इसी प्रकार सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय मे एक सूचना विभाग और दूसरा प्रसारण विभाग है। वित्त मन्त्रालय मे चार विभाग यथा राजस्व एव बीमा विभाग, आर्थिक मामलो का विभाग, बैंकिंग विभाग तथा व्यय विभाग हैं।

विभाग का प्रधान सचिव होता है। कुछ विभागो मे अतिरिक्त सचिव तथा विशेष सचिव भी होते हैं। सचिव विभाग का प्रमुख अधिकारी होता है। वह सारे विभाग पर अपना नियत्रण रखता है। सचिव की जिम्मेवारियां मुख्य रूप से यह होती हैं :

(१) नीति एव प्रशासन के मामलो मे वह मत्री का प्रमुख परामर्शदाता है।

(२) सारे विभाग की कार्यकुशलता की जिम्मेवारी प्रमुख रूप से सचिव पर ही होती है।

(३) सचिव ही जन-लेखा समिति के सम्मुख विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। अतिरिक्त एव सयुक्त सचिव को विभाग के एक कक्ष का कार्यभार दिया जाता है। इस हिस्से के लिए उसकी जिम्मेवारियां सचिव के समान ही होती हैं। वह अपनी फाइलें सीधे मत्री के पास भेजता है। ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि ये फाइलें मत्री से वापस आते समय सचिव से होती हुई विभाग मे आयें ताकि विभाग की नीतियो से सचिव अवगत रह सके।

उपसचिव सचिव, अतिरिक्त सचिव या सयुक्त सचिव की अधीनता मे ही काम करता है। वह दो या तीन शाखाओ (Branches) का काम देखता है। स्वतत्र रूप से उसका कोई उत्तरदायित्व नही होता। वह अपनी फाइलें उपरोक्त अधिकारियों के

द्वारा ही मन्त्री तक प्रेषित करता है।

अवर सचिव एक शाखा का काम देखता है। एक अवर सचिव की शाखा मे दो अनुभाग होते हैं। अवर सचिव उप-सचिव के नियन्त्रण मे काम करता है और अपनी सारी फाइलें उप सचिव के पास भेजता है।

सचिव, अतिरिक्त सचिव, सयुक्त सचिव और उप सचिव भारतीय प्रशासकीय सेवा के सदस्य होते हैं। चूंकि भारत सरकार का निज का प्रशासकीय सेवा का कोई सवर्ग (Cadre) नही है अतः ये अधिकारी राज्य सरकारो से मेयावधि पद्धति (Tenure System) पर प्राप्त किये जाते हैं। भारत सरकार मे अपनी अवधि समाप्त करने पर ये अपने राज्य सरकारो मे लौट जाते हैं। अवर सचिव और अनुभाग अधिकारी केन्द्रीय सरकार की स्थायी सेवा मे होते हैं।

विभाग का निम्न स्तरीय भाग कार्यालय कहा जाता है। कार्यालय मे अनुभाग अधिकारी, सहायक, उच्च विभाग लिपिक और निम्न विभाग लिपिक होते हैं। उनके अतिरिक्त चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी होते हैं।

अधीक्षक या अनुभाग अधिकारी अपने अनुभाग का अध्यक्ष होता है। यद्यपि वह राजपत्रांकित अधिकारी है, पर उसकी जिम्मेवारी मामूली-सी ही होती है। वह वास्तव मे प्रधान लिपिक होता है। वह अपनी सारी फाइलें अवर सचिव के पास भेजता है।

अधीक्षक की जिम्मेवारियाँ निम्नलिखित हैं

(१) अपने विभाग मे लिपिको और सहायको पर नियन्त्रण रखता है।

(२) वह देखता है कि टिप्पणी और प्रालेख आदि तथ्यो की दृष्टि से ठीक हैं। बिना उसके हस्ताक्षर के किसी प्रालेख या टिप्पणी को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(३) उच्च पद क्रम के अधीक्षक छोटे-छोटे मामलो मे अपने स्तर पर ही निर्णय लेते हैं।

सहायक निम्नलिखित कार्य करता है।

१. पूर्व निर्णय (Precedent) एकत्रित करता है।

२ सबन्धित नियमो एव आदेशो की जाँच करता है कि वे विशिष्ट मामले मे लागू होते हैं या नही।

३. निर्णय के लिए परामर्श देता है।

उच्च विभाग लिपिक की जिम्मेवारिया निम्नलिखित हैं:

१. पहले के सम्बन्धित कागजो को एकत्रित करना

२. रजिस्टर आदि को पूरा करना

३. पत्र भेजना

४ साधारण मामलो मे टिप्पणी तैयार करना।

५. साधारण मामलो के निर्णयो मे सहायता देना।

निम्न विभाग लिपिक उच्च विभाग लिपिक के लिए बताये गये पहले तीन कामो को करता है ।

कार्यालय (office) सचिवालय के संगठन का स्थायी अंग है । आफिस पूर्व निर्देशो, आज्ञाओ, नियमो, पूर्व निर्णयो आदि के विषय मे अधिकारियो को सूचना देता है । चूंकि निर्णय लेने वाले अधिकारी सेवावधि पद्धति पर प्राप्त किये जाते थे अत आफिस का यह उत्तरदायित्व हो जाता था कि वह विभाग के कामो, नियमो, पूर्व निर्देशो, आज्ञाओ, पूर्व निर्णयो को उन्हे बताये, जिससे उनके आधार पर वे निर्णय ले सकें ।

आफिस मुख्यतया निम्नलिखित काम करता है :

१ प्रशासकीय निर्णयो मे निरन्तरता बनाये रखता है ।

२. फाइलो आदि को उचित रूप में सभालता है ।

३. पूर्व निर्णयो को बताता है ।

४. अधिकारो, नियम-उपनियमो को बतलाता है ।

किसी भी विभाग मे अधिकारी की कार्यकुशलता सीधे तौर से आफिस की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है । यदि आफिस सही सूचनाए सही समय पर देता है तो निर्णय जल्दी होता है । यदि इनमे देरी लगती है तो निर्णय भी देर से होता है ।

सचिवालय का संगठन आज भी प्राय वैसा ही है जैसा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व था । अन्तर केवल इतना ही है कि पहले सचिवालय विभागो मे सगठित था । अब यह मन्त्रालयो में सगठित हैं । पहले विभागो के राजनैतिक प्रधान गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य हुआ करते थे । पर अब मन्त्रालयो के प्रधान कैबिनेट मंत्री एव राज्य मत्री हुआ करते हैं । विभागो मे सचिव, सयुक्त सचिव, उप सचिव, अवर सचिव, अधीक्षक, उच्च विभाग लिपिक, निम्न विभाग लिपिक पहले की भाँति आज भी हैं । विभागो का आन्तरिक सगठन एवं प्रशासन पहले जैसा ही है । उनकी कार्य-विधि भी प्राय. पहले जैसी ही है ।

सचिवालय मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विभागो की सख्या एव विभिन्न स्तर के अधिकारियो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है । सचिवालय मे इस समय ४० विभाग हैं । जबकि सन् १९४७ और सन् १९४७ मे विभागो की सख्या क्रमश १८ और २४ ही थी । सचिवालय मे पहले सन् १९४८ मे जहाँ केवल ६००० आदमी काम करते थे, वहा सन् १९६७ मे १५००० आदमी काम कर रहे थे । नीचे की तालिका से विभिन्न स्तर पर अधिकारियो की सख्या मे वृद्धि का कुछ ज्ञान होता है '

पद	१९४८	१९६७	%
सचिव, अतिरिक्त सचिव, विशेष सचिव, सयुक्त सचिव	६४	२०६	३ गुने से अधिक

पद	१९४८	१९६७	%
उप-सचिव	८९	३०३	प्राय: साढे तीन गुना
प्रवर सचिव	२१४	४५७	२ गुने से अधिक
अनुभाग अधिकारी	४४२	२९४३ (सन् १९६५)	प्राय: साढे छः गुना से अधिक

अब अफसरो एव कर्मचारियो की इस बढ़ती हुई सख्या के कारणो पर विचार किया जाना चाहिए। इसके कई कारण हैं, जैसे—

१. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने विकास और लोककल्याण के बहुत से कामो को अपने हाथ मे से लिया है। फलत कर्मचारियो की संख्या मे वृद्धि हुई है।

२. सचिवालय ने कई काम ऐसे ले रखे हैं जो वास्तव मे सचिवालय के न होकर कार्यकारी विभागो के हैं।

३. केन्द्र सरकार ने अपने ऊपर कुछ ऐसे काम भी ले रखे हैं जो वास्तव मे राज्य सरकारो के हैं। फलस्वरूप ऐसे काम राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार दोनो ही स्तर पर किए जा रहे हैं।

४. नौकरशाही मे फैलने व बढने की प्रवृत्ति होती है। पार्किन्सन ने इस सम्बन्ध मे कुछ मनोरजक अध्ययन किये है।

प्रशासकीय शृंखला मे सचिवालय का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। यह साधारणत निम्नलिखित कार्य करता है—

१. मन्त्रियो को नीति निर्धारित करने एव समय-समय पर उन्हे आवश्यकतानुसार परिवर्तित करने मे सहायता पहुँचाता है।

२. कानून, नियम एव उपनियमो आदि की रूप-रेखायें तैयार करता है।

३. विभागीय कार्यक्रम तैयार करता है।

४. (अ) मन्त्रालय के कार्यों पर वित्तीय नियन्त्रण रखता है।

(ब) कार्यक्रम योजनाओ आदि को प्रशासकीय एव वित्तीय स्वीकृति देता है।

५. नीतियो एव कार्यक्रम के कार्यान्वित होने पर नियन्त्रण रखता है। यह देखता है कि निदेशालय उचित रूप से कार्यक्रमो को सचिवालय के निर्देशो के अनुसार कार्यान्वित कर रहा है अथवा नही। यह समय-समय पर कार्यक्रमो का मूल्याकन भी करता रहता है।

६. नीतियो मे विभागीय एव अन्तर्विभागीय समन्वय स्थापित करता है। राज्यो के प्रशासन से सम्बन्ध बनाये रखता है।

७. विभाग मे कर्मचारियो की कार्यकुशलता बढाने का प्रयत्न करता है, साथ ही संस्थागत कार्यकुशलता भी बढाने का प्रयास करता है।

८. मन्त्रियो को ससदीय जिम्मेवारियाँ निभाने मे सहायता करता है। सचिवालय पद्धति मे लोगों ने निम्नलिखित दोष बताए हैं—

१. सचिवालय मे बहुत अधिक कर्मचारी हो गए हैं। उपरोक्त तालिका से इस की पुष्टि होती है। सचिवालय मे जितना काम है उस दृष्टि से इतने लोगो का होना अनावश्यक है।

२. सचिवालय कार्यक्रमो के कार्यान्वित करने मे देरी लगा देता है। कार्यक्रम जब सम्बन्धित कर्मचारियो से सचिवालय में आते हैं तो उस पर छोटी-छोटी बातो को लेकर आपत्तियाँ उठाई जाती हैं।

३ सचिवालय के कर्मचारियो को यह अनुभव नही रहता कि वास्तव मे व्यावहारिक रूप मे क्या कठिनाइयाँ आनी हैं। वे सचिवालय मे बैठकर नियमो एव पूर्व व्यवहार के आधार पर बिना स्थानीय दशाओ को समझे-बूझे आपत्तियाँ उठा देते हैं।

४. विभाग के तक्नीकी अधिकारियो के साथ अनुचित व्यवहार होता है। सचिवालय मे प्रायः सामान्य विचारक (Generalist) होते हैं जो तक्नीकी दृष्टिकोण को समझ सकने मे असमर्थ होते हैं।

इन दोषो के होते हुए भी सचिवालय ने प्रशासन के लिए कुछ बड़े ही महत्त्व-पूर्ण कार्य किए हैं, जैसे—

१ विभिन्न मन्त्रालयो मे समन्वय स्थापित करने मे बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

२. मन्त्रियो को संसद के प्रति जिम्मेवारियां निभाने मे सहायता दी है।

३. सारे प्रशासन को मन्त्रियों के आदेशो के अनुसार चलने को बाध्य किया है। यदि सचिवालय न हो तो कोई देखने वाला नही रह जाता कि विभाग मे कैबिनेट और मन्त्रियो के आदेशो का पालन किया जा रहा है या नही।

४ प्रशासन मे निरतरता बनाए रखता है। यदि पहले किसी प्रश्न पर एक निर्णय हो गया है तो सचिवालय यह देखता है कि वैसे ही मामले मे उसी प्रकार का निर्णय दुबारा हो।

५. सारे मंत्रालय के प्रशासन को नियन्त्रण मे रखता है और प्रशासन को सतुलित रूप से चलने मे योगदान दिया है। सचिवालय ने समय-समय पर आवश्य-कतानुसार अपने प्रारूप मे बदलने का भी प्रयास किया है, जैसे —

१. अपने काम करने के तरीको मे सुधार किया है। निर्णय लेने मे सम्बन्धित प्रशासनीय स्तर कम करने का प्रयास किया है। यदि पहले चार स्तर निर्णय लेने मे भाग लेते थे तो अब दो या तीन ही स्तर भाग लेते हैं।

२. मंत्रालयों, विभागों आदि को अधिक आन्तरिक स्वतन्त्रता (Internal autonomy) दी है जिससे उन्हे निर्णयो के लिए पग-पग पर सचिवालय का मुँह न जोहना पड़े।

३. सचिवालय एव गैर सचिवालय सस्थाओ के बीच की खाई कम करने का प्रयास किया है। गैर सचिवालय सस्थाओ के प्रधानो को सचिवालय के अधिकारियो का दर्जा दिया है जैसे महा निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद को पदेन अतिरिक्त सचिव का पद दिया गया है।

सचिवालय की कार्य पद्धति

मंत्रालय या विभाग मे जो भी पत्र आदि आते हैं वे केन्द्रीय पंजीयन (Central Registry) मे लिए जाते हैं। प्राप्त पत्रो के लिए रसीद दी जाती है। केन्द्रीय पजीयन उन्हें सम्बन्धित अनुभागो मे भेज देता है।

अधीक्षक प्राप्त पत्रो को दो भागो मे बाँटता है।

प्रारम्भिक जो नये मामलो से सम्बन्धित हैं और जिन पर पहले से पत्र-व्यवहार नही हो रहा है।

उपसगी जो पुराने मामलो से सम्बन्धित हैं और जिन पर पहले से पत्र-व्यवहार हो रहा है।

प्रारम्भिक पत्रो को पुनः दो भागो मे विभक्त किया जाता है।

१. ऐसे पत्र जिनमे काफी छानबीन की आवश्यकता है और जिन पर एक महीने के भीतर निर्णय नही लिया जा सकता।

२. अन्य पत्र

इसके बाद अधीक्षक पत्रो को सम्बन्धित सहायको के पास भेज देता है। यदि कोई गम्भीर मामला हो तो ऐसे पत्र को अधीक्षक या तो स्वय अपने हाथ मे ले लेता है अथवा सहायक को उचित निर्देश दे देता है। आवश्यक (Urgent) पत्रो को चिन्हांकित करना भी अधीक्षक की ही जिम्मेवारी है। आवश्यक पत्र उच्च अधिकारियो की आज्ञाओ के लिए तुरन्त ही भेज दिए जाते हैं।

अधीक्षक डाक को देखकर उचित निर्देश देने के बाद दैनिकी-लेखक (Diarist) को सारी डाक दे देता है। दैनिकी-लेखक उन्हे दैनिकी मे लिखकर सम्बन्धित सहायको को देता है।

सहायक पत्र से सम्बन्धित पहले की फाइल, चिठ्ठियॉ, सम्बन्धित नियम, आदेश आदि एकत्रित करता है। अपनी टिप्पणी के साथ वह पत्र को पुन. अधीक्षक के पास भेजता है।

अधीक्षक टिप्पणी की जॉच करता है कि वह तथ्यो एव सम्बन्धित नियमो के आधार पर तैयार किया गया है अथवा नही। मामले के सम्बन्ध मे वह अपने विचार टिप्पणी पर व्यक्त करता है। यदि वह कोई सम्मति देना चाहे तो वह भी देता है। अधीक्षक के पास से फाइल अवर सचिव के पास भेजी जाती है।

वास्तव मे निर्णय लेने की प्रक्रिया अवर सचिव के स्तर से प्रारम्भ होती है। अवर सचिव जितने मामलो पर अपने स्तर पर निर्णय ले सकता है, ले लेता है। कुछ

महत्त्वपूर्ण मामलो मे वह उप-सचिव से पूछ कर निर्णय लेता है। बाकी मामले उप-सचिव के पास भेज दिए जाते हैं।

कुछ मामले तो उप-सचिव अपने स्तर पर ही निबटा देता है। बाकी के मामले वह सचिव, अतिरिक्त सचिव अथवा सयुक्त सचिव के पास भेज देता है। इन अधिकारियो के पास जो मामले भेजे जाते है वे काफी महत्त्वपूर्ण होते हैं और अधिकतर नीति सम्बन्धी प्रश्नो से सम्बन्धित होते हैं। कुछ मामलो मे तो ये अधिकारी अपने स्तर पर निर्णय ले लेते है, पर अधिक उलझे हुए, महत्त्वपूर्ण मामले मन्त्री महोदय के पास भेजे जाते है। मन्त्री महोदय स्वय इस पर निर्णय ले सकते हैं। पर यदि कोई ऐसी बात है जिसमे वे अपने उत्तरदायित्व पर निर्णय न ले सकें तो मामला कैबिनेट के विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया जाता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सचिवालय मे निर्णय लेने मे कई स्तर पर विचार होता है। छोटे-छोटे मामलो मे तीन चार स्तरो पर विचार तो मामूली बात है। यदि कोई ज्यादा गम्भीर मामला हो और उस पर कैबिनेट स्तर पर निर्णय हो तो निर्णय मे काफी समय लग जाता है। यदि सम्बन्धित मन्त्रालय से परामर्श लेना हो तो और भी अधिक समय लगेगा क्योकि वहाँ भी दुबारा केन्द्रीय पजीयन से ही पत्र की यात्रा प्रारम्भ होगी। यदि कोई मामला तीन-चार मन्त्रालयो से सम्बन्धित हो और काफी गम्भीर हो तो उसके निर्णय मे वर्षों लग सकते हैं। फिर कई बार सचिवालय निर्णय लेने की जिम्मेदारी से बचने के लिए भी कई प्रकार के हीले-हवाले निकालता है और कठिनाइयाँ पैदा करता है। ऐसी स्थिति मे निर्णय मे और भी अधिक समय लग जाता है।

विशेष अध्ययन के लिए

अशोक चंदा : इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन
इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : दी ऑरगनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया
सचदेव एण्ड दुग्गा : स्टडीज इन इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन

२२

गृह मंत्रालय

गृह मंत्रालय का इतिहास बहुत पुराने काल से चला आ रहा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में मई सन् १८४३ में भारत सरकार के गृह विभाग की स्थापना की गई थी। इस विभाग के लिए एक अलग सचिव की व्यवस्था की गई। प्रारम्भ में इस विभाग को राजस्व, सामान्य प्रशासन, नौ प्रशासन, न्याय प्रशासन, विधि विभाग और चर्च प्रशासन आदि का कार्य सौंपा गया। यह सामान्य प्रशासन, नियुक्ति, आन्तरिक राजनीति, जेल, पुलिस, शिक्षा, अस्पताल, जन स्वास्थ्य, नगर पालिका, हथियार सम्बन्धी कानून आदि का काम सम्भालता था। अन्य विभागों के कार्य तो उनके नाम से ही स्पष्ट हो जाते हैं। यद्यपि ये कार्य प्रान्तीय सरकारों की सीमा क्षेत्र में आते थे, पर भारत सरकार ने उन पर बहुत से प्रतिबन्ध लगा रखे थे, और अनेक बार अन्तिम निर्णय भारत सरकार का ही होता था। यह इस भावना के कारण होता था कि सारी प्रशासकीय व्यवस्था एक ही है और उसके ऊपर ब्रिटिश पार्लियामेंट की व्यवस्था का नियन्त्रण है। अतः गृह विभाग का कार्य साधारणतः इस पूरे क्षेत्र में प्रान्तीय सरकारों पर नियन्त्रण रखने का था। केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में गृह विभाग इन कार्यों के प्रशासन की जिम्मेवारी सीधे तौर से अपने ऊपर ले लेता था।

१६१६ भारत सरकार अधिनियम ने कुछ विषय प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दिये। उन विभागों पर गृह विभाग का नियन्त्रण नहीं रहा। पर आरक्षित विषयों पर गृह विभाग का नियन्त्रण पहले की भाँति ही बना रहा। १६३५ के अधिनियम के पश्चात् गृह विभाग का प्रान्तीय सरकारों पर नियन्त्रण प्रायः नहीं के बराबर रह गया। केवल कुछ मामलों जैसे चर्च सम्बन्धी मामले, अल्प संख्यकों की सुरक्षा, नागरिक सेवा के सदस्यों के अधिकारों की रक्षा, आदि पर गृह विभाग का नियन्त्रण रह गया।

नये संविधान के अन्तर्गत राज्यों को राज्य सूची के विषयों के प्रशासन पर पूरी स्वतन्त्रता है। पर राज्य सरकार को अपनी कार्यकारिणी शक्तियाँ इस तरह प्रयोग में लानी चाहिए कि केन्द्र की कार्यकारिणी शक्तियों से किसी प्रकार का विरोध न हो, और संसद के कानूनों की आवश्यकताओं का पालन हो। यदि केन्द्रीय सरकार चाहे तो आवश्यकता होने पर राज्य सरकारों को इस सम्बन्ध में निर्देश दे सकती है। रेलों की सुरक्षा, तथा सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में यातायात

के साधनो का निर्माण और उन्हे उचित स्थिति मे बनाये रखने के लिए भी सघ सरकार निर्देश दे सकती है। ये सारे काम गृह मन्त्रालय ही करता है। जब किसी राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है उस समय भी गृह मन्त्रालय ही कार्य-भार सम्भालता है।

गृह मंत्रालय मुख्यतया देश मे आन्तरिक शाति बनाये रखने और नागरिक सेवा के लिए उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त सघ प्रशासित क्षेत्रो का प्रशासन भी गृह मन्त्रालय द्वारा ही चलाया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो एवं अन्य उच्च न्यायाधीशो की नियुक्ति एव सेवा की शर्तों के लिए भी यही मन्त्रालय जिम्मेवार है। राज्यो की विधान सभाओ द्वारा स्वीकृत जो विधेयक राज्यपालो द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ भेजे जाते हैं वे भी यहीं आते हैं। 'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' के गृह मन्त्रालय मे विलय के बाद, उसके बचे हुए काम भी इसी मन्त्रालय के पास हैं।

नागरिक सेवा के क्षेत्र मे गृह मन्त्रालय निम्नलिखित कार्य करता है—

१. सरकारी सेवाओ मे नियुक्ति एव प्रशिक्षण के लिए सामान्य मानक निर्धारित करना।

२ पदोन्नति, वरिष्ठता, अनुशासन एव सेवा सम्बन्धी अन्य नियम आदि बनाना।

३ केन्द्रीय प्रशासन मे उच्च पदो पर नियुक्ति करना।

४ दो अखिल भारतीय सेवाओ—भारतीय प्रशासकीय सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के लिए यह मन्त्रालय केवल नियम आदि ही नही बनाता, बल्कि उनके प्रत्येक मामले के उचित रूप से क्रियान्वयन की भी जिम्मेवारी लेता है।

५ दिल्ली व हिमाचल प्रदेश की सिविल और पुलिस सेवा, एव दिल्ली व हिमाचल प्रदेश के आई० ए० एस० और आई० पी० एस० का प्रशासन।

जन सुरक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रशासित प्रदेशो मे शाति एव व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेवारी इसी मन्त्रालय पर है। राज्यो मे शाति व्यवस्था राज्यो का उत्तरदायित्व है। इसमे गृह मन्त्रालय राज्य सरकारो को परामर्श देता है। राज्य सरकारो से अपेक्षा की जाती है कि अपने क्षेत्र मे शाति एव व्यवस्था के बारे मे इस मन्त्रालय को पूरी-पूरी जानकारी दे।

इस मन्त्रालय का आपात सहायता विभाग राज्यो और केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित आपात सहायता, नागरिक सुरक्षा, गृह रक्षक दल और अग्नि शमन सेवा आदि से सम्बन्धित योजनाओ मे समन्वय स्थापित करता है।

नवम्बर सन् १९५६ से इस मन्त्रालय मे एक जनशक्ति निदेशालय (Directorate of Man Power) भी है। यह निदेशालय कैबिनेट के जनशक्ति समिति के सचिवालय के रूप मे भी काम करता है। यह निदेशालय भारत सरकार की जनशक्ति सम्बन्धी नीतियो और कार्यक्रमो मे समन्वय स्थापित करता है। यह योजना आयोग के

जनशक्ति विभाग से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखता है। प्रत्येक मंत्रालय मे निदेशालय का सम्पर्क अधिकारी (Liaison Officer) होता है प्रत्येक राज्य मे एक जनशक्ति अधिकारी होता है, जो राज्य की जनशक्ति से सम्बन्धित समस्याओ से निदेशालय को अवगत कराता है।

इस मन्त्रालय का प्रशासकीय सतर्कता विभाग अन्य मन्त्रालयो को लोक-सेवाओ मे भ्रष्टाचार रोकने मे सहायता देता है। यह विभाग विशिष्ट आरक्षी संस्थापन (Special Police Establishment) के कार्यो की भी देख-भाल करता है।

यह मन्त्रालय शराबबन्दी से सम्बन्धित समस्याओ के लिए भी उत्तरदायी है, और केन्द्रीय शराबबन्दी कमेटी की संस्तुतियो को कार्यान्वित करने की चेष्टा करता है।

प्रशासकीय सुधार विभाग (गृह मन्त्रालय)—यह विभाग इस मन्त्रालय मे २५ मार्च, १९६४ को प्रारम्भ किया गया। ओ० एण्ड० एम० के अलावा यह विभाग कार्मिक वर्ग प्रशासन, वित्तीय एव प्रशासकीय नियन्त्रण आदि के लिए भी जिम्मेवार है। यह विभाग उन प्रशासकीय समस्याओ की ओर भी ध्यान देता है जिनमे केन्द्र एव राज्य सरकार दोनो ही सम्बद्ध हो। यह विभाग कैबिनेट की प्रशासन समिति (Committee on Administration) के द्वारा स्वीकृत प्रोग्राम के अनुसार काम करता है।

अखिल भारतीय प्रशासकीय सुधार आयोग

भारत सरकार ने देश के लोक-प्रशासन की स्थिति के अध्ययन तथा सुधार एव पुनर्गठन के लिए परामर्श देने के लिए एक अखिल भारतीय प्रशासकीय सुधार आयोग नियुक्त किया था। लोक सेवाओ मे कार्यकुशलता एव ईमानदारी बढाने की समस्या पर आयोग ने विचार किया है। इस दिशा मे प्रयास किया गया कि लोक-प्रशासन सरकार की आर्थिक एव सामाजिक नीतियो को कार्यान्वित करने के योग्य हो सके। आयोग ने निम्नलिखित समस्याओ पर विशेष रूप से ध्यान दिया।

१. भारत सरकार का प्रशासन तन्त्र और इसकी कार्यविधि
२. सभी स्तरो पर योजना बनाने का तन्त्र
३. केन्द्र राज्य सम्बन्धो
४. वित्तीय प्रशासन
५. कार्मिक वर्ग प्रशासन
६. आर्थिक प्रशासन
७. राज्य स्तर पर प्रशासन
८. जिला प्रशासन
९. कृषि प्रशासन
१०. नागरिको की शिकायते दूर करने की समस्या

रक्षा मन्त्रालय, रेल, वैदेशिक मामले, शैक्षणिक प्रशासन आदि कमीशन के

विस्तृत अध्ययन की सीमा-रेखा से परे थे। पर इन क्षेत्रों की प्रशासकीय समस्याओं पर आयोग ने भारत सरकार के प्रशासन तन्त्र एवं कार्यविधि मे सुधार के लिए सिफारिशें की हैं।

मन्त्रालय का संगठन

इस मन्त्रालय मे सचिवालय सात सलग्न कार्यालय तथा आठ अधीनस्थ कार्यालय हैं। इसका प्रमुख एक कैबिनेट मिनिस्टर होता है। उसकी सहायता के लिए एक राज्य मन्त्री तथा एक उपमन्त्री भी होता है।

सचिवालय मे निम्नलिखित प्रमुख पदाधिकारी हैं.—

सचिव	२
अतिरिक्त सचिव	१
महानिदेशक नागरिक सुरक्षा	१
सयुक्त सचिव	१२
मुख्य कल्याण अधिकारी	१
निदेशक शोध एव नीति	१
मुख्य सुरक्षा अधिकारी	१
उप सचिव	२६
उप निदेशक प्रशिक्षण	२
उप महानिदेशक नागरिक सुरक्षा	१
उप महानिदेशक, गृह रक्षादल	१
प्रवर कार्मिक वर्ग अधिकारी	१
अग्निशमन परामर्शदाता	१
सचिव, दिल्ली बाढ नियन्त्रण समिति	१
प्रवर सचिव	३४
सुरक्षा अधिकारी	१
विशेष कार्याधिकारी (ससद)	१
सचिव, केन्द्रीय सचिवालय क्रीडा नियन्त्रण मण्डल	१
सहायक महानिदेशक नागरिक सुरक्षा	२
सहायक महानिदेशक गृह रक्षादल	१
प्रवर शोध अधिकारी	१

इस मन्त्रालय मे २६ विभाग हैं, जिनमे कुछ अधिक महत्वपूर्ण विभाग निम्नलिखित हैं—

१. प्रशासकीय सतर्कता विभाग
२. अखिल भारतीय सेवा विभाग
३. न्यायिक विभाग
४ पुलिस विभाग

५ राजनैतिक विभाग
६. प्रशिक्षण विभाग
७. सचिवालय सुरक्षा सगठन
८. शोध एवं नीति विभाग
९. वित्त एव लेखा विभाग

सलग्न कार्यालय

इस मत्रालय मे निम्नलिखित सलग्न कार्यालय हैं—

(१) केन्द्रीय ग्रासूचना ब्यूरो नई दिल्ली, (Central Intelligence Bureau, New Delhi) इस कार्यालय का प्रधान एक निदेशक है । उसकी सहायता के लिए विभिन्न राज्यो की राजधानियो मे क्षेत्रीय अधिकारी होते है । यह ब्यूरो भारत की सुरक्षा से सबधित ग्रासूचना एकत्र कर सबधित मत्रालयो को देता है ।

(२) जाँच-पडताल केन्द्रीय ब्यूरो, नई दिल्ली (Central Bureau of Investigation) इसकी स्थापना सन् १९६३ मे की गई थी । यह उन मामलो की जाँच करता है, जिनके लिए पहले दिल्ली विशिष्ट ग्रारक्षी सस्थापन (स्पेशल पुलिस एस्टेब्लिशमेंट) जिम्मेवार थी ।

(३) नेशनल एकेडमी ग्रॉफ एडमिनिस्ट्रेशन चार्ल्स विले इस्टेट, मसूरी, इसकी स्थापना सन् १९५९ मे की गई है । यह ग्रखिल भारतीय एव केन्द्रीय सेवा के उच्च पदाधिकारियो को प्रशिक्षण देता है । इसका प्रधान निदेशक है ।

(४) सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल, नई दिल्ली (Secretariat Training School, New Delhi) इस स्कूल की स्थापना सन् १९४८ मे की गई थी । इसका प्रधान एक निदेशक है । यह सचिवालय के ग्रधीक्षको, सहायको, शीघ्रलिपिको, लिपिको ग्रादि को प्रशिक्षण देने का काम करता है ।

(५) जनगणना रजिस्ट्रार जनरल का कार्यालय, नई दिल्ली, (Office of the Registrar General, Census, New Delhi) रजिस्ट्रार जनरल पदेन जनगणना ग्रायुक्त भी है । वह जनगणना सबधी काम सभालता है ।

(६) सीमा-सुरक्षा दल, नई दिल्ली, (Border Security Force, New Delhi) इसकी स्थापना १९६५ मे की गई है इसका प्रधान एक महानिदेशक होता है । यह फोर्स भारत पाकिस्तान सीमा-सुरक्षा का काम देखता है ।

(७) सेंट्रल रिजर्व पुलिस, नीमच, इसकी स्थापना १९३९ मे क्राउन रिप्रेजेटटिव पुलिस के नाम से की गई थी । इसका प्रधान महा-निदेशक होता है । केन्द्रीय ग्रारक्षित पुलिस देश की ग्रातरिक सुरक्षा तथा सीमा सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है । यह शाति तथा सुरक्षा बनाए रखने मे ग्रसैनिक कर्मचारियो की सहायता करता है तथा ग्रन्तर्राज्यीय हर्कतो का दमन करता है ।

ग्रधीनस्थ कार्यालय

इस मत्रालय मे निम्नलिखित ग्रधीनस्थ कार्यालय है—

(१) राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, माउंट आबू, (National Police Academy Mount Abu) इसकी स्थापना सन् १९४८ में की गई थी। यहाँ पर भारतीय पुलिस सेवा के पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

(२) डायरेक्टोरेट ऑफ कोओर्डिनेशन (पुलिस वायरलेस) रेल भवन, नई दिल्ली यह निदेशालय निम्नलिखित कार्य करता है—

१. राज्य सरकारों को कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए बेतार के तार की संचार व्यवस्था के सबंध में तकनीकी परामर्श।

२ राज्यों के पुलिस रेडियो सस्थाओं में समन्वय।

३ सचार विभागों एव सेवाओं से सम्पर्क।

(३) नेशनल फायर सर्विस कालेज, नागपुर. इसकी स्थापना सन १९५६ में की गई थी। यह अग्नि शमन सेवा अधिकारियों को आग बुझाने, आग लगने को रोकने आदि के सबंध में वैज्ञानिक प्रशिक्षण देता है।

(४) राष्ट्रीय नागरिक सुरक्षा महाविद्यालय, नागपुर, (National Civil Defence College, Nagpur)

यह महाविद्यालय सघीय तथा राज्य सरकारों के अधिकारियों को आपातकालीन सुरक्षा से सम्बन्धित प्रशिक्षण देता है।

(५) भारतीय-तिब्बती सीमा पुलिस, नई दिल्ली (Indo-Tibetan Border Police, New Delhi) इसका प्रमुख अधिकारी स्पेशल इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस होता है। यह भारतीय-तिब्बती सीमा की देखभाल करता है।

(६) क्षेत्रीय पजीकरण कार्यालय, मद्रास (Regional Registration Office Madras) इस कार्यालय में भारत आने वाले विदेशी नागरिकों का पजीकरण किया जाता है

(७) चल आपातकालीन नागरिक फोर्स (Mobile Civil Emergency Force) इसका सगठन आपातकाल में पुलिस द्वारा नागरिकों के सुरक्षा कार्यों में सहायता पहुँचाने के लिए किया गया है।

(८) क्षेत्रीय कार्यालय हिन्दी शिक्षण कार्यक्रम, (Regional Office, Hindi Teaching Scheme) ये कार्यालय नई दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में स्थित हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाई जाती है।

विशेष अध्ययन के लिए

इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन	: दी ऑर्गेनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया
सचदेव एण्ड दुमा	: स्टडीज इन इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन

२३

वित्त मंत्रालय

वित्त मत्रालय का प्रारम्भ सन् १८१० ई० मे हुआ था जबकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत सरकार के जन विभाग (Public Department) मे एक शाखा के रूप मे इसकी स्थापना हुई । सन् १८४३ मे इसको एक स्वतत्र विभाग बना दिया गया । स्वतत्र विभाग बनाने का उद्देश्य भारत सरकार के वित्तीय प्रशासन का पुनर्गठन करना था । सन् १८६० ई० मे इंग्लैंड से मिस्टर जेम्स विल्सन वित्त-विभाग का भार संभालने को भेजे गए । उन्होंने बजट प्रथा का प्रारम्भ किया और वित्तीय प्रशासन का पुनर्गठन किया ।

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद सन् १९४७ मे वित्त मत्रालय बन गया । सन् १९४६ मे मत्रालय का पुनर्गठन किया गया और इसमे दो विभाग कर दिए । दोनो विभागो मे अलग-अलग सचिवो की व्यवस्था की गई। वित्त मत्रालय के दो विभाग ये थे —

१. राजस्व एव व्यय विभाग (*Department of Revenue & Expenditure*).

२. आर्थिक कार्य विभाग (Department of Economic Affairs)

इस मत्रालय मे पुन सन् १९५५ मे कम्पनी विधि प्रशासन विभाग (Company Law Administration) की स्थापना की गई । अगले वर्ष सन् १९५६ मे राजस्व एव व्यय विभाग को दो स्वतत्र विभागो मे सगठित किया गया । ये दो विभाग राजस्व विभाग (Department of Revenue) और व्यय विभाग (Department of Expenditure) थे ।

इस तरह वित्त मत्रालय मे चार विभाग बन गये

१. राजस्व विभाग

२. व्यय विभाग

३. आर्थिक कार्य विभाग

४. कम्पनी विधि प्रशासन विभाग

चारो विभागो के लिए अलग अलग सचिव नियुक्त किये गए । प्रारम्भ मे चारो सचिवो के कार्यों मे समन्वय स्थापित करने के लिए एक प्रमुख वित्त सचिव (Principal Finance Secretary) की नियुक्ति की गई । पहले प्रमुख वित्त सचिव एच० एम० पटेल थे । श्री पटेल के सेवा निवृत्ति के पश्चात् यह पद उठा दिया और चारो ही सचिव स्वतत्र रूप मे मत्री महोदय के पास अपनी फाइलें भेजने लगे ।

वर्तमान समय (१-१२-६६) में मन्त्रालय के चार विभाग निम्नलिखित हैं—

१. आर्थिक कार्य विभाग
२. व्यय विभाग
३. राजस्व एवं बीमा विभाग
४. बैंक व्यापार विभाग

इन विभागों के कार्य इस प्रकार हैं—

१. आर्थिक मामलों का विभाग

इस विभाग में चार प्रभाग (Division) हैं।

(१) बाह्य वित्त प्रभाग (External Finance Division)

यह विदेशों एवं विदेशी आर्थिक एवं वित्तीय संस्थाओं से भारत के सम्बन्धों की देखभाल करता है। विदेशी मुद्रा एवं मुद्रा नियन्त्रण, विदेशी वित्तीय एवं तकनीकी, सहायता विदेशी निवेश (Foreign Investment) अन्य देशों को दी जाने वाली धनराशि आदि से सम्बन्धित सभी समस्यायें इसी प्रभाग के हाथ में हैं।

(२) आन्तरिक वित्त प्रभाग (Internal Finance)

यह प्रभाग मुद्रा, सार्वजनिक क्षेत्र में स्वर्ण उत्पादन, टकसाल, चाँदी परिष्करणशाला, सेक्युरिटी प्रेस, एवं सेक्युरिटी प्रेस मिल, तथा कोलार स्वर्ण खान (Kolar Gold Mine) पर नियन्त्रण रखता है। रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक तथा अन्य बैंकों, निर्यात वृद्धि इण्डस्ट्रियल फाइनेंस कारपोरेशन एक्ट १९४८ तथा इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट १९६४ का प्रशासन भी इसी डिवीजन के अन्तर्गत आता है।

(३) आर्थिक प्रभाग (Economic Division)

इस प्रभाग का कार्य नई आर्थिक प्रवृत्तियों पर ध्यान रखना तथा आर्थिक मामलों में सम्बन्धित अनुसंधान करना है। यह समय-समय पर आर्थिक नीति के सम्बन्ध में मन्त्रालय को परामर्श भी देता है।

(४) बजट प्रभाग (Budget Division)

यह प्रभाग केन्द्रीय सरकार का बजट बनवाता है। पूरक अनुदान (Supplementary Grant) इसी प्रभाग के अन्तर्गत आता है। राष्ट्र ऋण (Public Debt) राजकीय कर्ज (Public loan) राज्य सरकारों के कर्ज, वित्तीय आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करना, कंटिंजेंसी फंड ऑफ इण्डिया के नियमों का प्रशासन, केन्द्र सरकार के ट्रेजरी नियम, तथा कम्पलसरी डिपोजिट एक्ट, १९६३ का प्रशासन आदि भी इसी प्रभाग के अन्तर्गत आते हैं।

२. व्यय विभाग (Department of Expenditure)

इस विभाग में चार प्रभाग हैं—

१. संस्थापन प्रभाग (Establishment Division)

कार्मिक वर्ग की सेवा की शर्तों तथा वित्तीय संहिता के प्रशासन के लिए

उत्तरदायी है ।

२. कर्मचारी दल निरीक्षण इकाई (Staff Inspection Unit)

यह सरकारी कार्यालयों मे कार्मिक वर्ग की सख्या पर नियन्त्रण रखने के लिए कार्य-भार अध्ययन की व्यवस्था करता है ।

३ असैनिक व्यय प्रभाग (Civil Expenditure Division)

यह प्रभाग मन्त्रालयो के असैनिक व्यय पर नियन्त्रण रखता है । यह वित्तीय मामलो मे अन्य मन्त्रालयो को परामर्श देता है ।

४. सैनिक व्यय प्रभाग (Defence Expenditure Division)

रक्षा मन्त्रालय को वित्तीय मामलो मे परामर्श देता है । यह प्रभाग रक्षा आन्तरिक लेखा-जाँच, लेखा आदि पर भी नियंत्रण रखता है ।

३. राजस्व एवं बीमा विभाग (Department of Revenue & Insurance)

यह विभाग केन्द्रीय सरकार के समस्त करो—प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष—के प्रशासन के लिए जिम्मेवार है । यह जीवन बीमा एवं सामान्य बीमा का काम भी देखता है ।

४ बैंक व्यापार विभाग (Department of Banking)

अगस्त सन् १९६९ मे १४ प्रमुख बैंको के राष्ट्रीयकरण के बाद इनके प्रशासन की व्यवस्था के लिए बैंक व्यापार विभाग की स्थापना की गई । यह विभाग प्रमुख रूप से निम्नलिखित कार्य करता है

१. *सभी भारतीय बैंको—चाहे राष्ट्रीयकृत हो अथवा नहीं—की देखभाल*
२. भारतीय क्षेत्र मे विदेशी बैंको के कामो की देखभाल
३ रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से सम्बन्धित विषय
४. सहकारी बैंको से सम्बन्धित विषय
५ जीवन बीमा निगम तथा युनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया पर नियन्त्रण

संगठन

वित्त मन्त्रालय भारत सरकार के महत्त्वपूर्ण मन्त्रालयो मे से एक है । इसका प्रधान सदैव से कैबिनेट स्तर का मन्त्री रहा है । उसकी सहायता के लिए एक राज्य मंत्री तथा एक उपमन्त्री भी होता है ।

प्रत्येक विभाग एक सचिव की अधीनता मे काम करता है । सचिव की सहायता के लिए अतिरिक्त सचिव, सयुक्त सचिव, उप सचिव, अवर सचिव आदि होते हैं । अन्य मन्त्रालयो की अपेक्षा इस मन्त्रालय मे अतिरिक्त सचिव, सयुक्त सचिव की सख्या अधिक है । व्यय विभाग मे अकेले ही ३ अतिरिक्त सचिव तथा १० सयुक्त सचिव हैं । *(यह सख्या १–१०–६८ की है)*

प्रत्येक विभाग का सचिव सीधे मन्त्री महोदय से सम्पर्क रखता है । मन्त्रालय

के चारो विभागो मे समन्वय की व्यवस्था नही है। पहले प्रमुख वित्त सचिव का पद हुआ करता था जिससे कि चारो विभागो के कार्यक्रमो मे समन्वय स्थापित करने मे सहायता मिलती थी। पर अब यह पद नही रह गया है।

सलग्न कार्यालय

वित्त मत्रालय के सलग्न कार्यालय निम्नलिखित हैं :

१ राष्ट्रीय बचत सगठन, नागपुर (National Savings Organisation, Nagpur)

यह सस्था जन-साधारण को स्वेच्छा मे बचत करने के लिए उत्साहित करती है। इससे मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रहता है और जन-साधारण को अपनी बचत पचवर्षीय योजनाओ म लगाने का अवसर मिलता है। नागपुर मे मुख्य कार्यालय के अतिरिक्त राज्यो म इसके क्षेत्रीय कार्यालय हैं।

२. निरीक्षक निदेशालय (आयकर) (Directorate of Inspection, Income Tax)

इस निदेशालय के निम्नलिखित कार्य हैं .

(१) इसपेक्टिग असिस्टेंट कमिशनर के निरीक्षण कार्यालय निर्धारित करना।

(२) निरीक्षण रिपोर्टों की जॉच करना।

(३) इसपेक्टिग असिस्टेंट कमिशनर के निरीक्षण के लिए नीति निर्धारित करना।

(४) निरीक्षण रिपोर्टों मे बताये गये दावो को दूर करने के लिए आदेश देना।

(५) राजपत्रांकित (Gazetted) एव अराजपत्रांकित (Non-Gazetted) अधिकारियो के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना।

(६) राजपत्राकित एव अराजपत्राकित कर्मचारियो के लिए विभागीय परीक्षाओं का प्रबन्ध।

३. निरीक्षण निदेशालय जॉच पड़ताल (Directorate of Inspection (Investigation)

(१) कर अपवचन के गम्भीर मामलो की जॉच

(२) विशेष परिमडलो का तकनीकी नियन्त्रण

(३) लेखा परीक्षण आदि के सम्बन्ध मे तकनीकी जॉच

(४) सतर्कता।

४. निरीक्षण निदेशालय (अनुसधान साख्यिकी एव प्रकाशन) (Directorate of Inspection (Resear, Statistics & Publication)

यह निदेशालय निम्नलिखित कार्य करता है .

(१) कर प्रशासन, बजट की नीति, प्रशासकीय नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित आँकडे एकत्रित करना।

(२) कर सम्बन्धी अनुसधान

(३) नियम पुस्तिकाओं और विवरण पत्रिकाओं का प्रकाशन

(४) केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर मण्डल (Central Direct Taxes Board) को प्रपत्र आदि के सम्बन्ध में परामर्श देना।

(५) विभिन्न प्रकार के प्रपत्रों का प्रकाशन करना

(६) अखिल भारतीय राजस्व सम्बन्धी आँकड़ों का प्रकाशन करना

५ निरीक्षण निदेशालय सीमा (शुल्क एवं केन्द्रीय उत्पादन शुल्क) नई दिल्ली, (Directorate of Inspection, Customs & Excise, New Delhi)

यह निदेशालय सीमा शुल्क एवं उत्पाद शुल्क विभाग की आन्तरिक लेखा परीक्षा करता है तथा इन शुल्कों का सही निर्धारण एवं वसूली करता है। सीमा-शुल्क एवं उत्पादन शुल्क प्रशिक्षण स्कूल भी इसी निदेशालय के अन्तर्गत आता है।

६. राजस्व आसूचना निदेशालय, नई दिल्ली (Directorate of Revenue Intelligence, New Delhi)

यह निदेशालय अखिल भारतीय स्तर पर तस्कर व्यापार के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्रित करता है और उसको रोकने का प्रबन्ध करता है। तस्कर व्यापार को रोकने के लिए अफसरों के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध करता है।

७. प्रवर्तन निदेशालय (Directorate of Enforcement)

यह निदेशालय विदेशी मुद्रा नियन्त्रण अधिनियम १९४७ के विरुद्ध अपराधों की देखभाल करता है।

८. *बीमा विभाग, शिमला (Department of Insurance, Simla)*

यह विभाग निम्नलिखित काम करता है

(१) बीमा अधिनियम १९३८ का प्रशासन

(२) केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को बीमा सम्बन्धी मामलों में परामर्श देना।

(३) केन्द्रीय सरकार को बीमा अधिनियम १९३८ के अन्तर्गत सांविधिक कर्तव्यों को पूरा करने में सहायता देना।

अधीनस्थ कार्यालय

१. इण्डिया सेक्युरिटी प्रेस, नासिक रोड़—इस प्रेस में डाक एवं दूसरी टिकटें, पोस्ट आफिस के फार्म आदि, पासपोर्ट, रिजर्व बैंक के लिए नोट आदि छापे जाते हैं। विदेशी सरकारें यदि चाहें तो उनके भी नोट आदि यहाँ छापे जाते हैं।

२. सेक्युरिटी प्रेस मिल, होशंगाबाद—यहाँ पर प्रति वर्ष २००० टन नोट छापने के कागज बनाने का कारखाना है।

३. कोलार स्वर्ण खान मैसूर—मैसूर सरकार से १९६२ में यह खान भारत सरकार ने ले ली है। इस खान से उत्पादित समस्त स्वर्ण भारत सरकार ले लेती है।

४ क्षेत्रीय निदेशक, राष्ट्रीय बचत—पूरे देश में १९ क्षेत्रीय निदेशक हैं।

निदेशक अपने क्षेत्र में राष्ट्रीय बचत आन्दोलन को प्रोत्साहन देते हैं। यह काम राज्य सरकारों एवं गैर सरकारी व्यक्तियों की सहायता से किया जाता है।

५. भारत सरकार की टकसालें बम्बई, कलकत्ता, हैदराबाद—इन टकसालों में भारत सरकार के लिए सिक्के ढाले जाते हैं। यहां पर चांदी और सोने के परिष्करण का भी काम होता है। नोटों की पंचिंग मशीन की मरम्मत होती है और सरकारी तमगे और बैज आदि बनाए जाते हैं।

६. प्रामाणन विभाग, बम्बई और कलकत्ता (Assay Department Bombay & Calcutta)—ये बम्बई और कलकत्ता में टकसालों के साथ संलग्न हैं। ये विभाग टकसालों में निर्मित सिक्कों की शुद्धता का परीक्षण करते हैं।

७. चांदी परिष्करण शाला, कलकत्ता (Silver Refinery Calcutta)—इसपरिष्करणशाला में उन चांदी के सिक्कों को गला कर चांदी निकाली जाती है जो अब चालू नहीं हैं।

८. रिहैबिलिटेशन फाइनेंस एडमिनिस्ट्रेशन यूनिट, नई दिल्ली—रिहैबिलिटेशन फाइनेंस एडमिनिस्ट्रेशन का विभाग सन् १९६० में बंद कर दिया गया था। इस विभाग द्वारा दिये ऋणों की वसूली के लिए यह यूनिट जिम्मेवार है।

९. रक्षा लेखा विभाग नई दिल्ली—(Defence Accounts Department, New Delhi)—यह विभाग रक्षा सेवाओं के लेखा के लिए उत्तरदायी है। आन्तरिक लेखा परीक्षा भी इसी विभाग के अन्तर्गत आता है। इसका प्रधान प्रतिरक्षा लेखा महानियन्त्रक (कन्ट्रोलर जनरल ऑफ डिफेन्स एकाउन्टस) है।

१०. वित्तीय परामर्शदाता और मुख्य लेखा अधिकारी का कार्यालय फरक्का बैरेज परियोजना, मुर्शिदाबाद, पश्चिम बंगाल—यह कार्यालय फरक्का बैरेज परियोजना के व्यय, वित्तीय और लेखा कार्यों को सँभालना है।

११. सीमा कर विभाग—यह विभाग सीमा कर वसूल करता है। तस्कर व्यापार को रोकता है। आयात-निर्यात पर नियमन रखता है। बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, मद्रास, विशाखापटनम्, कांडला, पाडीचेरी और गोआ सीमा कर कार्यालयों के द्वारा विभाग काम करता है।

१२ केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विभाग (The Central Excise Department) केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये गए उत्पाद शुल्क (Excise) की वसूली के लिए उत्तरदायी है।

१३. आयकर विभाग—

यह विभाग आयकर को निर्धारित करने और उसकी वसूली के लिए जिम्मेवार है। प्रशासन की सुविधा के लिए विभाग १६ इकाइयों में बँटा है। इकाई का प्रधान आयकर आयुक्त होता है। आयकर के अतिरिक्त अधिक लाभ कर अधिनियम १९४० (Excess Profit Tax Act, 1940) व्यापार लाभ कर अधिनियम १९४७ (Busi-

ness Profit Tax Act, 1947) स्टेट ड्यूटी एक्ट, १९५३ (Estate Duty Act, 1953) सम्पत्ति कर अधिनियम, १९५७ (Wealth Tax Act, 1957) व्यय कर अधिनियम, १९४७ (Expenditure Tax Act, 1947) तथा दान कर अधिनियम, १९५८ (Gift Tax Act, 1958) आदि का प्रशासन भी इसी विभाग के हाथ में है। नागपुर स्थित आयकर अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल भी इसी विभाग के अन्तर्गत आता है।

१४. सांख्यिकी एवं आसूचना शाखा (केन्द्रीय उत्पाद) नई दिल्ली (Statistics & Intelligence Branch (Central Excise) New Delhi)

यह शाखा केन्द्रीय उत्पाद से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करती है एवं उनकी व्याख्या करती है।

१५. केन्द्रीय राजस्व नियन्त्रण प्रयोगशाला, नई दिल्ली (Central Revenue *Control Laboratory, New Delhi*)

प्रयोग शाला निम्नलिखित काम करती है—

(अ) केन्द्रीय राजस्व मण्डल को रासायनिक जाँच के आधार पर तकनीकी परामर्श देती है।

(ब) आबकारी प्रयोगशालाओं की जाँच की विधियों में एकरूपता स्थापित करती है।

(स) विशेष प्रकार की रासायनिक जाँच आदि करती है।

१६ स्वापक तथा अफीम विभाग (Narcotics & Opium Department)

इस विभाग का प्रधान स्वापक आयुक्त है। यह विभाग देश के नशीले पदार्थों के प्रशासन में समन्वय स्थापित करता है, और अफीम विभाग के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है।

१७ स्वर्ण नियन्त्रण प्रशासक का केन्द्रीय कार्यालय, बम्बई

यह आफिस स्वर्ण नियन्त्रण नियम को लागू करने के लिए जिम्मेवार है।

१८ स्टाक एक्सचेंज डायरेक्टोरेट, बम्बई

इस निदेशालय की दो शाखायें हैं। एक बम्बई में स्थित है और दूसरी दिल्ली में। यह स्टाक एक्सचेंज (शेयर बाजार) पर नियन्त्रण रखता है और उनके प्रबन्ध में सुधार लाने का प्रयास करता है।

अन्य संस्थाएं

१. रिजर्व बैंक आफ इण्डिया

रिजर्व बैंक की स्थापना सन् १९३५ में की गई थी और १९४९ में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसका केन्द्रीय कार्यालय बम्बई में स्थित है। यह सरकार को आर्थिक, वित्तीय एवं बैंक व्यापार की समस्याओं पर परामर्श देता है। यह देश की मुद्रा व्यवस्था पर नियन्त्रण रखता है। यह देश का केन्द्रीय बैंक है और अन्य बैंकों पर नियन्त्रण रखता है।

२. स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया और इसकी उपसगी संस्थायें

इस बैंक की स्थापना सन् १९५५ मे हुई थी। इस बैंक की अधिकृत पूंजी २० करोड़ है जिसमे से ९०% से अधिक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा लगाई गई है। इसका प्रबन्ध एक केन्द्रीय बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसमे २० सदस्य होते हैं। इसके उपसंगियो की संख्या ७ है। प्रत्येक उपसगी बैंक के प्रबन्ध के लिए बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स है। बोर्ड मे सदस्यो की सख्या १० होती है।

३ युनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, बम्बई

यह एक स्वायत्त निगम है। इसकी पूजी ५ करोड की है, जिसमे से १/२ रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा लगाई गई है। बाकी पूजी, जीवन बीमा विभाग, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया और इसकी उपसगियो तथा अन्य बैंको द्वारा लगाई गई है। न्यास (ट्रस्ट) का प्रबन्ध एक न्यास मण्डल के हाथो मे है जिसमे १० सदस्य होते हैं।

४. डिपाजिट इनशोरेंस कॉरपोरेशन, बम्बई

इसकी स्थापना डिपाजिट इश्योरेंश कारपोरेशन एक्ट, १९६१ के अन्तर्गत की गई है। यह व्यावसायिक बैंको मे जमा धनराशि का बीमा करता है। व्यावसायिक बैंको के लिए इसके अन्तर्गत बीमा करवाना आवश्यक है।

५. इंडस्ट्रियल फाइनेंस कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली—इंडस्ट्रियल फाइनेंस कॉरपोरेशन एक्ट, १९४८ के अन्तर्गत इसकी स्थापना की गई है। यह औद्योगिक प्रतिष्ठानो को पूजी उपलब्ध कराता है।

६. इंडस्ट्रियल क्रेडिट एण्ड इन्वेस्टमेंट कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड, बम्बई—यह भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड एक प्राइवट बैंक है। इसकी स्थापना सन् १९५५ मे की गई थी। यह निजी क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठानो को विकास के लिए रुपये एव विदेशी मुद्रा मे कर्ज देता है।

७. इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट बैंक ऑफ इण्डिया बम्बई—इसकी स्थापना १९६४ मे इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट, १९६४ के अन्तर्गत की गई थी। इसकी अधिकृत पूजी १ अरब रुपये है यह रिजर्व बैंक के उपसगी के रूप मे काम करता है।

८. एग्रीकल्चरल रीफाईनेंस कॉरपोरेशन, बम्बई—यह निगम कृषि विकास की बडी-बडी योजनाओ के लिए धनराशि उपलब्ध करवाता है। सरकारी गारटी पर ही कॉरपोरेशन ऋण देता है। इसका प्रबध बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के हाथ मे है जिसमे ९ सदस्य होते हैं।

९. इण्डियन इनवेस्टमेंट सेंटर, नई दिल्ली—इसकी स्थापना सन १९६० मे की गई। इसका उद्देश्य विदेशी पूजी को भारत मे आने मे सहायता करना है। इसके प्रबंध के लिए एक प्रबंधकीय मण्डल है। प्रबधकीय मण्डल का सभापति सेंटर का प्रधान होता है। प्रधान की सहायता के लिए कार्यकारी निदेशक होता है।

विशेष अध्ययन के लिए

इंण्डियन इस्टीट्यूट	:	दी आॅरगेनाइजेशन आॅफ
आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन	:	दी गवर्नमेंट आफ इण्डिया

२४

संयुक्त राष्ट्र-संघ

संयुक्त राष्ट्र-संघ की स्थापना २४ अक्तूबर, १९४५ को की गई थी। प्रत्येक वर्ष सारे विश्व मे यह दिन संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप मे मनाया जाता है। पर राष्ट्र-संघ के न्यूयार्क के मुख्यालय पर अधिक धूमधाम से जन्म दिन मनाने की कोई परम्परा नही है। राष्ट्रसंघ को सदैव कठिनाइयो से गुजरना पड़ता है तथा धनाभाव की स्थिति सदैव ही बनी रहती है। दो दशको से अधिक समय तक काम करने के बाद भी इसका भविष्य अनिश्चित सा ही है।[1]

संयुक्त राष्ट्र-संघ का मूल घोषणा-पत्र ५१ राष्ट्रो के परामर्श एवं सहमति से बनाया गया था। इसका प्रमुख उद्देश्य विश्व मे शांति बनाये रखना तथा विकासशील देशो के उत्तरोत्तर विकास के लिए प्रयास करना है। राष्ट्र-संघ की स्थापना द्वितीय विश्वयुद्ध की घटनाओ के कारण हुई। १२ जून, १९४१ की लन्दन घोषणा मे सभी राष्ट्रो ने—जोकि जर्मनी के विरुद्ध लड रहे थे—एक ऐसे विश्व की स्थापना के लिए सहमति प्रकट की जहाँ आक्रामकता न हो तथा आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा हो।

डम्बरटन ओक्स (Dumbarton Oaks) वाशिंगटन की अन्तरंग मन्त्रणा मे जहाँ अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, और राष्ट्रवादी चीन के प्रतिनिधि उपस्थित थे, यह निश्चय किया गया कि इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की प्रमुख रूपरेखा लीग ऑफ नेशन्स के जैसी ही रहनी चाहिए। एक सभा जहा पर कि सारे राष्ट्रो के प्रतिनिधि रहें तथा एक परिषद् जिसके केन्द्र (Nucleus) में प्रमुख राष्ट्र (Great Powers) हो जोकि मुख्य रूप से शांति एवं सुरक्षा के लिए उत्तरदायित्व ग्रहण करें। न्यासिता (Trusteeship) सुरक्षा परिषद् मे मतदान प्रक्रिया एवं संगठन की सदस्यता आदि पर याल्टा सम्मेलन मे विचार करने का निश्चय किया गया।

याल्टा सम्मेलन मे प्रमुख राष्ट्रो को सुरक्षा परिषद् मे निषेधाधिकार (Veto) देने का निर्णय किया गया। निषेधाधिकार का अर्थ यह है कि यदि प्रमुख राष्ट्रों में से कोई भी राष्ट्र किसी बात को अनुचित समझे तो वह उसे केवल अपने वोट से ही कार्यान्वित होने से रोक सकता था। ऐसा करने का उद्देश्य यह था कि प्रमुख राष्ट्रों मे एकता बनी रहे और किसी भी प्रमुख राष्ट्र की इच्छा के विरुद्ध कोई काम न हो।

---

१. International Relations ; Palmer and Perkins Chapter 12, pp. 298.

राष्ट्रसंघ की सदस्यता के लिए निर्णय किया गया कि वे सभी राष्ट्र जिन्होंने धुरी शक्तियों (Axis Powers) के विरुद्ध १ मार्च, १९४५ तक युद्ध की घोषणा कर दी थी वे सदस्य बन सकते थे।

युनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेंस ऑन इंटरनेशनल ऑर्गेनाइजेशन की बैठक सेन-फ्रांसिसको में २५ अप्रेल सन् १९४५ को हुई। इस बैठक में ५१ राष्ट्रों ने भाग लिया। इस बैठक में संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र पर अन्तिम रूप से विचार-विमर्श किया गया। सारे निर्णय दो तिहाई बहुमत से किये गए। घोषणा-पत्र एवं संशोधनों की प्रत्येक धारा पर मतदान हुआ।

सबसे विवादास्पद प्रश्न प्रमुख राष्ट्रों के हाथ में निषेधाधिकार (Veto) का एकाधिकार था। आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड के नेतृत्व में छोटे राष्ट्रों ने प्रमुख राष्ट्रों के हाथ में निषेधाधिकार के एकाधिकार का विरोध किया। दूसरी ओर रूस की मांग थी कि क्रियाविधि सम्बन्धी मामलों में भी निषेधाधिकार दिया जाना चाहिए। अन्त में यह निर्णय किया गया कि किसी मामले पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया के सम्बन्ध में निषेधाधिकार नहीं होगा। पर कार्यवाही (Action) पर निषेधाधिकार रहेगा।

संयुक्त राष्ट्र-संघ के घोषणापत्र और लीग ऑफ नेशन्स के प्रतिश्रव में बहुत कुछ समानता है। दोनों ही में शांति एवं सुरक्षा प्रमुख उद्देश्य हैं। इनकी प्राप्ति के लिए दोनों में ही राष्ट्रों के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना पर बल दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र-संघ की साधारण सभा (General Assembly) लीग ऑफ नेशन्स की असेम्बली के समान ही है। दोनों में ही राष्ट्रों के भाषण एवं वोट के अधिकार की समानता थी। शांति एवं सुरक्षा के मामले में सुरक्षा परिषद् (Security Council) का योग अधिक महत्वपूर्ण है। साधारण सभा उसी प्रश्न पर विचार कर सकती है जोकि सुरक्षा परिषद् के विचाराधीन नहीं है। आर्थिक, सामाजिक और समादेशन (Mandate) सम्बन्धी प्रश्न लीग के प्रतिश्रव में कौंसिल को दिये गए थे। राष्ट्र-संघ के घोषणा पत्र में ये शक्तियाँ असेम्बली को दी गई है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय लीग के परमानेंट कोर्ट ऑफ इंटरनेशनल जस्टिस का ही प्रतिरूप है।

संयुक्त राष्ट्र-संघ का मुख्यालय न्यूयार्क में टरटल बे (Turtle Bay) नामक स्थान पर स्थित है। यह भूमि दानवीर राकफेलर परिवार ने राष्ट्र-संघ को ८५ लाख डालर में खरीद कर दी है। भवन निर्माण के लिए अमेरिकी सरकार ने राष्ट्र-संघ को ६०० लाख डालर का ऋण बिना किसी सूद के दिया है। राष्ट्र-संघ यह धनराशि २५ लाख डालर प्रति वर्ष की दर से अमेरिकी सरकार को वापस करता है। अब संयुक्त राष्ट्र-संघ का निज का ३९ मंजिलों का भवन है। अनेक सदस्य राष्ट्रों ने भवन को सुचारु रूप से सजाने के लिए भेंट के रूप में बहुत सी वस्तुयें दी हैं।

संयुक्त राष्ट्र-संघ का घोषणा-पत्र

सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणा-पत्र (चार्टर) मे १९ अध्याय तथा १११ धारायें हैं। यह लीग ऑफ नेशन्स के प्रतिश्रव (कोवेनेंट) से कहीं अधिक विस्तृत हैं जिसमे केवल २६ धारायें ही थी। राष्ट्र-सघ के घोषणा-पत्र मे राष्ट्रो की सदस्यता, संघ के विभिन्न अगो, झगडो के शांतिपूर्ण समझौते, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एव सामाजिक सहयोग, प्रन्यासिता सभा (Trusteeship Council) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, सचिवालय आदि की विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है।

घोषणा पत्र की प्रस्तावना के अनुसार राष्ट्र-सघ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

१ विश्व को युद्ध की विभीषिका से बचाना।

२. मनुष्यो के मौलिक मानवीय अधिकारो की रक्षा, एव राष्ट्रो मे समानता का व्यवहार।

३ अन्तर्राष्ट्रीय शाति के लिए सधियो एव अन्तर्राष्ट्रीय कानूनो को लागू करना।

४ मनुष्यमात्र के लिए सामाजिक प्रगति एव उसके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग।

उपरोक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए घोषणा-पत्र की प्रस्तावना मे निम्नलिखित उपायो का सुझाव दिया गया है—

१ राष्ट्रो मे पारस्परिक सहनशीलता का उद्भव करना, जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय शाति बनी रहे तथा राष्ट्र अच्छे पड़ौसियो की तरह रह सके।

२. अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा के लिए एक होकर काम करना।

३ सैनिक शक्ति का उपयोग केवल अन्तर्राष्ट्रीय शाति के लिए राष्ट्रसघ की सहमति से करना। आपसी झगडो के निपटारे के लिए सैन्य शक्ति का उपयोग न करना।

४. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से विश्व का सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना।

इस समय सयुक्त राष्ट्रसघ मे १३७ राष्ट्र सदस्य हैं। राष्ट्रसघ राष्ट्रो मे समानता के आधार पर सगठित किया गया है। चाहे कोई राष्ट्र छोटा हो या बडा साधारण सभा मे उसे एक ही मत देने का अधिकार है। अमेरिका और रूस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र भी एक ही वोट के अधिकारी हैं जिस प्रकार नेपाल आदि छोटे राष्ट्र। वे सभी राष्ट्र जो सघ के चार्टर मे आस्था रखते हैं इसके सदस्य बन सकते हैं। सदस्यता के इच्छुक राष्ट्रसघ की सदस्यता के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करते हैं। सबसे पहले सुरक्षा परिषद् की नये सदस्यो की प्रवेश समिति आवेदन पत्र पर विचार करती है। सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की सहमति के बिना नये राष्ट्रो को सदस्यता नही दी जा सकती। यदि सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यो की सहमति हो, तथा कुल ६ सदस्यों की सहमति हो, तो सदस्यता का प्रश्न साधारण सभा मे

प्रस्तुत किया जाता है। साधारण सदस्यता के प्रश्न पर उपस्थित मतदान मे भाग लेने वाले राष्ट्रो के २/३ बहुमत से निर्णय किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्र-सघ से सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर साधारण सभा किसी सदस्य को निष्कासित कर सकती है। राष्ट्रवादी चीन को हाल मे राष्ट्र सघ से निष्कासित करके इसका स्थान कम्युनिस्ट चीन को दिया गया है।

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि राष्ट्र-सघ की सदस्यता किसी भी राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता का किसी प्रकार हनन नही करती। इसकी सदस्यता का आधार सार्वभौम सत्ताधारी राष्ट्रो की परस्पर समानता है। राष्ट्र-सघ किसी भी राष्ट्र के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही कर सकता। राष्ट्रसघ को बाध्यकारी शक्तियाँ बहुत ही कम हैं। इसके विभिन्न अग जाँच पडताल कर सकते हैं, वादविवाद कर सकते हैं तथा सदस्य राष्ट्रो से किसी बात के लिए सिफारिश कर सकते हैं। इतना होने पर भी राष्ट्र-सघ का चार्टर सदस्य राष्ट्रो से यह तो आशा करता ही है कि कुछ विशेष परिस्थितियो को छोड कर वे आपसी झगड़ो को निबटाने के लिए सैन्य शक्ति का उपयोग नही करेंगे।

विशेष अध्ययन के लिए

गुडरिच	: दी युनाइटेड नेशन्स
वर्मा दीनानाथ	: अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
पामर एण्ड पर्किन्स	: इ टरनेशनल रिलेशन्स
ईगलटन	: इ टरनेशनल गवर्नमेट

२५

साधारण सभा

राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा ९ के अनुसार सभी सदस्य राष्ट्र साधारण सभा के सदस्य होते हैं। वर्तमान समय में साधारण सभा की सदस्यता १३७ है। साधारण सभा में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र ५ प्रतिनिधि तथा ५ अन्य प्रतिनिधि (Alternate Delegate) भेज सकता है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र मतदान में एक मत देने का ही अधिकारी होता है। साधारण सभा सभी राष्ट्रों की समानता के आधार पर संगठित है तथा इसमें छोटे और बड़े राष्ट्रों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता है।

साधारण सभा की बैठक प्रति वर्ष होती है। यह बैठक सितम्बर महीने के तीसरे मंगलवार से प्रारंभ होती है तथा दिसम्बर के मध्य तक चलती है। पर यदि आवश्यक होता है तो इसकी बैठक अधिक दिनों तक चलती रहती है।

साधारण सभा की इस वार्षिक बैठक के अतिरिक्त और भी असाधारण बैठकें हो सकती हैं। ये असाधारण बैठकें सुरक्षा परिषद् के आग्रह पर महासचिव द्वारा बुलाई जाती हैं। यदि साधारण सभा के आधे से अधिक सदस्य आग्रह करें तो भी असाधारण बैठकें बुलाई जा सकती हैं। इस प्रकार की विशेष बैठकें पैलेस्टाइन, मध्यपूर्व, हंगरी, लेबनान आदि की समस्याओं पर विचार करने को बुलाई गई हैं।

साधारण सभा का संगठन

प्रत्येक वर्ष साधारण सभा एक अध्यक्ष तथा १७ उपाध्यक्ष चुनती है। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होता है। अब यह परम्परा बन गई है कि साधारण सभा का अध्यक्ष प्रमुख राष्ट्रों के प्रतिनिधियों में से नहीं चुना जायेगा। सभा अपनी कार्यविधि के नियम स्वयं ही बनाती है।

साधारण सभा का अधिकतर कार्य समितियों के द्वारा होता है। इन समितियों की संख्या ६ है।

प्रथम समिति—राजनैतिक तथा सुरक्षा समिति
द्वितीय समिति—आर्थिक एवं वित्तीय
तृतीय समिति—सामाजिक, मानवीय एवं सांस्कृतिक
चतुर्थ समिति—प्रन्यासिता (trusteeship)
पंचम समिति—प्रशासनिक एवं बजट
छठी समिति—कानूनी

इन समितियों के अतिरिक्त तीन अन्य समितियाँ भी हैं.

१. विशेष राजनैतिक समिति

२ समन्वय समिति

यह समिति साधारण सभा की कार्यवाहियो मे समन्वय स्थापित करती है। इसमे २५ सदस्य होते हैं। ये २५ सदस्य निम्नलिखित हैं। साधारण सभा का अध्यक्ष १, साधारण सभा के उपाध्यक्ष १७, तथा ७ प्रमुख समितियो के अध्यक्ष।

३. परिचय-पत्र समिति (Credentials Committee) सदस्यो के परिचय-पत्र की जाँच-पडताल करती है। इस समिति मे ६ सदस्य होते हैं जो प्रत्येक वर्ष साधारण बैठक के प्रारभ मे चुने जाते हैं।

परिचय-पत्र समिति, तथा समन्वय समिति को छोड कर अन्य सातो समितियो मे सभी सदस्य राष्ट्रो को भाग लेने का अधिकार है। ये समितियाँ अपनी सस्तुतियाँ साधारण सभा के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत करती है। समितियाँ अपनी सहायता के लिए उप समितियो की नियुक्ति कर सकती हैं। समितियो एव उप समितियो मे साधारण बहुमत के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं।

इन समितियो के अतिरिक्त दो अन्य स्थायी समितियाँ साधारण सभा की सहायता के लिए होती हैं।

१. प्रशासकीय एव बजट सम्बन्धी मामलो पर परामर्शदात्री समिति। इस समिति मे १२ सदस्य होते हैं।

२. अशदान समिति (Committee on Contributions) इस समिति मे १० सदस्य होते हैं। यह समिति साधारण सभा के सम्मुख यह सस्तुति करती है कि किस राष्ट्र को सघ के व्यय के लिए कितनी धनराशि देनी चाहिए।

इनके अतिरिक्त साधारण सभा आवश्यकतानुसार समय-समय पर विशेष समितियाँ भी निर्मित करती है। इस प्रकार की समितियो के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

१. शाति स्थापना के लिए विशेष समिति--३३ सदस्य (Special Committee on Peace Keeping)

२. मानव अधिकार आयुक्त --३२ सदस्य (Commission on Human Rights)

३. अतरिक्ष के शातिमय उपयोग के लिए समिति—२८ सदस्य (Committee on Peaceful Uses of Outer Space)

अधिकार एव शक्तियाँ

साधारण सभा की शक्तियाँ वास्तव मे अत्यन्त व्यापक है। चार्टर की सीमा के भीतर किसी भी मामले पर साधारण सभा विचार-विमर्श कर सकती है। राष्ट्र-सघ के किसी अग के अधिकार एवं शक्तियो पर भी साधारण सभा मे विचार-विमर्श किया जा सकता है। इन मामलो मे साधारण सभा सदस्य राष्ट्रो अथवा सुरक्षा

परिषद् को अपनी सिफारशें भेज सकती है। पर साधारण सभा किसी ऐसे प्रश्न पर विचार-विमर्श नही कर सक्ती जोकि सुरक्षा परिषद् के विचाराधीन है। ऐसा सुरक्षा के आग्रह पर ही किया जा सकता है। पर यदि साधारण सभा चाहे तो किसी विषय विशेष को सुरक्षा परिषद् की कार्यावली से हटा कर, साधारण सभा को इस पर वाद-विवाद करने का अवसर दिया जा सक्ता है। कई बार प्रस्ताव का शीर्षक बदल कर उसके साराश को बिना बदले ही साधारण सभा मे भी बहस की जा सक्ती है।

साधारण सभा एक ऐसा मच है, जहाँ विभिन्न राष्ट्रो की सरकारो के प्रतिनिधि अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। प्रत्येक सत्र मे एक सामान्य परिचर्चा होती है, जहाँ विभिन्न सरकारो के प्रतिनिधि विश्व की प्रमुख गति-विधियो पर अपने विचार व्यक्त करते हैं। साधारण सभा मे विचाराधीन विषयो की सूची बहुत विस्तृत होती है, तथा भाषणो मे पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति के कारण समय का अभाव बना रहता है।

साधारण सभा मे विश्वशाति बनाये रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, निरस्त्रीकरण—युद्ध सामग्रियो के नियन्त्रण पर विचार किया जा सकता है। किसी भी समस्या पर—जो विश्वशांति के लिए खतरा उत्पन्न करती है साधारण सभा विचार कर सक्ती है पर शर्त यह है कि यह मामला सुरक्षा परिषद् के विचाराधीन न हो।

साधारण सभा सुरक्षा परिषद् के लिए १० अस्थायी सदस्यो को भी चुनती है। इसके अतिरिक्त आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के २७ सदस्यो तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के १५ न्यायाधीशो का चुनाव भी साधारण सभा द्वारा ही किया जाता है। यह सभा सुरक्षा परिषद् की सस्तुति पर महासचिव की नियुक्ति करती है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर ही साधारण सभा नये राष्ट्रों को सदस्यता प्रदान करती है तथा सदस्य राष्ट्रों को सदस्यता से निलम्बित या निष्कासित करती है।

साधारण सभा सुरक्षा परिषद् तथा अन्य अंगो के द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनो पर विचार करती है।

राष्ट्रसघ का बजट साधारण सभा द्वारा ही स्वीकार किया जाता है।

साधारण सभा मे महत्त्वपूर्ण विषयो पर, यथा शाति एव सुरक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव, संगठन के विभिन्न अंगो के लिए सदस्यो का चुनाव, नये सदस्यो का प्रवेश, निलम्बन, निष्कासन, बजट सम्बन्धी विषयों पर उपस्थित एव मतदान करने वाले सदस्यो के २/३ बहुमत से निर्णय आदि होते हैं। अन्य मामलो मे उपस्थित एव मतदान मे भाग लेने वाले सदस्यो के साधारण बहुमत से ही निर्णय लिए जाते हैं।

साधारण सभा प्रस्ताव मात्र ही पास कर सकती है। सदस्य राष्ट्रो के लिए ये केवल संस्तुति हैं। साधारण सभा उनके पालन करने के लिए किसी प्रकार का भी शक्ति प्रयोग नहीं कर सक्ती।

कार्यविधि

महासचिव अन्त·कालीन कार्यावली तैयार करवा कर वार्षिक बैठक के दो महीने पहले सदस्य राष्ट्रो को भेजता है। पूरक कार्यावली २० दिन पहले भेजी जाती है। यदि सदस्य राष्ट्र बहुमत से चाहे तो कार्यावली मे नये प्रकरण जोडे जा सकते हैं।

साधारण सभा का सत्र औसतन तीन महीने तक चलता है। सदस्य सख्या अधिक होने तथा लम्बे-लम्बे भाषण देने वाले प्रतिनिधियो के कारण सत्र काफी दिनो तक चलता है। यद्यपि सभापति को इस दिशा मे नियन्त्रण का कुछ अधिकार प्राप्त है, पर सार्वभौमसत्ता प्राप्त देशो के प्रतिनिधियो को रोक पाना शायद आसान नही है। साधारण सभा की बैठको मे बहुमत से निर्णय लिया जाता है। उपस्थित एव मतदान मे भाग लेने वालो का बहुमत किसी प्रस्ताव के स्वीकृत होने के लिए आवश्यक है।

जो सदस्य अनुपस्थित हो अथवा मतदान मे भाग नही ले रहे हो, उनकी गिनती नही होती। ऐसे भी अवसर आये हैं जबकि प्राय. आधे सदस्यो ने मतदान मे भाग नही लिया है। कुछ विशिष्ट निर्णयो के लिए जिनका वर्णन चार्टर की धारा १८ तथा साधारण सभा की कार्यविधि मे है, २ ३ बहुमत की आवश्यकता होती है। चार्टर मे सशोधन के लिए समस्त सदस्यो के २/३ बहुमत की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रसघ मे कार्यवाही के लिए पाँच भाषायें अधिकृत की गई हैं। ये भाषायें है चीनी, अग्रेजी, फ्रेंच, रूसी तथा स्पेनिश। राष्ट्रसघ के सभी पत्रक इन सभी भाषाओ मे तैयार किये जाते हैं। वाद-विवाद के लिए अग्रेजी तथा फ्रेंच को मान्यता दी गई है। यदि कोई प्रतिनिधि अन्य किसी अधिकृत भाषा मे बोलना चाहे तो बोल सकता है। अन्य प्रतिनिधियो के लिए उसका अंग्रेजी तथा फ्रेंच मे तत्काल ही अनुवाद कर दिया जाता है।

विशेष अध्ययन के लिए

युनाइटेड नेशन्स	एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स
गुडरिच	दी युनाइटेड नेशन्स
यू०एन०ओ०	चार्टर ऑफ दी युनाइटेड नेशन्स
रंगलटन	इ टरनेशनल गवर्नमेंट

२६

सुरक्षा परिषद्

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा २३ में सुरक्षा परिषद् के संगठन की व्यवस्था की गई है। प्रारम्भ में इसकी सदस्य संख्या ११ रखी गई थी। इनमें से ५ स्थायी तथा ६ अस्थायी सदस्य थे। स्थायी सदस्यता चीन, फ्रांस, रूस, इंग्लैंड और अमेरिका को दी गई जोकि शत्रु राष्ट्रों के विरुद्ध कंधे से कंधा मिला कर लड़े थे और उन्हें पराजित किया था। अस्थायी सदस्यों को साधारण सभा द्वारा चुना जाता है। चुनाव सदस्य राष्ट्र द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा में योगदान, तथा उनके भौगोलिक वितरण को ध्यान में रख कर किया जाता है। साधारण सभा में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के २/३ बहुमत से ये चुनाव होते हैं।

सन् १९६५ में चार्टर में संशोधन करके अस्थायी सदस्यों की संख्या ६ से बढ़ाकर १० कर दी गई है। अस्थायी सदस्य दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं। उनका चुनाव इस प्रकार होता है कि आधे अस्थायी सदस्य प्रति वर्ष नये चुने जायें। कोई भी अस्थायी सदस्य अपना कार्यकाल समाप्त करने के तुरन्त ही बाद सुरक्षा परिषद् का सदस्य नहीं चुना जा सकता।

वर्तमान समय में सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्य निम्नलिखित हैं :

अरजेंटाइना बेलजियम इटली जापान सोमालिया	इनका कार्यकाल ३१ दिसम्बर, १९७२ को समाप्त होता है।
पोलैण्ड बुरुंडी सियरालियोन निकारागुआ सीरिया	इनका कार्यकाल ३१ दिसम्बर, १९७१ तक है।

कार्य एवं शक्तियाँ

१. चार्टर के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखने का उत्तरदायित्व सुरक्षा परिषद् पर है। राष्ट्रसंघ के सिद्धान्त एवं उद्देश्यों के आधार पर सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति बनाये रखने का प्रयास करती है।

२. सुरक्षा परिषद् किसी भी ऐसे मामले की जाँच-पडताल कर सकती है, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की स्थिति उत्पन्न होने की आशका हो। सुरक्षा परिषद् सम्बन्धित राष्ट्रो को तनाव रोकने की दिशा मे उचित परामर्श देती है।

३. कोई भी सदस्य राष्ट्र किसी झगडे अथवा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव उत्पन्न करने वाली स्थिति को सुरक्षा परिषद के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत कर सकता है।

४. इसी प्रकार गैर सदस्य राष्ट्र जो चार्टर मे वर्णित शातिपूर्ण तरीको मे आस्था रखते हैं, ऐसे झगडो व अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की स्थिति को साधारण सभा या महासचिव के द्वारा सुरक्षा परिषद् के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत कर सकते हैं।

५. सुरक्षा परिषद् आक्रामकता, शाति एवं सुरक्षा को खतरा, आदि की जाँच कर सकती है। शाति एवं सुरक्षा के हित मे या तो परिषद् सिफारिशें करती है अथवा शाति भंग करने वालो को बाध्य करने के लिए कदम उठाती है।

६. सुरक्षा परिषद् की बाध्यकारी शक्तियाँ निम्नलिखित हैं।

(अ) आक्रमण करने वाले राष्ट्र के विरुद्ध सदस्य राष्ट्रो से आर्थिक असहयोग के लिए आग्रह।

(ब) सैन्य शक्ति के उपयोग को छोडकर अन्य उपाय।

(स) यदि सुरक्षा परिषद् की राय मे उपरोक्त दोनो उपाय अपर्याप्त हो तो अन्तर्राष्ट्रीय शाति एवं सुरक्षा के हित मे सैन्य शक्ति का उपयोग भी सुरक्षा परिषद् कर सकती है। चार्टर के अनुसार सदस्य राष्ट्रो का यह कर्तव्य है कि सुरक्षा परिषद की माग पर सैन्य सहायता की व्यवस्था करें।

७. सुरक्षा परिषद् अस्त्र-शस्त्रो के जमा करने की होड पर नियन्त्रण रखती है।

८ सुरक्षा परिषद की संस्तुति पर ही साधारण सभा महासचिव की नियुक्ति करती है। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् के सदस्यो तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशो का चुनाव भी सुरक्षा परिषद् की संस्तुति पर ही होता है।

९. नये राष्ट्रो को राष्ट्रसघ की सदस्यता, सदस्य राष्ट्र का सदस्यता से निलम्बन, तथा राष्ट्रसघ से उसका निष्कासन आदि साधारण सभा द्वारा सुरक्षा परिषद् की संस्तुति पर ही किये जाते हैं।

१० सुरक्षा परिषद् प्रत्येक वर्ष एक वार्षिक तथा अन्य विशेष प्रतिवेदन साधारण सभा के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

सुरक्षा परिषद् मे मतदान की प्रक्रिया

यद्यपि साधारण सभा मे सदस्य राष्ट्रो की समानता स्वीकार की गई है, सुरक्षा परिषद् मे इस सिद्धान्त को मान्यता नही दी गई है। कार्यविधि सम्बन्धी मामलो को छोडकर अन्य सभी प्रस्तावो के लिए ९ सदस्यो की सहमति आवश्यक होती है। इन ९ सदस्यो मे ५ स्थायी महान् शक्तियो की सहमति भी होनी चाहिये। यदि कोई

भी महान शक्ति किसी प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान देती है तो वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में इन महान शक्तियों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अकेले अपने मत से सुरक्षा परिषद् के बहुमत के विरुद्ध किसी प्रस्ताव को रोक सकते हैं। महान शक्तियों का यह अधिकार निषेधाधिकार (Veto) कहा जाता है।

कार्यविधि सम्बन्धी मामलों में किन्हीं ९ सदस्यों के मत से निर्णय लिया जा सकता है। कार्यविधि सम्बन्धी मामलों में महान राष्ट्रों को वीटो की शक्ति प्राप्त नहीं है। यदि सुरक्षा परिषद् का कोई सदस्य राष्ट्र स्वयं किसी झगड़े में उलझा हुआ है, तो उससे सम्बन्धित प्रस्ताव पर मतदान में भाग नहीं ले सकता। यह नियम स्थायी एवं अस्थायी दोनों प्रकार के सदस्यों पर लागू होता है। अतः उन प्रस्तावों में महान राष्ट्र वीटो की शक्ति का उपयोग नहीं कर सकते जहाँ वे स्वयं ही झगड़े में उलझे हुए हैं। यदि महान राष्ट्रों में से कोई राष्ट्र किसी प्रस्ताव पर मतदान में भाग न ले तो इसे वीटो नहीं माना जाता है।

सुरक्षा परिषद् में पाँच महान राष्ट्रों की स्थायी सदस्यता तथा मतदान की इस प्रक्रिया जिससे कि उनके हितों के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं किया जा सके, का फल यह हुआ कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को कुछ ऐसी शक्तियाँ प्राप्त हैं जोकि पहले किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को प्राप्त नहीं थी। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को भंग करने वाले राष्ट्रों के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ राजनैतिक, आर्थिक एवं सैनिक कार्यवाइयाँ करने को सक्षम है। राष्ट्रसंघ को यह शक्ति इसी कारण दी जा सकी कि महान् राष्ट्रों की इच्छा के विरुद्ध इसका प्रयोग कदापि संभव न था।

सुरक्षा परिषद् का अध्यक्ष

सुरक्षा परिषद् में अध्यक्ष का निर्वाचन एक महीने के लिए होता है। स्थायी एवं अस्थायी सदस्यों के नाम अंग्रेजी की वर्णमाला के क्रमानुसार लिखे जाते हैं और उसी क्रम से प्रति माह अध्यक्ष बनने की बारी आती है। यदि सुरक्षा परिषद् आवश्यक समझे तो किसी सदस्य राष्ट्र को प्रस्ताव पर बोलने तथा वाद-विवाद में भाग लेने को निमंत्रित कर सकता है पर ऐसे आमंत्रित सदस्यों को मतदान में भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

राष्ट्रसंघ का सबसे शक्तिशाली अंग सुरक्षा परिषद् ही है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा—जिसके लिए मुख्य रूप से संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण हुआ है—इसी का उत्तरदायित्व है। इसे निभाने के लिए इसे विशेष शक्तियाँ एवं विशेषाधिकार प्राप्त हैं। इसकी सदस्य संख्या भी कम है। सदस्य संख्या कम होने से इसे कई लाभ हैं। इसकी बैठकें प्रायः निरंतर ही चला करती हैं। कुछ ही घण्टों की सूचना पर इसकी बैठक बुलाई जा सकती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्यालय पर सुरक्षा परिषद् के सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि सदैव ही उपस्थित रहते हैं। सुरक्षा परिषद् के माध्यम से अनौपचारिक रूप से राजनयिक वार्ता हो सकती है।

यद्यपि महान राष्ट्रों की एकता ही संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधारशिला है, परन्तु इस पर विचार नहीं किया गया है कि यदि किसी समस्या को लेकर इन शक्तियों में एकता न आ सके तो क्या होगा। इस तथ्य को प्रारम्भ में ही स्वीकार कर लिया गया कि कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन पाँच महान राष्ट्रों में पारस्परिक शांति नहीं रख सकता। अतः सुरक्षा परिषद् इन पाँच महान राष्ट्रों की कार्यविधियों की देखरेख रखने वाली संस्था नहीं है। यह वह संस्था है जिसके माध्यम से पाँचों स्थायी सदस्य एकमत होकर शांति एवं सुरक्षा बनाये रखते हैं। यदि किसी समय सैनिक कार्यवाही की आवश्यकता पड़ती है तो सेना का अधिकांश भाग स्थायी सदस्यों को ही जुटाना पड़ता है। सुरक्षा परिषद् को दी गई सैन्य शक्ति को संचालित करने के लिए सैनिक स्टाफ समिति की व्यवस्था की गई है। इसके सदस्य स्थायी सदस्यों के सेनाध्यक्ष होते हैं।

सुरक्षा परिषद् में अस्थायी सदस्यों की व्यवस्था छोटे राष्ट्रों की माँगों के फलस्वरूप की गई है। लीग ऑफ नेशन्स के कौंसिल में भी इसी प्रकार की व्यवस्था थी। सैद्धान्तिक रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि सात छोटे राष्ट्र एक साथ मिलकर काम करें तो वे महान शक्तियाँ जिन्हें वीटो का अधिकार प्राप्त है—की मनमानी पर रोक लगा सकते हैं। क्योंकि राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुसार प्रस्ताव के पक्ष में ९ मत होने चाहिए जिनमें पाँचों महान राष्ट्रों के मत भी शामिल होने चाहिए। यदि सात छोटे राष्ट्र मिलकर किसी प्रस्ताव का विरोध करें तो महान राष्ट्रों के पक्ष में मतदान करने पर भी प्रस्ताव पास नहीं हो सकेगा क्योंकि प्रस्ताव के पक्ष में आवश्यक ९ मत नहीं हो सकेंगे। पर वास्तव में ऐसा इसलिए नहीं हो पाता कि अस्थायी सदस्यों का चुनाव शक्ति गुट (Power Block) अपने लाभ को ध्यान में रख कर करवाते हैं। ये सदस्य अपने सम्बन्धित शक्ति गुट के साथ ही मतदान में भाग लेते हैं।

विशेष अध्ययन के लिए

गुडरिच	:	दी युनाइटेड नेशन
यू० एन० ओ०		चार्टर ऑफ दी युनाइटेड नेशन्स
वर्मा दीनानाथ	:	अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
युनाइटेड नेशन्स	.	एवरीमैन्स युनाइटेड नेशन्स
ईगलटन	.	इन्टरनेशनल गवर्नमेंट

संयुक्त राष्ट्र-संघ का सचिवालय

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा ९७ के अनुसार राष्ट्रसंघ के प्रशासकीय कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक सचिवालय की व्यवस्था की गई है। लीग ऑफ नेशन्स के अनुभव से सचिवालय का महत्त्व स्पष्ट हो चुका था। अतः चार्टर में इसे मुख्य अंग के रूप में रखा गया है। सचिवालय वास्तव में एक ऐसी संस्था है, जो सही अर्थों में सारे राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करती है एवं निष्पक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय हितों के लिए काम करती है।

सचिवालय का प्रमुख प्रशासकीय अधिकारी महासचिव होता है। महासचिव के अतिरिक्त अन्य अधिकारी भी आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जाते हैं। राष्ट्रसंघ में विभिन्न देशों के नागरिकों के बीच पदों का बंटवारा बजट में देशों के योगदान पर निर्भर करता है। पर साथ ही यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि न तो किसी देश का प्रतिनिधित्व बहुत अधिक हो और न बहुत कम ही।

महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की संस्तुति पर साधारण सभा द्वारा की जाती है। चूंकि महान शक्तियों को सुरक्षा परिषद् में विशेषाधिकार की शक्ति प्राप्त है, अतः कोई भी ऐसा व्यक्ति महासचिव नियुक्त नहीं हो सकता जोकि महान राष्ट्रों को स्वीकार न हो। अबतक महासचिव के पद पर जिन व्यक्तियों की नियुक्ति हुई है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि महान राष्ट्रों के नागरिकों को नियुक्त न करने की परम्परा-सी बन गई है। सबसे पहले महासचिव ट्रिग्वी ली नार्वे के थे। डैग हैमरशोल्ड स्वीडन के नागरिक थे। उ थांट बर्मा के नागरिक थे तथा वर्तमान महासचिव वाल्ड हाइम आस्ट्रिया के हैं।

महासचिव का कार्यकाल ५ साल होता है। वह दुबारा भी अपने पद के लिए चुने जाने के लिए सक्षम है।

*महासचिव की सहायता के लिए ११ अवर महासचिव तथा ४ सहायक महा-*सचिव होते हैं। अवर महासचिव और सहायक महासचिव संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख गतिविधियों पर नियन्त्रण रखते हैं। ये सभी महासचिव की देख-रेख में काम करते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में सचिवालय का वही स्थान है जो किसी राष्ट्र विशेष के प्रशासन में सचिवालय का होता है। राष्ट्रसंघ के प्रशासकीय उत्तरदायित्वों के लिए सचिवालय ही जिम्मेवार है। सचिवालय का मुख्यालय न्यूयार्क में स्थित है। यूरोप

के देशो के लिए इसका काफी बडा ग्राफिस जेनेवा मे पॅलिस डैस नेशन्स (Palis des Nations) मे स्थित है। यह वही भवन है जो पहले लीग ग्रॉफ नेशन्स का मुख्यालय था। इसके ग्रतिरिक्त विश्व की सभी प्रमुख राजधानियो मे छोटे-छोटे कार्यालय हैं।

राष्ट्रसघ के सचिवालय के प्रमुख ग्रग निम्नलिखित हैं

१. महासचिव का कार्यालय

इसके ग्रन्तर्गत निम्नलिखित कार्यालय हैं—

(ग्र) महासचिव का कार्यकारी विभाग

(ब) विशेष राजनैतिक समस्याग्रो के लिए ग्रवर सचिव का कार्यालय

(स) कानूनी मामलो का कार्यालय

(द) नियन्त्रक कार्यालय

(इ) कार्मिक वर्ग का कार्यालय

२ राजनैतिक एवं सुरक्षा परिषद् से सम्बन्धित विभाग

३ ग्रार्थिक एवं सामाजिक मामलो का विभाग—इसमे क्षेत्रीय ग्रार्थिक ग्रायोग भी सम्मिलित है।

४ प्रन्यासिता (Trusteeship) विभाग

५ सम्मेलन ग्रादि की सेवाग्रो से सम्बन्धित विभाग

६. सामान्य सेवाग्रो का विभाग

७. जन-सूचना विभाग

८ कानूनी मामलो का विभाग

महासचिव के कर्तव्य

१ महासचिव राष्ट्रसंघ के प्रमुख प्रशासकीय ग्रधिकारी के रूप मे काम करता है।

२ महासचिव होने के नाते वह,

साधारण सभा,

सुरक्षा परिषद्,

ग्रार्थिक एवं सामाजिक परिषद्,

प्रन्यासिता (Trusteeship) परिषद्,

की बैठको मे प्रमुख प्रशासकीय ग्रधिकारी के रूप मे काम करता है। इन ग्रंगो द्वारा दिये गये निर्देशो को पूरा करना महासचिव का कर्तव्य है।

३. महासचिव को राष्ट्रसंघ के लिए विभिन्न पदाधिकारियो को नियुक्त करने का भी ग्रधिकार है। नियुक्तिया साधारण सभा द्वारा बनाये गये नियमो के ग्रनुसार की जाती हैं। विभिन्न देशो के प्रतिनिधि राष्ट्रसघ की सेवा मे लिए जा सकें इसका भी ध्यान रक्खा जाता है।

४. चार्टर की धारा ६६ के अनुसार महासचिव कोई भी ऐसा मामला जिससे विश्व शांति एव सुरक्षा को खतरा है, सुरक्षा परिषद् के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत कर सकता है।

५. महासचिव साधारण सभा के सम्मुख वार्षिक एवं पूरक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।

सचिवालय मे महासचिव का पद अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। वह प्रशासकीय एव राजनैतिक दोनो प्रकार के कार्य करता है। विभिन्न प्रतिनिधि मण्डलो से उसका निरन्तर सम्पर्क रहता है। वह अपने व्यक्तित्व एव पद के प्रभाव से उन्हें राष्ट्रसघ के चार्टर के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए चेष्टा करने को प्रेरित कर सकता है। रूस मे यह शका प्रकट की है कि एक ही व्यक्ति के महासचिव रहने से यह सम्भावना रही है कि वह एक गुट विशेष के लाभ के लिए काम करने लगे। अतः रूस ने यह सुझाव दिया कि एक महासचिव के स्थान पर तीन व्यक्ति रक्खे जायें जिनमे से एक पू जीवादी देशो का, एक कम्युनिस्ट देशो का तथा एक तटस्थ राष्ट्रो का प्रतिनिधित्व करे। इस प्रस्ताव मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि यदि एक की जगह तीन व्यक्ति महासचिव बनाये जायें तो उनके कार्यों के समन्वय का क्या प्रबन्ध हो ? जिस प्रकार एक राज्य मे एक साथ ही तीन मुख्य सचिव रखने से गडबडी फैलेगी, उसी प्रकार की स्थिति राष्ट्रसघ के सचिवालय मे भी हो जावेगी।

महासचिव मुख्यतः प्रशासक है। राष्ट्रसघ के विभिन्न अगो का कार्यक्रम तैयार करवाना तथा उसे कार्यान्वित करवाना यह उसका काम है। पर प्रशासक होने के साथ ही एक राजनैतिक नेता भी है। सदस्य राष्ट्र उसे परामर्श करते हैं। यह उसी का काम है कि देखे कि राष्ट्रसघ सफल होता है। उसे छोडकर और कोई व्यक्ति ऐसा नही जो राष्ट्रसघ का संस्थागत रूप मे प्रतिनिधित्व कर सके। राष्ट्र सघ के हितो की रक्षा करना उसी का उत्तरदायित्व है। यद्यपि उसके उत्तरदायित्व बहुत हैं, पर शक्तियाँ बहुत ही कम हैं। न तो उसके पीछे पार्लियामेंट की शक्ति है, न न्यायालय की। उसके पास अपने आदेशों को मनवाने के लिए पुलिस भी नहीं है। उसे अपने प्रयास से समझा-बुझा कर राष्ट्रो को राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुसार आचरण करने पर राजी करना पडता है।

अपने राजनैतिक उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए महासचिव अनेक प्रकार से अपने विचारो से सदस्य राष्ट्रो को प्रभावित कर सकता है। वार्षिक प्रतिवेदन मे साधारण सभा के सम्मुख वह अपने विचार प्रस्तुत करता है। वह कुछ सुझाव उनके सामने रख सकता है। वह अपने वक्तव्यो के द्वारा अपने विचार व्यक्त कर सकता है तथा सदस्य राष्ट्रो को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने का प्रयास कर सकता है। अपने भ्रमण मे, पत्र व्यवहार मे तथा सदस्य राष्ट्रो से अन्य सम्पर्क मे उनके विचारों को प्रभावित करने का प्रयास कर सकता है। चूँकि सचिवालय का सारा काम महासचिव के ही नेतृत्व पर निर्भर करता है इसलिए सदस्यों मे साधारणतः

इस बात पर सहमति है कि महासचिव योग्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्ति होना चाहिए। यदि वास्तव मे देखा जाए तो सचिवालय का कोई राजनैतिक रुझान नहीं है। इसके कार्यों का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप है। सचिवालय के अधिकारियो एव कर्मचारियो से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी राष्ट्रीय भावनाओ तथा सहानुभूतियों को सगठन के उद्देश्य की प्राप्ति मे बाधक नही बनने देंगे। अपने कार्यकाल मे सतत सयुक्त राष्ट्रो के आदेशो के अनुसार ही चलेंगे। चार्टर की धारा १०० में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अपने कर्तव्यो के पालन करने मे महासचिव तथा राष्ट्र सघ अन्य पदाधिकारी अपनी राष्ट्रीय सरकारो से किसी भी प्रकार का आदेश नही लेंगे। ऐसा कोई भी काम नही करेंगे, जिससे उनकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर कोई आघात हो। साथ ही सदस्य राष्ट्रो से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उनकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का सम्मान करेंगे तथा महासचिव तथा अन्य पदाधिकारियो पर किसी भी प्रकार का प्रभाव डालने का प्रयास नही करेंगे।

विशेष अध्ययन के लिए

गुडरिच	.	दी युनाइटेड नेशन्स
यू०एन०ओ०	.	चार्टर ऑफ दी युनाइटेड नेशन्स
युनाइटेड नेशन्स	:	एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स



२८

संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संस्था—यूनेस्को

(युनाइटेड नेशन्स एज्यूकेशनल एण्ड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन—यूनेस्को) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संस्था की स्थापना के लिए सन् १९४५ मे लदन मे राष्ट्रसंघ का एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमे यूनेस्को का संविधान तैयार किया गया। सन् १९४६ के नवम्बर महीने मे यूनेस्को के सविधान को २० राष्ट्रो द्वारा मान्यता प्रदान करने पर औपचारिक रूप से इस संस्था की स्थापना हुई।

उद्देश्य

संविधान के अनुसार यूनेस्को का उद्देश्य राष्ट्रो मे पारस्परिक शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सास्कृतिक सहयोग के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा मे योगदान करना है। यह न्याय तथा विधि शासन के प्रति आदर की भावना के विकास के प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त यूनेस्को सभी के लिए मानवीय अधिकारो तथा मौलिक अधिकारो की स्थापना चाहता है।

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए यूनेस्को निम्नलिखित कार्य करता है:

१. शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सास्कृतिक विकास को गतिशील बनाने का प्रयास करता है।

२. उपरोक्त क्षेत्रो मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

३. उपरोक्त क्षेत्रो मे विभिन्न प्रकार की सूचनायें एवं आंकडे एकत्रित करता है।

संगठन

यूनेस्को के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं :

१ साधारण सभा (General Conference)—यह सर्वोच्च प्रशासकीय अंग है। संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सास्कृतिक संस्था के सभी सदस्य राष्ट्र इसके सदस्य होते हैं। इसकी बैठक दो वर्षो मे एक बार होती है। इन बैठको मे साधारण सभा आने वाले दो वर्षो के लिए नीति निर्धारित करती है, कार्यक्रमो का अनुमोदन करती है तथा बजट पास करती है।

२. कार्यकारिणी मण्डल (Executive Board)—इसका निर्वाचन साधारण सभा द्वारा कार्यक्रमो को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए किया जाता है।

कार्यकारिणी मण्डल मे ३० सदस्य होते हैं। इसकी बैठक साल मे दो या तीन बार होती है।

३. **सचिवालय.**—सचिवालय का प्रधान महा निदेशक (Director General) होता है। इसकी नियुक्ति के लिए कार्यकारिणी मण्डल नाम प्रस्तावित करती है। नियुक्ति साधारण-सभा द्वारा की जाती है।

प्रत्येक सदस्य राष्ट्र मे राष्ट्रीय आयोग संगठित किया गया है, जिसमे सरकारी तथा गैरसरकारी सस्थाओ के प्रतिनिधि होते हैं। इन आयोगो के माध्यम से यूनेस्को सदस्य राष्ट्रो के शैक्षणिक, वैज्ञानिक एव सास्कृतिक जीवन मे सम्पर्क बनाये रखता है तथा यूनेस्को के कार्यक्रमो को पूरा करने मे सहायता पहुँचाता है।

यूनेस्को का मुख्यालय पेरिस मे है।

सदस्यता

संयुक्त राष्ट्रसघ की सदस्यता से सदस्य राष्ट्रो को यूनेस्को का सदस्य होने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे राष्ट्र भी यूनेस्को के सदस्य बन सकते हैं जो राष्ट्र-सघ के सदस्य नही हैं। इसके लिए निम्नलिखित दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है।

(अ) कार्यकारिणी मण्डल ऐसे देश की सदस्यता की संस्तुति करे तथा साधारण सभा २/३ बहुमत से इसका अनुमोदन कर दे।

(ब) संयुक्त राष्ट्र सघ की आर्थिक एव सामाजिक परिषद् (Economic & Social Council) ने उसकी सदस्यता का विरोध न किया हो।

सन् १९६६ के प्रारम्भ मे यूनेस्को मे १२० राष्ट्र सदस्य थे। तीन सह सदस्य भी थे। सह सदस्यो को संगठन मे वे ही अधिकार प्राप्त हैं जोकि अन्य सदस्यो को प्राप्त हैं, पर न तो वे साधारण सभा मे मतदान मे हिस्सा ले सकते हैं और न कार्यकारिणी मण्डल के सदस्य ही चुने जा सकते हैं।

यूनेस्को के महत्वपूर्ण कार्यक्रम

यूनेस्को का कार्यक्रम सदस्य राष्ट्रो की भौगोलिक सीमा मे उनके आग्रह पर ही, उनके सहयोग से कार्यान्वित किया जाता है। यूनेस्को केवल सस्तुति ही कर सकती है। कोई भी राष्ट्र इन सस्तुतियो को मानने को बाध्य नही है।

यूनेस्को के कुछ कार्यक्रम तो स्थायी रूप से चलाये जाते हैं, जैसे सूचनाओ का आदान-प्रदान, अन्तर्राष्ट्रीय गैरसरकारी संगठनो की सहायता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आदि।

यूनेस्को के प्रमुख कार्यक्रमो मे निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है

शिक्षा—ऐसा अनुमान किया जाता है कि ससार की प्रौढ जनसख्या का लगभग २/५ भाग निरक्षर है। साक्षरता प्रसार के लिए यूनेस्को विशेष रूप से प्रयत्नशील है। सन् १९६५ मे यूनेस्को के तत्वावधान मे निरक्षरता उन्मूलन के लिए

तेहरान मे विश्व काग्रेस का आयोजन किया गया था। इसके फलस्वरूप अनेक देशों मे निरक्षरता उन्मूलन के लिए मार्गदर्शीय योजनायें बनायी गई हैं।

विकासशील देशों मे शैक्षणिक विकास के लिए योजनाएँ बनाने मे यूनेस्को, अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षणिक आयोजन संस्थान, पेरिस (International Institute of Educational Planning Paris) के संयुक्त तत्त्वावधान मे काम करता है। इसके अतिरिक्त यूनेस्को शिक्षण के नये तरीको के विकास मे भी सहायक होता है।

यूनेस्को के मुख्यालय मे सदस्य राष्ट्रो के शैक्षणिक कार्यक्रम, छात्रवृत्तिया तथा शिक्षण के क्षेत्र से सम्बन्धित अन्य आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं।

प्राकृतिक विज्ञान

विज्ञान के क्षेत्र मे यूनेस्को के कार्यक्रमो के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं .—

(अ) सदस्य राष्ट्रो मे विज्ञान की मूलभूत संरचना का विकास करना।

(ब) वैज्ञानिक अनुसंधानो के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग।

(स) विज्ञान एवं टेकनोलोजी के विकास के लिए प्रयत्नशील होना।

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए यूनेस्को ने चार क्षेत्रीय विभाग, लैटिन अमेरीका, मध्य पूर्व, दक्षिण एशिया, तथा दक्षिण पूर्व एशिया मे खोल रक्खे हैं।

इसके अतिरिक्त यूनेस्को विश्व जल मण्डल तथा भूकम्प आदि से सम्बन्धित अनुसधानो मे भी सहायता देता है।

सामाजिक विज्ञान

इस क्षेत्र मे यूनेस्को समाज विज्ञान के विद्वानो के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सूचनाओं के आदान-प्रदान का प्रयास करता है। विकासशील देशो मे समाज विज्ञान के प्रशिक्षण एव अनुसधान मे भी सहायता देता है। मनोविज्ञान, भाषाशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि की प्रमुख विचारधाराओ का एक अन्तर्राष्ट्रीय सर्वेक्षण भी किया गया है। यूनेस्को का सामाजिक विज्ञान विभाग विकासशील देशो की आर्थिक एव सामाजिक समस्याओ का अध्ययन करता है।

संस्कृति

इस क्षेत्र मे यूनेस्को के कार्यक्रमो के तीन महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं—

(अ) मौलिक रचना का कार्य

(ब) वर्तमान रचना की सुरक्षा

(स) संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय परिबोध

इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय थियटर इंस्टीट्यूट तथा अन्तर्राष्ट्रीय थियटर म्यूजिक कौंसिल को सहायता देता है। सिनेमा और टेलिविजन का साहित्य तथा कला पर प्रभाव का सर्वेक्षण भी किया गया है। यूनेस्को पुस्तकालयो तथा सग्रहालयो को भी विकसित करने मे सहायता देता है।

सामूहिक संचार

सामूहिक संचार के क्षेत्र मे यूनेस्को का उद्देश्य स्वतत्र सचार व्यवस्था स्थापित करना है जिससे लोग दूसरे देशो के बारे मे जान सकें एव अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यूनेस्को विकासशील देशो मे प्रेस, रेडियो, सिनेमा, टेलिविजन आदि सामूहिक सचार के माध्यमो को प्रोत्साहन एव सहायता देता है। यूनेस्को की सहायता से अनेक देशो मे शैक्षणिक प्रसारण की व्यवस्था की गई है।

अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान

इस क्षेत्र मे शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए यूनेस्को विदेशो मे यात्रा को प्रोत्साहन देता है। विदेशो मे यात्रा करने से अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना के विकास मे बडी सहायता मिलती है। प्रति द्वितीय वर्ष यूनेस्को स्टडी एब्रोड (Study Abroad) नामक पुस्तिका प्रकाशित करता है, जिसमे छात्रवृत्तियो तथा आदान-प्रदान की योजनाओ के अन्तर्गत विदेशो मे शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाओ का वर्णन रहता है।

तकनीकी सहायता

संयुक्त राष्ट्रसघ के विकास कार्यक्रम तथा अपने कार्यक्रमो के अन्तर्गत यूनेस्को विकासशील देशो मे तकनीकी सहायता के लिए विशेषज्ञ भेजता है। यूनेस्को वैज्ञानिक इजीनियरिंग तथा समाज विज्ञान के विकास के लिए विशेषज्ञो की सेवायें इन कार्यक्रमो के अन्तर्गत उपलब्ध कराता है। सन् १९६५ के अन्त मे अनुमानत १००० इस प्रकार के विशेषज्ञ विकासशील देशो मे काम कर रहे थे।

नोट—यह अध्याय युनाइटेड नेशन्स द्वारा प्रकाशित "एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स" मे दी गई सूचनाओ एव तथ्यो पर आधारित है।

विशेष अध्ययन के लिए

गुडरिच	:	दी युनाइटेड नेशन्स
यू० एन० ओ०	.	चार्टर आफ दी युनाइटेड नेशन्स
युनाइटेड नेशन्स		एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स यूनेस्को का सविधान

२९

संयुक्त राष्ट्र का खाद्य एवं कृषि संघ

सन् १९४३ मे सयुक्त राष्ट्रसंघ के खाद्य एव कृषि सम्मेलन ने एक अन्तरिम आयोग की स्थापना की। इस अन्तरिम आयोग ने कृषि एव खाद्य सघ (फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन—एफ० ए० ओ०) का सविधान तैयार किया। औपचारिक रूप से खाद्य एवं कृषि सघ की स्थापना १६ अक्तूबर, १९४५ को की गई। उस समय तक २६ सरकारो ने इसके सविधान को स्वीकार कर लिया था।

उद्देश्य

खाद्य एव कृषि सघ के संस्थापक राष्ट्रो ने यह इच्छा प्रकट की कि—

(अ) लोगो का पोषणिक स्तर तथा रहन-सहन का दर्जा ऊचा उठाया जाय।

(ब) कृषि से वस्तुओ के उत्पादन एव वितरण को विकसित किया जाये।

(स) देहातो मे रहने वाले लोगो को रहन-सहन की अच्छी सुविधायें प्राप्त हो।

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए खाद्य एव कृषि सघ निम्नलिखित काम करता है—

१. सूचना सेवा—पोषक आहार कृषि, जगल, मत्स्य उद्योग आदि से सम्बन्धित आंकडे देता है तथा इन क्षेत्रो मे आने वाले वर्षो के लिए पूर्वानुमान भी बताता है।

२. कृषि उत्पादन, मत्स्य तथा जगल उत्पादन के क्षेत्र मे उत्पादन बढाने तथा उचित रूप मे बेचने के लिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासो को सहायता देता है।

३. प्राकृतिक साधनो की रक्षा के प्रयास मे सहायक होता है।

४ यदि कोई राष्ट्र आग्रह करे तो उपरोक्त क्षेत्रो मे तकनीकी सहायता का प्रबन्ध करता है।

सगठन

खाद्य एव कृषि सघ का स्थायी मुख्यालय रोम मे है। इसके अलावा निम्नलिखित ७ क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं·

१. उत्तर अमेरिका क्षेत्रीय कार्यालय—वाशिंगटन

२. निकट पूर्व क्षेत्रीय कार्यालय—कैरो

३. एशिया एव सुदूर पूर्व क्षेत्रीय कार्यालय—बैंगकाक

४. लेटिन अमेरिका क्षेत्रीय कार्यालय--सँटियागो
५. पूर्वी लेटिन अमेरिका क्षेत्रीय कार्यालय—रियाडोजेनरो
६. अफ्रीकी क्षेत्रीय कार्यालय—अकारा
७. यूरोपीय क्षेत्रीय कार्यालय—जेनेवा

इन सात क्षेत्रीय कार्यालयो के अतिरिक्त खाद्य एव कृषि सघ का एक सम्पर्क कार्यालय सयुक्त राष्ट्रसघ के मुख्यालय पर भी है। खाद्य एवं कृषि सघ अपने कार्य-क्रमो को इन्ही कार्यालयो के माध्यम से सचालित करता है।

खाद्य एव कृषि सघ के प्रमुख अग निम्नलिखित हैं—

१. साधारण सभा (कान्फ्रेंस)—यह सर्वोच्च प्रशासकीय अग है। खाद्य एव कृषि सघ के सभी सदस्य राष्ट्र इसके सदस्य होते हैं। प्रत्येक सदस्य को केवल एक ही वोट देने का अधिकार होता है। सह सदस्यो को बैठको मे उपस्थित रहने तथा वाद-विवाद मे भाग लेने का अधिकार तो रहता है पर वे मतदान मे भाग नही ले सकते। साधारण सभा की बैठक दो वर्षों मे एक बार होती है।

२. कार्यकारिणी मण्डल (कौंसिल)—यह खाद्य एव कृषि सघ की कार्यकारिणी सभा है। ३१ सदस्य राष्ट्र इसके सदस्य होते हैं। ये सदस्य साधारण सभा द्वारा चुने जाते हैं। साधारण सभा की बैठको के बीच कार्यकारिणी मण्डल खाद्य एव कृषि सघ के कार्यक्रमो पर नियत्रण रखता है। विश्व की कृषि एव खाद्य स्थिति की समीक्षा करता है, कृषि एव खाद्य की स्थिति मे सुधार लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो से सिफारिश करता है।

३. सचिवालय—यह महा निदेशक की अधीनता मे काम करता है। महा निदेशक का चुनाव कार्यकारिणी मण्डल द्वारा चार वर्ष के लिए होता है। सचिवालय निम्नलिखित ६ भागो मे विभाजित है :

(अ) कार्यक्रम एव बजट का विभाग
(ब) तकनीकी विभाग
(स) आर्थिक एव सामाजिक मामलो का विभाग
(द) मत्स्य उद्योग का विभाग
(ई) जन-सम्पर्क एव कानूनी मामलो का विभाग
(फ) प्रशासन एव वित्तीय विभाग

सदस्यता

खाद्य एव कृषि सघ के मूल सदस्य वे राष्ट्र हैं जिनकी तालिका सघ के सविधान के परिशिष्ट मे दी गई है। इन राष्ट्रो ने खाद्य एव कृषि सघ के सविधान को स्वीकार कर लिया है। नये राष्ट्रो को सदस्यता तब प्रदान की जाती है जबकि वे सघ के सविधान को स्वीकार कर लें तथा साधारण सभा उनकी सदस्यता का २/३ बहुमत से अनुमोदन कर दे। १९६६ के प्रारम्भ मे खाद्य एव कृषि संघ म

११० राष्ट्रों को पूर्ण सदस्यता प्राप्त थी तथा ४ सह सदस्य थे।

खाद्य एवं कृषि संघ के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम

खाद्य एवं कृषि संघ के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो मे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

१ भूख से मुक्ति का आन्दोलन—खाद्य एवं कृषि संघ ने इस आन्दोलन का प्रारम्भ १९६० मे किया था। इसका उद्देश्य यह है कि विश्व की जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाये जिससे कि लोग दृढ़ प्रतिज्ञ होकर इस समस्या के समाधान के लिए प्रयास करें। अनेक देशो के नागरिको ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए करोड़ो डालर चन्दे के रूप मे एकत्रित किये हैं। इस आन्दोलन के अन्तर्गत कुछ कार्यक्रम तो संघ स्वयं ही संचालित करता है, तथा कुछ अन्य के लिए सम्बन्धित संस्थाओ को तकनीकी परामर्श आदि देता है।

२ खाद्य एवं कृषि संघ अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ के साथ मिल कर सम्मिलित रूप से भी कुछ कार्यक्रम चलाता है। इनमे कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो का उल्लेख नीचे किया जाता है :

(अ) राष्ट्रसंघ तथा खाद्य एवं कृषि संघ का विश्व के लिए भोजन सम्बन्धी कार्यक्रम—इसका प्रारम्भ सन् १९६३ मे किया गया था। इसके अन्तर्गत अनेक देशो मे आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यक्रम चलाये जाते है। इन कार्यक्रमो पर अनुमानतः ६ करोड़ डालर खर्च होते है। इनके अन्तर्गत विकासशील देशो मे मजदूरो को वेतन आंशिक रूप से खाद्य सामग्रियो के रूप मे दिया जाता है।

(ब) खाद्य एवं कृषि संघ तथा अन्तर्राष्ट्रीय ऐटोमिक एनर्जी एजेन्सी का सम्मिलित कार्यक्रम—इसके अन्तर्गत भूमि का उत्पादन बढ़ाने, सिंचाई, फसल की रक्षा, कीटाणु उन्मूलन आदि के कार्यक्रम आते हैं। इसका कार्यालय वियना मे है।

(स) खाद्य एवं कृषि संघ तथा पुनर्निर्माण एवं विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Reconstruction & Development) ने सम्मिलित रूप से राष्ट्रीय कृषि विकास की योजनाओ के मूल्यांकन का कार्यक्रम चलाया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि विकास की योजनाओ के लिए विकासशील देशो को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है।

(द) खाद्य एवम् कृषि संघ तथा उद्योग सहयोग कार्यक्रम (Industry Co-operative Programme) की स्थापना सन् १९६६ मे की गई थी। इसका उद्देश्य संघ, उद्योग, तथा सरकारो के बीच ऐसे सम्बन्ध स्थापित करना है, जिससे विकासशील देशो मे विकासोन्मुखी कार्यक्रमो को प्रोत्साहन मिले। इसके अन्तर्गत विकासशील देशो को प्रशासकीय, आर्थिक, तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहायता दी जाती है।

३ विश्व की खाद्य-स्थिति की समीक्षा—खाद्य एवं कृषि संघ विश्व की खाद्य एवं कृषि परिस्थितियो की निरंतर देखभाल करता रहता है। संघ द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि विकासशील देशो मे उत्पादन मे वृद्धि हुई है, पर जनसंख्या के बढ़ने से खाद्य वस्तुओ की कमी बनी ही हुई है। यद्यपि विज्ञान के अनु-

संधानो के फलस्वरूप विश्व की खाद्य समस्या मे काफी सुधार लाया जा सकता है, पर यह तभी सभव है जबकि विश्व के नेता इस समस्या की गभीरता को समझें तथा संघ के कार्यक्रमों के लिए अधिक धनराशि उपलब्ध करा सके।

४. खाद्य एव कृषि संघ कृषि संबंधी योजनाओ तथा उनके उत्पादनो के उचित मूल्य पर विक्रय की योजनाओ में भी सहायता देता है। यह विश्व मे खाद्य वस्तुओ की आवश्यकताओ के बारे मे पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है।

५ खाद्य एवम् कृषि सघ का भूमि एव जल विकास विभाग कृषि सम्बन्धी साधनो के विकास का प्रयास करता है। इसके अन्तर्गत भूमि सर्वेक्षण, रासायनिक खाद्य, कृषि का मशीनीकरण, सिंचाई संबंधी योजनाए आदि आती हैं।

६ खाद्य एवम् कृषि सघ का पौध उत्पादन एव सरक्षण विभाग अच्छे बीजो के उत्पादन एव वितरण की व्यवस्था करता है। कृषि उत्पादनो की जाच तथा उनके विकास की योजनाए भी इसी के अन्तर्गत आती हैं।

■ खाद्य एवम् कृषि सघ का पशुपालन तथा स्वास्थ्य विभाग पशुओ मे फैलने वाली बीमारियो की रोक-थाम करता है। इनसे सबधित अनुसंधान को प्रोत्साहित कराता है। डेनमार्क की सरकार की सहायता से डेयरी फार्म के कार्यकर्ताओ के लिए प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी इसके अन्तर्गत चलाया जाता है।

८. मत्स्य विभाग विश्व मे मछलियों के विकास सम्बन्धी योजनाएं संचालित करता है। विश्व भर मे पकडी गई मछलियों के आंकडे रखता है।

९. खाद्य एवम् कृषि संघ इमारती तथा दूसरी लकडी की विश्व आवश्यकता आंकने के लिए अनेक क्षेत्रीय अध्ययनो का प्रबंध करता है। सन् १९६५ के एक अध्ययन के अनुसार विश्व भर में ११० लाख एकड जमीन मे जल्दी बढने वाले वृक्ष लगाये गये। हाल के वर्षों मे कागज के कारखानो के लिए कच्चे माल के उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है।

१० खाद्य एवम् कृषि सघ विकासशील देशो को पोषक सेवायें (Nutrition Services) स्थापित करने मे सहायता देता है। इस क्षेत्र मे प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। खाद्य वस्तुओ के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानक स्थापित करता है।

नोट यह अध्याय युनाइटेड नेशन्स द्वारा प्रकाशित 'एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स मे दी गई सूचनाओ एवं तथ्यो पर आधारित है।

विशेष अध्ययन के लिए

युनाइटेड नेशन्स	:	एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स
गुडरिच		दी युनाइटेड नेशन्स
यू० एन० ओ०	.	चार्टर ऑफ युनाइटेड नेशन्स
		एफ० ए० ओ० का संविधान

———

३०

विश्व स्वास्थ्य संघ

विश्व स्वास्थ्य सघ (वर्ल्ड हैल्थ ऑरगेनाइजेशन—डबल्यू० एच० ग्रो०) को स्थापित करने का प्रस्ताव सैनफ्रैंसिसको मे सन् १६४५ मे राष्ट्रसंघ के अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाग्रो के सम्मेलन मे किया गया था। सन् १६४६ मे न्यूयार्क मे ६४ राष्ट्रो के प्रतिनिधियो ने इसका सविधान तैयार किया। यह संविधान ७ अप्रैल, १६४८ को लागू हुआ जबकि सयुक्त राष्ट्रसघ के २६ सदस्यो ने इसको मान्यता दी। सारे विश्व मे ७ अप्रैल को विश्व स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है।

उद्देश्य

विश्व स्वास्थ्य सघ का उद्देश्य सारे विश्व के नागरिको के लिए स्वास्थ्य की उच्चतम सीमा को प्राप्त करना है। स्वास्थ्य सघ के सविधान के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा केवल बीमारी अथवा कमजोरी का न होना ही नही है। स्वास्थ्य की परिभाषा मे पूर्णत. शारीरिक मानसिक एव सामाजिक कल्याण भी शामिल है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य सघ निम्नलिखित कार्य करता है :

१ अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य के कार्यक्रमो मे समन्वय स्थापित करता है एवं उनका संचालन करता है।

२. महामारी एव स्थानिक बीमारी एव अन्य बीमारियो के उन्मूलन के कार्य करता है।

३. मेडिकल, जनस्वास्थ्य तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्रो मे शिक्षण एव प्रशिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करता है।

४. जैव उत्पादन (Biological Products),
भेषज उत्पादन (Pharmaceutical Products)
तथा इसी प्रकार के अन्य उत्पादनो के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानक की स्थापना करता है।

५. रोगो के निदान की प्रक्रिया का मानकीकरण करता है।

६. मानसिक रोगो की चिकित्सा के कार्यक्रमो को प्रोत्साहित करता है।

संगठन

विश्व स्वास्थ्य सघ का मुख्य कार्यालय जेनेवा मे है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित ६ क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं :

१. दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्रीय कार्यालय, नई दिल्ली
२. पूर्व भूमध्यसागरीय क्षेत्रीय कार्यालय, एलेक्जेंड्रिया
३. पश्चिमी प्रशान्त क्षेत्रीय कार्यालय, मनीला
४ अमेरिकन क्षेत्रीय कार्यालय, वाशिंगटन
५. अफ्रीकी क्षेत्रीय कार्यालय, ब्रेजेविले
६ यूरोपीय क्षेत्रीय कार्यालय, कोपेन हेगेन

विश्व स्वास्थ्य संघ अपने कार्यक्रमों को इन्हीं क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से संचालित करता है।

विश्व स्वास्थ्य संघ के प्रमुख अंग निम्नलिखित है—

१ विश्व स्वास्थ्य साधारण सभा (असेम्बली)—यह सर्वोच्च प्रशासकीय अंग है। विश्व स्वास्थ्य संघ के सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि इसमें होते हैं। साधारण सभा नीति एवं कार्यक्रम सम्बन्धी निर्णय लेती है। स्वास्थ्य संघ का बजट पास करने का अधिकार भी साधारण सभा को ही है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है।

२. कार्यकारिणी मण्डल—कार्यकारिणी मण्डल में २४ सदस्य होते हैं। ये विश्व स्वास्थ्य असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं। इसकी बैठकें प्रति वर्ष कम से कम दो बार होती हैं। साधारण सभा के निर्णयों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व कार्यकारिणी मण्डल पर ही है। कार्यकारिणी मण्डल तकनीकी एवं अराजनैतिक अंग है।

३. सचिवालय—सचिवालय का प्रधान महा निदेशक होता है। सचिवालय में तकनीकी एवं प्रशासकीय कार्मिक वर्ग स्वास्थ्य संघ के कार्यक्रमों का संचालन करते हैं। सन् १९६६ के अनुमान के अनुसार विश्व स्वास्थ्य संघ के सचिवालय, क्षेत्रीय आफिसों तथा अन्य कार्यक्रमों में प्राय ३००० लोग काम करते है। स्वास्थ्य संघ का कार्मिक वर्ग प्राय ८० विभिन्न राष्ट्रों से लिया गया है।

सदस्यता— कोई भी राष्ट्र विश्व स्वास्थ्य संघ का सदस्य बन सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्र विश्व स्वास्थ्य संघ के संविधान को स्वीकार करके इसकी सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं। अन्य राष्ट्रों को सदस्यता के लिए आवेदन-पत्र देने होते है। उन्हे सदस्यता तब प्रदान की जाती है जब विश्व स्वास्थ्य असेम्बली साधारण बहुमत से स्वीकार कर ले। जो देश पूर्णतया स्वतंत्र नहीं है वे स्वास्थ्य संघ के सह सदस्य (Associate Member) बन सकते हैं। सन् १९६६ में विश्व स्वास्थ्य संघ के सदस्यों की संख्या १२२ थी।

विश्व स्वास्थ्य संघ के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम

विश्व स्वास्थ्य संघ के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

१ छुआ-छूत से फैलने वाली बीमारियों पर नियंत्रण—स्वास्थ्य संघ के प्रयासों के फलस्वरूप विश्व के मलेरिया पीड़ित भागों की आधे से अधिक जनता को

इस रोग के भय से मुक्ति मिल गई है। क्षय रोग की रोक-थाम के लिए नयी शक्तिशाली दवाओं के उपयोग तथा बी० सी० जी० के टीके लगवाने में स्वास्थ्य संघ ने बड़ा काम किया है। अब इस बात की संभावना प्रतीत होने लगी है कि क्षय रोग का सर्वथा उन्मूलन ही कर दिया जाए। सन् १९६५ में स्वास्थ्य संघ ने चेचक उन्मूलन का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। दस सालों में इस कार्यक्रम को पूरा किये जाने का अनुमान है। ट्रेकोमा (Trachoma) से पीड़ित लोगों के लाभ के लिए इसके निदान एवं चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान किए जा रहे हैं। स्वास्थ्य संघ कोढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए भी प्रयास कर रहा है। सदस्य राष्ट्रों को इस विषय के नवीनतम अनुसंधान एवं चिकित्सा के सम्बन्ध में परामर्श देता है।

२ पर्यावरण स्वास्थ्य—पर्यावरण स्वास्थ्य में सुधार के लिए स्वास्थ्य संघ विकासशील देशों में पीने के लिए स्वच्छ जल-व्यवस्था पर तकनीकी परामर्श देने के लिए विशेषज्ञों का दल भेजता है। साथ ही जल व्यवस्था के निर्माण आदि के लिए विशेषज्ञ प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करता है।

वायुदूषण—भाप के तरीकों के विकास तथा यन्त्रों के मानकीकरण के लिए एक अध्ययन आयोजित किया गया है।

कीटाणु नाशक दवाओं के विकास एवं निर्माण के लिए स्वास्थ्य संघ रसायनिक उद्योग तथा अन्वेषण संस्थाओं से सहयोग करता है। कीटाणु में फैलने वाली बीमारियों की रोकथाम के लिए इन कीटाणुनाशक दवाओं का बड़ा महत्व है।

३. जन स्वास्थ्य—विश्व स्वास्थ्य संघ अपने सदस्यों को जन स्वास्थ्य के लिए योजनायें बनाने में परामर्श देता है। सन् १९५१ में सड़क, समुद्र एवं वायु मार्ग से यात्रा करने वाले यात्रियों के लिए नये अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य रक्षा नियम तैयार किये गये। ये नियम १ अक्तूबर, १९५२ से लागू किये गये हैं।

४ चेचक आदि बीमारियों के फैलने की सूचना प्रसारित करता है। इन बीमारियों के सम्बन्ध में जेनेवा से प्रतिदिन रेडियो टेलीग्राफ प्रसारण किया जाता है।

५. अनुसंधान—पशुओं एवं मनुष्यों में फैलने वाली बीमारियों की रोक-थाम एवं चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान में स्वास्थ्य संघ सदस्य राष्ट्रों में सहयोग करता है। अनेक बीमारियाँ पशुओं से मनुष्यों में फैलती हैं। स्वास्थ्य संघ ने कैंसर पर अनुसंधान करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा अनुसंधान दल फ्रांस में स्थापित किया है। हृदय रोग एवं मानसिक रोग सम्बन्धी अनुसंधानों को भी स्वास्थ्य संघ प्रोत्साहित करता है। सदस्य राष्ट्रों में इस सम्बन्ध में परामर्श एवं तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

६. शिक्षण एवं प्रशिक्षण—प्रायः सभी देशों में डाक्टर, नर्स, सेनिटरी इंजीनियर तथा प्रयोगशालाओं में काम करने वाले तकनीकी कार्यकर्ताओं की कमी महसूस की जाती है। स्वास्थ्य संघ इन विषयों में प्रशिक्षण की व्यवस्था में सहायता करता है। प्रति वर्ष प्रायः ३००० छात्र-वृत्तियां देता है जिससे लोग विदेशों में जाकर इन

विषयो मे शिक्षण एव प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें।

७ विश्व खाद्य सघ तथा युनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रन फड के साथ मिल कर प्रोटीन युक्त आहार के कार्यक्रम का संचालन करता है।

८. जीव विज्ञान एव भेषज विज्ञान—इस क्षेत्र मे प्राय ७० उत्पादनो के लिए विश्व स्वास्थ्य सघ ने अन्तर्राष्ट्रीय मानक स्थापित किए है। खतरनाक दवाओ की प्रतिक्रिया की सूचना देने के लिए एजेन्सी की स्थापना की गई है। दवाओ के मानकीकरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय फार्माकोपिया (International Pharmacopoeia) प्रकाशित किया गया है। नशीली दवाओ के सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो को परामर्श देने का काम भी विश्व स्वास्थ्य संघ करता है तथा इनके अनाधिकृत उपयोगो पर रोक-थाम की व्यवस्था करता है।

नोट—यह अध्याय युनाइटेड नेशन्स द्वारा प्रकाशित "एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स" में दी गई सूचनाओ एव तथ्यो पर आधारित है।

विशेष अध्ययन के लिए

युनाइटेड नेशन्स	:	एवरी मैन्स युनाइटेड नेशन्स
गुडरिच		दी युनाइटेड नेशन्स
यू० एन० ओ०		चार्टर ऑफ दी युनाइटेड नेशन्स
		डब्लू० एच० ओ० का सविधान

Select References

Appleby	:	Report of a Survey on public Administration in India.
Chanda	:	Indian Administration
Chand, G	:	Financial System in India
Critchley	:	Civil Service Today
Dimoek & Dimock	:	*Public Administration*
Finer, Herman	:	Theory & Practice of Modern Governments.
Finer, Herman	:	The British Civil Service
Gladden	:	An Introduction to Public Administration
Gladden	.	The Civil Service, its Problems & Future.
Lepawasky	:	Public Administration
Marx Morstein	:	Elements of Public Administration
Nigro		Public Administration
Pfiffuer	:	Public Administration
Wattal		Parliamentary Financial Control in India
Sharma, M J	:	लोक-प्रशासन सिद्धान्त एव व्यवहार
Awasthi & Maheshwari	:	लोक-प्रशासन
White, L.D.		Introduction to the Study of Public Administration
Willoughby	:	Principles of Public Administration
Sharma, P.		Public Administration
French Wendell	:	The personnal Management process
Mc. Farland		Personel Management : Theory & Practice
N.C. Ray	,	Civil Service in India
United Nations	,	Every man's United Nation

Goodrich	:	The United Nations
Palmer of Perkins	:	International Relations
Eagleton	:	International Relations
Basu, D.D.		Commentaries on the Constitution of India
A.R.C. Report	:	Report on the Machinery of Government of India
A.R.C. Report	·	Report on Personal Administration
O' Malley	:	The Indian Civil Service.
Indian Institute of public Administration	:	The Organisation of the Government of India
Government of India	:	The Constitution of India
B. N. Rau		India's Constitution in the making
V.N. Shukla	:	The Indian Constitution
Gorwala, A.D.		The Report on *Public Administration*
Government of India		*The Central Pay Commission Report*, 1947
Government of India		The Central Pay Commission Report, 1959
H M So, London	·	The Fulton Committee Report
Government of Bihar		The Secretariat Manual
K. Sauthanam	:	The Union State Relations
Palmer	·	The Indian Political System
Gledhill	.	Republic of India
Sharma, M.P.		Government of the Indian Republic
Sharma. Shri Ram		How India is Governed
Pylee	:	The Constitution of India
Aiyangar of Agrawala		*The Indian Constitution*
Dwarka Das, R	.	The Role of Higher Civil Service in India
Rao Venkata	:	The Prime Minister.
Lall. A.B.	:	Parliament in India.

वित्त मंत्रालय का संगठन

१-१२-६९

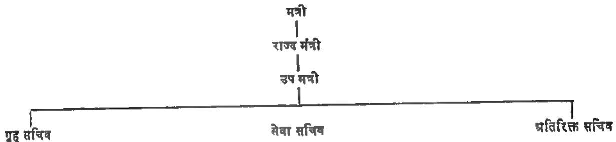
वित्त मंत्री

- राज्य मंत्री
- राज्य मंत्री

- माल एवं बीमा विभाग
- व्यय विभाग
- आर्थिक मामलों का विभाग
- बैंकिंग विभाग

स्रोत : ऑरगनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली।

गृह मंत्रालय का संगठन



स्रोत : ओरगनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली ।

संयुक्त राष्ट्र संघ

पाईप्रस में संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना

फिलिस्तीन में संयुक्त राष्ट्र संघ का युद्धविराम पर्यवेक्षण संगठन

भारत एवं पाकिस्तान में संयुक्त राष्ट्र संघ के सैनिक पर्यवेक्षक

सैनिक स्टाफ समिति

निःशस्त्रीकरण आयोग

सुरक्षा परिषद

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

साधारण सभा

प्रन्यास परिषद

सचिवालय

आर्थिक एवं सामाजिक परिषद

प्रमुख समितियाँ

प्रक्रम समिति

स्थायी समितियाँ

साधारण सभा की अन्य सहायक संस्थायें

संयुक्त राष्ट्र संघ प्रशासकीय न्यायाधिकरण

संयुक्त राष्ट्र संघ आपात कालीन सेना

फिलिस्तीन के शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण एवं सहायता एजेन्सी

व्यापार एवं विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मेलन

व्यापार एवं विकास बोर्ड

संयुक्त राष्ट्र संघ का औद्योगिक विकास संगठन

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम

संयुक्त राष्ट्र संघ का कोष

शरणार्थियों के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ के उच्च आयुक्त का कार्यालय

क्षेत्रीय आर्थिक आयोग

कार्य आयोग

अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेन्सी

समन्वय के लिये प्रशासकीय समिति

संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम की अन्तर एजेन्सी परामर्श बोर्ड

विशिष्ट एजेन्सियाँ

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष

संयुक्त राष्ट्र संघ का खाद्य एवं कृषि संगठन

अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन

यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन

विश्व स्वास्थ्य संघ

अन्तर्राष्ट्रीय टेली-कम्युनिकेशन यूनियन

अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ

विश्व मौसम विज्ञान संगठन

पुनर्निर्माण एवं विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय बैंक

अन्तर-सरकार जहाजरानी परामर्श संगठन

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन कर एवं व्यापार पर सामान्य समझौता

स्रोत – ऑर्गेन्स्की एवं ... दि इकोनोमिक्स ऑफ इंटरनेशनल पोलिटिक्स पृष्ठ संख्या 401

भारत सरकार
...

भारत सरकार
संगठन चार्ट
१-६-६५

राष्ट्रपति

विधानमंडल
संसद
- राज्य सभा
- लोक सभा

कार्यपालिका

संविधान के अन्तर्गत
- अनुसूचित एवं आदिमजातियों के लिये आयोग
- भारत का नियंत्रक एवं लेखा परीक्षक
- भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए आयोग

लोक सभा के प्रति उत्तरदायी

प्रधानमंत्री
केबिनेट
मंत्रि परिषद

केबिनेट सचिवालय
- केबिनेट के मामलों का विभाग
- सांख्यिकी विभाग

विशेष एजेन्सियाँ
- संघीय लोक सेवा आयोग
- चुनाव आयोग
- भारत का एटर्नी जनरल

न्याय पालिका
भारत का उच्चतम न्यायालय

- विदेश मंत्रालय
- वित्त मंत्रालय: व्यय विभाग; माल एवं बीमा विभाग; आर्थिक-मामलों का विभाग
- प्रतिरक्षा मंत्रालय
- औद्योगिक विकास आन्तरिक व्यापार एवं कम्पनी मामलों का मंत्रालय: औद्योगिक विकास विभाग; आन्तरिक व्यापार विभाग; कम्पनी मामलों का विभाग
- गृह मंत्रालय
- योजना आयोग
- इस्पात एवं भारी इंजीनियरिंग मंत्रालय
- पैट्रोल, रसायन, खान एवं धातु मंत्रालय: पैट्रोलियम विभाग; रसायन विभाग; खान एवं धातु विभाग
- रेल मंत्रालय
- स्वास्थ्य, परिवार नियोजन निर्माण, आवास एवं शहरी विकास मंत्रालय: स्वास्थ्य विभाग; परिवार नियोजन विभाग; निर्माण आवास एवं शहरी विकास
- यातायात एवं जहाजरानी मंत्रालय
- पर्यटन एवं नागरिक उड्डयन मंत्रालय
- विधि मंत्रालय: कानूनी मामलों का विभाग; विधायिनी विभाग
- सिंचाई एवं विद्युत मंत्रालय
- विदेशी व्यापार मंत्रालय: विदेशी व्यापार विभाग; पूर्ति विभाग
- श्रम रोजगार एवं पुनर्वास मंत्रालय: श्रम एवं रोजगार विभाग; पुनर्वास विभाग
- शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय
- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
- खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय: खाद्य विभाग; कृषि विभाग; सामुदायिक विकास विभाग; सहकारिता विभाग
- अणु शक्ति विभाग
- संचार विभाग
- संसदीय मामलों का विभाग
- समाज कल्याण विभाग

स्रोत:- ऑरगनाइजेशन ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
प्राक्कथन	४	३	लाधर	लीलाधर
२	६	१	सूक्ष्म	सक्षम
१०	१	३	कानन	कानून
१३	६	१	प्रशासकीय	राजनैतिक
२६	५	३	मद्रास	मद्रास
३२	३	१५	प्रजातान्त्रिक	अप्रजातान्त्रिक
४२	२	५	कार्यपालिका	कार्यपालिका
४५	१	३	विरोध	विशेष
४५	२	५	राष्ट्रपत	राष्ट्रपति
४७	४	२	स	सा
४७	५	१	ो	वे
४७	५	५	१६३४	१६३५
४६	१	४	१०	८
५७	१	४	वरने	करने
६८	६	२	वलाइटले	क्वाइटेल
७२	२	२	है।	है ?
७२	४	२	यही	यही धारा १५४
७५	१	२	जाता है। प्रशासन	जाता है। गैर सरकारी प्रशासन
७५	२	१५	सद	संसद
८५	१	२	ाकृति	प्रकृति
८५	१	२	लि	लिए आवश्यक है कि
८५	५	३	महानदेशक	महा-निदेशक
९३	२	२	पदायनित	पदावनति
९७	२	५	सुरक्षा	सुश्रूषा
१०३	५	के ऊपर की पंक्ति	शक्ति	शास्ति
१०३	५	१	शक्ति	शास्ति
१०३	६	के ऊपर की पंक्ति	शक्तियां	शास्तिया

पृष्ठ संख्या	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	१	७	जायेगे	जायगे
१०८	५	१	वाइ	वाइट
१११	४	१	राज्य क	राज्यो की
११६	२	१–२	नागरिक प्रशा-सन	असैनिक कार्मिक वर्ग
११७	४	५	स्मरण	प्रमारण
१३०	२	१६	२ ५ करोड़	२५० खरब
१४०	४	४	चार	चालू
१४५	१	५	सचित	संचित
१४८	४	४	उच्च	ईंच
१४८	४	८	पौ०	पौंड
१५०	२	१०	१८४८	१८५८
१५२	१	१	रोजगार विभाग	पुनर्वास मंत्रालय
१५५	२	२	यहा	यही
१५६	५	३३	सरनो	सदनो
१७२	६	६	परामर्म	परामर्श
१७६	११	४	नर्णायो	के निर्णयो
१८१	६	१	अधिकारी	कार्यालय
१८१	६	२	निदेशक	निदेशालय
१८६	५	२	विचारक	प्रशासक
१८७	४	१	नगे	नये
१९१	६	३	सबधी	सबंध
१९८	७	१	कार्यालय	कार्यक्रम
१९९	३	१	उत्पाद	उत्पादन
१९९	८	१	शसैक्युरिटी	सैक्युरिटी
२०६	१०	१	आयुक्त	आयोग
२३०	३	१	वायुदूषण-माप	वायुदूषण के माप
२३०	५	३	नसे	नये